भारतीय ग्रन्थमाला ; संख्या ५

भारतीय सहकारिता आंदोलन

लेखक

शंकरसहाय सकसेना

एम. ए (इकान), एम. ए. (काम.), बी. काम,

प्रिंसिपल, महाराणा कालेज, उदयपुर

रचयिता

प्रारम्भिक अर्थशास्त्र, आर्थिक भूगोल, पूर्व की राष्ट्रीय जागृति, भारतीय मजदूर, भारतीय ग्राम्य अर्थशास्त्र, गाँवों की समस्याएँ, बैंकिंग, आदि

प्रकाशक

भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज प्रयाग

चतुर्थ संस्करण | सन् १९५० | मूल्य साढ़े तीन रुपये

प्रकाशकः—
भगवानदास केला
व्यवस्थापक
भारतीय ग्रन्थमाला
दारागंज (इलाहाबाद)

इस पुस्तक के संस्करण

पहला सं०	...	...	...	सन् १९३५
दूसरा सं०	...	...	...	सन् १९४४
तीसरा सं०	...	...	...	सन् १९४८
चौथा सं०	...	...	...	सन् १९५०

मुद्रकः—
सरयू प्रसाद पाण्डेय 'विशारद'
नागरी प्रेस, दारागंज
प्रयाग

समर्पण

श्रीमन् पंडित शंकरप्रसाद भार्गव

एम. ए. एल-एल बी.

भूतपूर्व प्रिंसिपल, सनातन धर्म कालेज, कानपुर

तथा राजऋषी कालेज, अलवर।

गुरुदेव !

जिस वस्तु को आपके चरणों में बैठकर प्राप्त किया है, वही भेंट करने चला हूँ; यह धृष्टता समझी जा सकती है, किन्तु मैं तो इस पुस्तक को परीक्षा रूप में लेकर उपस्थित हुआ हूँ। आशा है कि आप इसे स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करेंगे।

शंकर
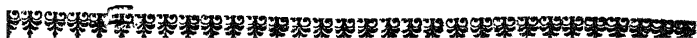
निवेदन

"भारतीय सहकारिता आन्दोलन" के चतुर्थ संस्करण पाठकों की सेवा में उपस्थित करते हुये हृदय को अत्यन्त हर्ष हो रहा है सम्भवत मैं इस विषय पर पुस्तक लिखने का प्रयास भी न करता, यदि श्रीयुत भगवानदास जी केला मुझे पुस्तक लिखने पर बाध्य न कर देते। श्री केला जी साहित्यिक तपस्वी हैं, भारतीय ग्रन्थमाला के द्वारा अर्थ शास्त्र तथा राजनीति साहित्य उत्पन्न करके, उन्होंने हिन्दी की महान सेवा की है। कोई भी उनके सम्पर्क में आकर मातृभाषा को पुष्पांजलि चढ़ाये बिना नहीं रह सकता। यही मेरे साथ हुआ। केला जी को हिन्दी में 'सहकारिता' पर एक भी पुस्तक न होना खटक रहा था। स्वयं अन्य पुस्तकों के लिखने में व्यस्त होने के कारण उन्होंने मुझे पकड़ा, और मुझे यह पुस्तक लिखनी पड़ी।

सहकारिता आन्दोलन के बिना भारतवर्ष के ग्रामों का उद्धार नहीं हो सकता। रूस, आयर्लैंड, चीन तथा इटली में तो इस आन्दोलन की बदौलत किसानों की काया पलट गई। भारतवर्ष में जहाँ किसानों के जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित है, बिना इस आन्दोलन के गति ही नहीं है। अंग्रेजी में इस विषय पर हजारों सुन्दर ग्रन्थों की रचना हो चुकी है, किन्तु अंग्रेजी न पढ़े हुए देशवासी इन पुस्तकों से कोई लाभ नहीं उठा सकते। हिन्दी भाषी इस आन्दोलन की अद्भुत शक्ति को जान सकें, इसी उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गई।

इस पुस्तक के पिछले संस्करणों का आशा से अधिक स्वागत हुआ। संयुक्तप्रान्त, ग्वालियर, इंदौर तथा अन्य राज्यों के सहकारिता विभागों ने इस पुस्तक का यथेष्ट प्रचार किया। कई स्थानों पर यह सहकारिता विभाग के कर्मचारियों के लिये पाठ्य पुस्तक बना दी गई। कुछ ग्राम-सुधार संस्थाओं ने इसको प्रोत्साहन दिया—काशी विद्यापीठ और ग्राम

विद्यालय, सेगांव, में यह पाठ्य पुस्तक बनाई गई। इससे यह सिद्ध होता है कि हिन्दी जगत को इस प्रकार की पुस्तक की बहुत आवश्यकता थी।

पिछले पन्द्रह वर्षों में सहकारिता-आन्दोलन की गति-विधि में बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। उदाहरण के लिये फुटकर एक उद्देश्य वाली सहकारी समितियों के स्थान पर एक गाँव में एक ही बहु-उद्देश्य सहकारी समितियों की स्थापना, ग्राम्य सहकारी साख समिति के दायित्व को परिमित कर देने का प्रस्ताव, रिजर्व बैंक का सहकारी साख आन्दोलन आदि से सम्बन्ध, इत्यादि। भारत में सन् १९३५ के शासन विधान के अनुसार प्रान्तों में उत्तरदायी मंत्रिमण्डलों की स्थापना हुई, और उन्होंने सहकारिता आन्दोलन का उपयोग ग्राम-सुधार गृह-उद्योग-धंधों की उन्नति तथा गाँवों के स्वास्थ्य-सुधार और कृषि सुधार के लिये किया, और उसे खूब प्रोत्साहन दिया।

इसी समय में बिहार, मध्यप्रान्त, बरार सिंध, बङ्गाल तथा कई अन्य प्रान्तों में सहकारिता आन्दोलन के नवीन संगठन की योजनाएँ बनाई गयीं। इसके उपरांत महायुद्ध आरम्भ हुआ और उसका भी इस आन्दोलन पर गहरा प्रभाव पड़ा। अस्तु, इन सभी बातों को ध्यान में रखकर पुस्तक का संशोधन किया गया है। लेखक ने इस बात की भरसक चेष्टा की है कि आन्दोलन का स्पष्ट और सम्पूर्ण रूप पाठकों के सामने रख दिया जावे।

शताब्दियों बाद अब भारत स्वतन्त्र हुआ है। केन्द्र तथा तथा प्रान्तों में राष्ट्रीय सरकार स्थापित हो गई है। यह स्वाभाविक है कि राष्ट्रीय सरकार कोटि कोटि ग्रामवासियों के आर्थिक निर्माण की बात सोचे। हमारे गांवों का आर्थिक निर्माण, बिना सहकारिता के अपनाये, हो ही नहीं सकता। इसी उद्देश्य से भारत सरकार ने श्री सरिया महोदय की अध्यक्षता में सहकारी योजना समिति (कोआपरेटिव प्लेनिंग कमेटी) बिठाई थी जिसकी रिपोर्ट अभी हाल में प्रकाशित हुई

है। समिति ने सहकारिता आन्दोलन का मार्ग निर्देश किया है। समिति के प्रस्तावों का विशेष महत्व है, इस कारण "सहकारी योजना समिति की रिपोर्ट" एक पृथक् परिच्छेद ही लिख दिया गया है। गैडगिल कमेटी ने जिस कृषि साख कारपोरेशन की स्थापना की सलाह दी थी भारत सरकार ने उसको मान लिया है। उस कारण उसपर भी एक परिच्छेद जोड़ा है।

भविष्य में भारतीय राष्ट्र निर्माण योजना में हमें सहकारिता आंदोलन का बहुत अधिक उपयोग करना पड़ेगा। उसकी सहायता के बिना भारतीय आर्थिक समस्याओं में से बहुतों का हल निकल सकना असम्भव होगा। इस दृष्टि से विचारवान व्यक्ति को, विशेषकर उन रचनात्मक कार्य करनेवालों को, जो देश के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन का नव-निर्माण करना चाहते हैं, यह पुस्तक सहकारिता आन्दोलन का यथेष्ट परिचय करादे, इसका विशेष ध्यान रखा गया है।

क्रमशः भारतीय विश्वविद्यालय हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बना रहे हैं। एक के बाद दूसरा विश्व विद्यालय अंग्रेजी के मोह को छोड़ रहा है ऐसी दशा में सहकारिता विषय पर विश्वविद्यालय के उपयोग के लिए एक प्रमाणिक पुस्तक हिन्दी को दी जा सके इसका लेखक ने पूरा प्रयत्न किया है।

जहाँ-जहाँ लेखक को ऐसा अनुभव हुआ है कि विदेशों में सहकारिता के द्वारा उन समस्याओं को सफलता-पूर्वक हल किया गया है, जो आज हमारे देश के सामने उपस्थित हैं, वहाँ वहाँ विदेश की उन सहकारी संस्थाओं का भी विवरण दे दिया गया है।

मुझे विश्वास है कि पुस्तक भारत के असंख्य निर्धन मजदूरों और ग्रामवासियों की सेवा करनेवाली गैर-सरकारी संस्थाओं, उनसे सम्बन्ध रखनेवाले सरकारी विभाग के कार्यकर्ताओं, तथा इस विषय का अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों के लिए विशेष उपयोगी होगी।

शंकरसहाय सकसेना

विषय सूची

:o:

प्रथम परिच्छेद

सहकारिता के सिद्धान्त

समाज म रहकर मनुष्य बिना एक दूसरे से साथ सहयोग किये, एक दिन भी अपना काम नहीं चला सकता। सभ्यता के प्रारम्भिक काल में भी मनुष्य-समाज सहकारिता के सिद्धान्तों को समझता था और व्यवहारिक जीवन में उसका उपयोग भी करता था। यदि मनुष्य-समाज सहकारिता को न अपनाता तो मनुष्य-जाति आज इतनी उन्नत तथा सभ्य कदापि न होती। आज से हज़ारों वर्ष पहले ही अनुभव से यह ज्ञात हो गया था कि मनुष्य-जीवन, बिना एक दूसरे से सहयोग किये, असम्भव होजायगा।

आज-कल का युग प्रतिस्पर्धा का युग कहा जाता है। साधारणतया यह समझा जाता है कि जो प्रतिस्पर्धा में नहीं ठहर सकता, उसके लिये संसार में कोई स्थान नहीं है। इस कारण लोगों की यह धारणा बन गई है कि मनुष्य-जीवन का मूल मन्त्र प्रतिस्पर्धा है; किन्तु देखने से ज्ञात होता है कि मनुष्य-जीवन का मूल-मन्त्र सहकारिता है, न कि प्रतिस्पर्धा। मनुष्य एक दूसरे पर अपनी साधारण आवश्यकताओं के लिये इतना अधिक निर्भर है कि यदि एक दिन के लिये भी उसको दूसरों का सहयोग न मिले तो उसका जीवन ही कण्टकमय हो जावे।

समाज में प्रत्येक मनुष्य की कार्य-शक्ति एकसी नहीं है। सहकारिता तथा श्रम-विभाग के बिना मनुष्य; समाज में रह कर, अपनी आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर सकता। मनुष्य-समाज की उन्नति तथा सभ्यता के विकास के लिये यह आवश्यक है कि पूर्ण श्रम-विभाग का

सिद्धान्त काम में लाया जावे। यदि अधिक क्षमता वाले मनुष्य ऐसे साधारण कार्यों में अपनी शक्ति का दुरुपयोग करें, जिनको साधारण क्षमता वाले मनुष्य भी कर सकते हैं, तो समाज तथा मनुष्य की उन्नति में भारी बाधा पड़ेगी। मनुष्य-जाति तब ही उन्नति कर सकती है, जब मनुष्य को अपनी कार्य-शक्ति के अनुसार किसी एक कार्य में विशेष योग्यता प्राप्त करने का अवसर दिया जावे।

किसी भी वस्तु के तैयार करने में हमें सैकड़ों मनुष्यों का सहयोग प्राप्त करना पड़ता है। मध्यप्रान्त अथवा बम्बई प्रान्त का किसान कपास उत्पन्न करता है। कपास उत्पन्न करने में उसे बहुत से मनुष्यों का सहयोग प्राप्त करने की आवश्यकता पड़ती है। महाजन, जमींदार, बढ़ई, लुहार तथा मजदूर सभी उसे कपास उत्पन्न करने में सहायता देते हैं। दलाल, आढ़तिया तथा व्यापारी उस कपास को मोल लेकर अथवा व्यवसायियों के लिये खरीद कर जिनिङ्ग फैक्टरी में ले जाते हैं! जिनिङ्ग फैक्टरियों में सैकड़ों मजदूरों के द्वारा कपास ओटी जाती है और गाँठों में बाँध कर अहमदबाद, बम्बई अथवा जापान के औद्योगिक केन्द्रों को भेज दी जाती है। इस कार्य में भी बैलगाड़ी, मोटर, रेल और जहाजों पर कार्य करनेवाले, तथा व्यापारियों का सहयोग होता है। इसके उपरान्त कारखाने में हजारों मजदूरों, मिस्त्रियों तथा अन्य कार्यकर्ताओं की सहायता से कपड़ा तैयार किया जाता है। अन्त में वह कपड़ा रेलों, जहाजों, तथा बैलगाड़ियों और मोटरों के द्वारा दूकानदारों के पास आता है। ग्राहक उसको खरीद कर दर्जी से कोट, कमीज इत्यादि बनवाता है, तब कहीं वह वस्त्र पहिन सकता है। जब तक इतने लोग एक दूसरे के साथ सहयोग न करेंगे, वस्त्र तैयार नहीं हो सकते।

इसी प्रकार किसान गाँवों में रहकर गेहूँ तथा अन्य अनाज उत्पन्न करता है। अनाज उत्पन्न करने में तथा उसे शहरों तक लाने में सैकड़ों मनुष्यों की सहायता की आवश्यकता होती है। कोई भी काम ले लिया

जावे. बिना सहयोग के वह सरलता-पूर्वक नहीं हो सकता। आज हम लोगों का जीवन एक दूसरे के सहयोग पर इतना अधिक निर्भर है कि यदि सहकारिता के सिद्धान्त को त्याग दिया जावे तो यह ध्यान में भी नहीं आ सकता कि संसार का कार्य कैसे चल सकेगा। मनुष्य की शक्ति सहकारिता में छिपी हुई है, और सहकारिता के द्वारा ही उसकी उन्नति हो सकती है।

सहकारिता आन्दोलन क्या है, यह एक उदाहरण से स्पष्ट हो जावेगा। कल्पना कीजिए कि एक अंधा भिखारी एक अनजान स्थान पर पहुँच जाता है और अंधा होने के कारण भीख मांगने का कार्य नहीं कर सकता। साथ ही वहाँ एक लूला व्यक्ति भी है, जिसकी दोनों टांगें बेकार हो गई हैं, इस कारण वह भी भीख मांगने से मजबूर है। अब यदि वे दोनों सहकारिता के सिद्धान्त को अपनावें और अंधा लूले को अपने कंधे पर बिठा ले तो लूले की आँखें और अंधे की टांगें एक दूसरे से सहयोग करके एक सम्पूर्ण व्यक्ति का निर्माण कर सकती हैं और वे दोनों आसानी से भीख मांग कर अपना उदर पालन कर सकते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि किसी उद्येश्य की प्राप्ति के लिए हम जब भाईचारे के आधार पर संगठित प्रयत्न करें और प्रतिस्पर्द्धा और शोषण को दूर करदें तो उसे हम सहकारिता कहेंगे।

मनुष्य-जाति अब सहकारिता के सिद्धान्त को भली भाँति समझ गई. और इसको मनुष्य-जीवन के लिये आवश्यक समझती है। समाज में निर्बल और सबल, बुद्धिमान और मन्दबुद्धि, साहसी और कायर, चतुर और मूर्ख, शीघ्र कार्य करनेवाले तथा आलसी—सभी प्रकार के मनुष्य हैं। यदि समाज को उन्नति की ओर अग्रसर होना है तो इन सब को एक साथ काम करना होगा। यदि समाज प्रतिस्पर्धा के सिद्धान्त को अपना ले तो समाज की उन्नति ही रुक जावेगी। कुछ लोगों का कहना है कि मनुष्य-जीवन एक भयङ्कर संग्राम है और इस संग्राम में वही जीवित रहकर सफल हो सकता है, जो इसमें ठहर

सके। जो निर्बल हैं—जो जीवन-संग्राम में ठहर नहीं सकते, उनके लिये यहाँ कोई स्थान नहीं है। उनका कहना है कि यदि इस संग्राम में सबलों को निर्बलों की सहायता के लिये जाना पड़ा या अपनी गति को मन्द करना पड़ा तो उनकी व्यक्तिगत उन्नति में बाधा पड़ेगी; व्यक्तिगत उन्नति तथा यशोपार्जन के लिये सहकारिता नहीं, प्रतिस्पर्धा की आवश्यकता है, सहकारिता इसके लिए घातक सिद्ध होगी। सहकारितावादी शक्तातिजीवन के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते। यह सिद्धान्त मनुष्य को समाज के ऊपर बिठा देता है, व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ति के लिये सामूहिक स्वार्थ को ठुकरा कर अपने पथ पर अग्रसर होना ही इस सिद्धान्त के माननेवालों का उद्देश्य होता है। यह सिद्धान्त व्यक्तिगत लाभ के लिये सामूहिक लाभ को नष्ट करने की शिक्षा देता है और समाज में घोर असमानता उत्पन्न करता है। आधुनिक युग में पूँजीपतियों और श्रमजीवियों में जो भयङ्कर संग्राम छिड़ा हुआ है, "पूँजीपतियों को नष्ट करदो" की जो आवाज चारों ओर से सुनाई दे रही है, वह इस सिद्धान्त के द्वारा उत्पन्न हुई आर्थिक असमानता के कारण ही उठाई गई है।

शक्तातिजीवन के सिद्धान्त को अपनाने का परिणाम हुआ व्यक्तिवाद का उदय; और उसने पूँजीवाद को जन्म दिया। पूँजीवादी युग में प्रतिस्पर्धा उद्योग-धन्धों का जीवन-प्राण समझा जाता है। लोगों का कहना है कि बिना प्रतिस्पर्धा किये एक फैक्टरी दूसरी फैक्टरी को बाजार में किस प्रकार हरा सकती है, और जबतक एक कारखाना दूसरे कारखाना से प्रतिस्पर्धा न करे तब तक वह आगे कैसे बढ़ सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज के औद्योगिक सङ्गठन में प्रतिस्पर्धा का बहुत महत्व है, परन्तु यदि ध्यान पूर्वक देखा जावे तो प्रतिस्पर्धा तभी प्रारम्भ होती है, जब सहयोग का पूरा उपयोग कर लिया जाता है, नहीं तो बड़े बड़े कारखानों को कच्चा माल तक न मिले। साथ ही प्रतिस्पर्धा के उपरान्त वे ही कारखाने फिर सहयोग भी करते हैं। उदाहरण के लिए

बैङ्क और रेलवे एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते हैं, परन्तु क्लियरिङ्ग हाउस (निपटारा घर) स्थापित करके सहयोग के द्वारा बहुत से व्यर्थ के परिश्रम को बचा लेते हैं। इसी प्रकार बड़े-बड़े कारखाने यद्यपि प्रतिस्पर्धा करते हैं पर साथ ही मिल-मालिक-सङ्घ इत्यादि स्थापित करके अपने सामूहिक स्वार्थों की रक्षा करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि आज के पूँजीवादी युग में भी उद्योग धन्धों का मूल आधार प्रतिस्पर्धा न होकर सहकारिता ही है, परन्तु एक स्थिति में प्रतिस्पर्धा भी अपनायी जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि समाज में कुछ थोड़े से व्यक्ति सम्पत्तिवान और धनवान होते हैं उनके पास इतनी अधिक सम्पत्ति इकट्ठी हो जाती है कि वे राज्य को भी अपने संकेतों पर चलाते हैं, और अधिकांश जनसमूह निन्दा और निर्धनता का जीवन बिताता है। समाजवादी इस भयङ्कर आर्थिक असमानता को दूर करने के लिये ही पूँजीवाद को समाप्त कर देना चाहते हैं।

आधुनिक आर्थिक सङ्गठन में एक छोटी मात्रा में माल उत्पन्न करनेवाला कारीगर—जुलाहा—सूती कपड़े की मिल की प्रतिस्पर्धा में टिक नहीं सकता। उसे विवश होकर अपनी आर्थिक स्वतन्त्रता से हाथ धोना पड़ता है; वह उसी कपड़े के मिल में काम करता है, जहाँ पूँजीपति उसका शोषण करने में सफल होता है। छोटा दूकानदार बड़े बड़े व्यवस्थित स्टोरों की प्रतिस्पर्धा में सफल नहीं होता। यही नहीं, यदि एक निर्धन व्यक्ति खेती अथवा अन्य किसी उत्पादन कार्य के लिये ऋण लेता है तो उसे ७५ प्रतिशत तक सूद देना पड़ता है, और एक बड़ा मिल-मालिक ६ प्रतिशत में ही लाखों की पूँजी पा जाता है। कहाँ तक कहा जावे, यदि एक निर्धन व्यक्ति आटा दाल इत्यादि आवश्यक वस्तुएं थोड़े थोड़े पैसों की खरीदता है तो उसको रद्दी खाद्य वस्तु ऊँचे भाव में मिलती है, और यदि कोई धनी व्यक्ति इकट्ठी सामग्री लेता है तो उसे बढ़िया वस्तु उचित मूल्य पर मिल जाती है। इससे यह सिद्ध होता है कि आज के सङ्गठन में जो निर्बल

हैं, निर्धन हैं, और जिनमें सबल और धनिकों की प्रतिस्पर्धा में खड़े होने की क्षमता नहीं है, उनके लिए कोई स्थान नहीं है। तो क्या हमें इन असंख्य निर्धन और निर्बल व्यक्तियों को नष्ट हो जाने देना चाहिये? समाज के सामने यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, जिसका निपटारा होना आवश्यक है।

समाज अपने निर्बल सदस्यों को ठीक उसी प्रकार नष्ट होते नहीं देख सकता, जिस प्रकार माता-पिता अपने लँगड़े अथवा लूले पुत्र को मरते नहीं देख सकते। समाज का मूल मन्त्र शक्तातिजीवन न होकर "निर्बलों की रक्षा" होना चाहिये। यदि हम चाहते हैं कि समाज में उत्पन्न हुई घोर आर्थिक विषमता के कारण हमें भयङ्कर क्रांतियों का सामना न करना पड़े तो हमें सहकारिता को अपनाना होगा। सहकारिता निर्बलों की रक्षा करती है, वह उनको निर्बल नहीं रहने देती, वरन् उनको संगठित करके शक्तिवान बनाने का प्रयत्न करती है। सहकारिता आन्दोलन उन लोगों की उन्नति में बाधक नहीं होता जो शक्तिवान हैं और प्रतिस्पर्धा में अपने पैरों पर स्वयं खड़े हो सकते हैं। सहकारिता का ऐसे लोगों से कोई सम्बन्ध नहीं। वह तो केवल निर्धन तथा निर्बलों का आन्दोलन है; पारस्परिक सहायता और सहानुभूति इसके मुख्य सिद्धान्त है. और सेवा इसका लक्ष्य है।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि मनुष्य का कोई भी कार्य बिना दूसरों के सहयोग के नहीं हो सकता, किन्तु आधुनिक औद्योगिक सङ्गठन में धन-वितरण की प्रणाली इतनी दूषित है कि जो लोग उत्पादन कार्य में सहयोग देते हैं, उन्हें उचित हिस्सा नहीं मिलता। कुछ लोग तो उचित से अधिक पा जाते हैं और अधिक संख्या वालों को, जो निर्बल हैं, अपना हिस्सा भी नहीं मिलता। मिल में काम करने वाला मजदूर, जो मिल को सफलतापूर्वक चलाने के लिए उतना ही आवश्यक है. जितना कि पूँजोपति अथवा मिल-मैनेजर, बहुत थोड़ी मजदूरी पाता है, और मैनेजर और पूँजीपति अनुचित रूप से सम्पत्ति

का अधिक भाग हड़प कर जाते हैं। किसान गेहूँ उत्पन्न करता है, दलाल, थोक व्यापारी तथा दूकानदार साधारण गृहस्थ को गेहूँ पहुँचाने में सहयोग करते हैं; किन्तु गेहूँ का जो मूल्य ग्राहक देता है उसका यथेष्ट अंश किसान को नहीं मिलता; और दलाल, थोक व्यापारी, तथा दूकानदार उसका बहुत सा अंश खा जाते हैं। किसान को खेत की पैदा-वार का इतना कम मूल्य मिलता है कि खेत का खर्चा निकालने पर उसके लिये बहुत कम बचता है, वह उसके परिश्रम को देखते हुए कुछ भी नहीं होता। रेलवे लाइन को डालने का ठेका बड़े-बड़े ठेकेदार लेते हैं, वे हजारों मजदूरों तथा कारीगरों को रख कर काम कराते हैं। काम करानेवाले मजदूरों और कारीगरों को बहुत कम मजदूरी देकर, ठेकेदार सारा लाभ डकार जाता है। सहकारिता धन-वितरण की अन्यायपूर्ण प्रणाली को स्वीकार नहीं करती और इनको नष्ट कर देना चाहती है। सहकारिता आन्दोलन वर्तमान दूषित प्रणाली का विरोध करता है और प्रत्येक मनुष्य को, जिसने सम्पत्ति के उत्पादन कार्य में सहयोग दिया है, उसके परिश्रम के अनुपात में सम्पत्ति देने का समर्थन करता है।

सम्पत्ति का उत्पादन केवल पूंजी के ही द्वारा नहीं होता, उसके लिए श्रम की भी आवश्यकता होती है। पूँजीपति को अपनी पूँजी पर सूद तो मिलना ही चाहिए, साथ ही वह जोखिम भी उठाता है उसके लिए भी उसे कुछ लाभ मिलना चाहिए। बेचारे मजदूर को तो पूँजीपति पूरी मजदूरी भी नहीं देते। अस्तु, यह सब तथा अन्य खर्चे निकालकर भी कुछ अतिरिक्त लाभ बचता है। प्रश्न होता है कि वह अतिरिक्त लाभ किसको दिया जावे? आधुनिक औद्योगिक संगठन में तो यह सारा का सारा पूँजीपतियों को मिलता है। श्रमजीवी समुदाय इस कारण क्षुब्ध हो उठा है। जब मजदूर लोग देखते हैं कि उन्हें कठिन परिश्रम करने पर भी भर पेट भोजन नहीं मिलता और पूँजीपति अनन्त धन राशि प्रति वर्ष हड़प जाते हैं तो स्वभावतः वे लोग

असन्तुष्ट होते हैं। क्रमशः औद्योगिक देशों में श्रमजीवी समुदाय आज संगठित हो गया है और इस अत्याचार को सहन नहीं करना चाहता। ट्रेडयूनियन आन्दोलन इसी प्रयत्न का फल है। समाजवाद तो पूँजीपतियों के अस्तित्व को ही नष्ट कर देना चहता है। वह तथा श्रमजीवी आन्दोलन लाभ को केवल मजदूरों के ही लिए सुरक्षित रखना चाहते हैं। सहकारिता अतिरिक्त लाभ का न्यायपूर्ण विभाजन करना चाहती है और किसी एक वर्ग को दूसरे वर्ग पर अत्याचार नहीं करने देती।

सहकारिता आन्दोलन एक आर्थिक आन्दोलन है। आज आर्थिक संगठन इस प्रकार का बन गया है कि पूँजीपति श्रमजीवी वर्ग का शोषण कर रहे हैं। फल-स्वरूप श्रमजीवी समुदाय पूँजीपतियों के अस्तित्व को नष्ट कर देना चाहता है। दोनों वर्गों में भयङ्कर युद्ध छिड़ा हुआ है; दोनों एक दूसरे को दबाने का प्रयत्न कर रहे हैं। सहकारिता आन्दोलन एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहता है जिसमें इस प्रकार युद्ध न होगा, जहाँ भिन्न-भिन्न वर्ग एक दूसरे का साथ देंगे, और आर्थिक विषमता का यह भयंकर रूप नष्ट हो जायगा। "जब समाज के निर्बल सदस्य किसी भी आर्थिक कार्य अर्थात् उत्पत्ति उपभोग, विनिमय, तथा वितरण में सम्मिलित प्रयत्न से उत्पन्न हुए लाभ को आपस में न्यायपूर्ण प्रणाली से बाँट लें तो ऐसे संगठन को सहकारी समिति कहेंगे।" कुछ लोग सहकारी समितियों की तुलना ट्रेड-यूनियन से करते हैं, किन्तु सहकारी समितियाँ इससे भिन्न हैं। ट्रेड यूनियन आधुनिक आर्थिक सङ्गठन को स्वीकार करती है और केवल श्रमजीवी समुदाय की आर्थिक स्थिति को सुधारना चाहती है; यदि पूँजीपति मजदूरों की माँग को स्वीकार नहीं करते तो ट्रेड-यूनियन हड़तालों के द्वारा उनको विवश कर देती है। सहकारी समितियों के कार्य का ढङ्ग दूसरा ही है, ट्रेड-यूनियन विघातक कार्य करती है, और सहकारी समितियाँ रचनात्मक कार्य करती हैं।

प्रत्येक आर्थिक हलचल में सहकारिता के सिद्धान्तों का उपयोग किया जा सकता है। सहकारिता के सिद्धान्त को पूर्णतया समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम सहकारी समितियों तथा आधुनिक औद्योगिक संस्थाओं का भेद समझ लें। मान लो कि कुछ मोची अपनी आर्थिक स्थिति का सुधारने की दृष्टि से, अपनी थोड़ी-थोड़ी पूँजी को लेकर एक सङ्गठन में सम्मिलित होते हैं और निश्चय करते हैं कि वे सम्मिलित रूप में जूते का व्यवसाय करेंगे; समिति के कार्य का संचालन करने में प्रत्येक सदस्य का समान अधिकार हो, और वार्षिक लाभ सदस्यों की पूँजी के अनुपात में न बांटा जाकर, सदस्यों की जूतों की उत्पत्ति के अनुपात में बाँटा जावे, तो समिति को सहकारी उत्पादक समिति कहेंगे।

सहकारी उत्पादक समितियों तथा मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियों में यही भेद है कि एक तो मनुष्यों का संघ है और दूसरा पूँजी का। मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियों में कार्य-संचालन का अधिकार तथा लाभ, हिस्सेदारों को पूँजी के अनुपात में ही मिलता है। उत्पादक सहकारी समितियों के संगठन में मज़दूर पूँजी को किराये पर लेकर, धन्धे की जोखिम उठाते हैं; किंतु पूँजी वाली कम्पनियों में हिस्सेदार स्वयं कार्य न करके मज़दूरों को नौकर रखते हैं और धन्धे की जोखिम उठाते है। उत्पादक समितियां पूँजी के लिये उचित सूद देती हैं और लाभ आपस में बांट लेती हैं; किन्तु मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियों में निश्चित मजदूरी देकर मज़दूर रखे जाते हैं और लाभ हिस्सेदारों में पूँजी के अनुपात में बांट दिया जाता है। सहकारी समितियों में पूँजी को अधिक महत्व नहीं दिया जाता। उसको सम्पत्ति उत्पन्न करने के लिये एक साधन मात्र समझा जाता है। यही कारण है कि समिति के प्रत्येक सदस्य को केवल एक 'वोट' (मत) मिलता है, उसका समिति के कार्य-सञ्चालन में उतना ही अधिकार होता है, जितना कि किसी दूसरे सदस्य का। परन्तु मिश्रित पूँजी वाली कंपनियों में पूँजी का हीं सर्वोच्च स्थान होता है, धन्धे का

लाभ तथा कार्य-सञ्चालन-अधिकार हिस्सेदारों में पूँजी के अनुपात में दिया जाता है।

सहकारी समितियों और मिश्रित पूँजी वाली कंपनियों में एक और मौलिक भेद है। स्थापित हो जाने के उपरान्त कंपनी नये हिस्सेदारों को नहीं लेती। अतएव जब कंपनी सफलता-पूर्वक चलने लगती है और बहुत अधिक लाभ देने लगती है तो उसका सौ रुपये का हिस्सा हजारों में बिकता है। लेकिन सहकारी समिति का द्वार सदैव खुला रहता है। जब भी कोई व्यक्ति चाहे, उसका सदस्य बन सकता है। अतएव उसके हिस्सों का मूल्य कभी बढ़ता नहीं। यही नहीं, कंपनियों में एक व्यक्ति चाहे जितने हिस्से खरीद सकता है और उसी के अनुपात में उसे कंपनी के प्रबन्ध में हिस्सा मिलता है. किन्तु सहकारी समिति में प्रत्येक व्यक्ति जितने हिस्से चाहे उतने नहीं ले सकता और यदि हिस्से कम या अधिक हों तो भी प्रत्येक सदस्य को केवल एक वोट का अधिकार होता है।

इन दोनों में एक भेद और भी है, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियों की सफलता, अन्य कम्पनियों की प्रतिद्वन्दिता में सफलता-पूर्वक खड़े रहने पर निर्भर है। प्रत्येक कंपनी का अपना व्यक्तित्व होता है, और वह दूसरी कम्पनियों को कुचल कर आगे बढ़ने का प्रयत्न करती है। सहकारिता आन्दोलन इस व्यक्तिवाद के सिद्धान्त को नहीं मानता। सहकारी समितियां एक दूसरे की प्रतिद्वन्दिता में नहीं खड़ी होतीं। वे मिल कर एक संघ की स्थापना करती हैं और उसके संरक्षण में कार्य करती हैं। यह संघ सहकारी समितियों को एक दूसरे की प्रतिस्पर्धा नहीं करने देता। यद्यपि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि व्यवहार में प्रतिस्पर्धा बिलकुल नष्ट नहीं हो गई है—और यहां तक सहकारिता आन्दोलन को अपने ध्येय में असफल ही कहना चाहिए—किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि यह सिद्धान्त ही गलत है। बात यह है कि समाज का संगठन दूषित है.

और जब तक सहकारिता के सिद्धान्तों के अनुसार समाज संगठित नहीं हो जाता, तब तक प्रतिस्पर्धा जड़ से नष्ट नहीं हो सकती। यदि उपभोक्ता भी अपने को सहकारी समितियों में संगठित करलें, और फिर संगठित उत्पादक सहकारी समितियों से अपनी आवश्यक वस्तुओं को खरीदें तो प्रतिस्पर्धा को नष्ट किया जा सकता है। सहकारिता आन्दोलन का यही लक्ष्य है। अस्तु, सहकारिता तथा अन्य प्रणालियों में यही मुख्य भेद है कि एक प्रतिस्पर्धा का समूल नाश करना चाहती है; दूसरी प्रतिस्पर्धा को स्वीकार करती है। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि अभी तक यह सिद्धान्त पूर्ण रूप से कार्य में परिणत नहीं हो सका है।

सहकारिता आन्दोलन केवल सम्पत्ति उत्पन्न करनेवालों की ही रक्षा नहीं करता, वह सब वर्गों को सहायता पहुँचाता है। आधुनिक औद्योगिक संगठन में उपभोक्ता का वस्तुओं के मूल्य-निर्धारण में कोई हाथ नहीं होता, और न धन्धों के संचालन में ही उसकी आवाज सुनी जाती है। उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं के बीच में अगणित दलाल काम करते हैं; जो उपभोक्ता तथा उत्पत्ति करनेवालों को लूटते हैं। उपभोक्ता वस्तु का जो मूल्य देता है, उसका बहुत थोड़ा अंश उत्पत्ति करनेवाले को मिलता है, अधिक अंश तो दलालों की जेब में जाता है। सहकारिता आंदोलन जहां यह प्रयत्न करता है कि उत्पादकों को अधिक से अधिक लाभ हो, वहाँ उसका यह भी प्रयत्न होता है कि उपभोक्ताओं को सस्ते दामों पर वस्तुएँ मिलें, जिससे उनका बोझ हलका हो। यदि देखा जावे तो लाभ उपभोक्ताओं से मिलता है; यदि उपभोक्ता तैयार माल को न लें तो केवल उत्पत्ति से लाभ नहीं मिल सकता। अस्तु, सहकारिता आन्दोलन केवल श्रमजीवी तथा पूँजीपति को ही लाभ का अधिकारी नहीं मानता, वरन् उपभोक्ताओं को भी लाभ के कुछ अंश का हकदार समझता है। सहकारिता के सिद्धान्तानुसार, समाज में केवल दो वर्ग होने चाहिएँ उत्पादक और उपभोक्ता।

किन्तु इस पूँजीवाद के युग में उपभोक्ता तथा उत्पादक के बीच में अगणित दलाल हैं, जो दोनों वर्गों को लूट रहे हैं। सहकारिता दलालों के द्वारा इन दोनों वर्गों के शोषण का घोर प्रतिवाद करती है और दोनों वर्गों को संगठित करके इतना समीप लाना चाहती है कि फिर दलालों की आवश्यकता ही न पड़े। दलालों को अपने स्थान से हटा देना सहकारिता आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य है।

अब एक प्रश्न यह उठता है कि धन्धों का नियन्त्रण किस वर्ग के हाथ में होना चाहिये; धन्धों का संचालन उपभोक्ता करें अथवा उत्पादक। इस विषय में सहकारिता आन्दोलन में कार्य करनेवालों के दो मत है। एक मत के लोग कहते हैं कि उपभोक्ता वर्ग को धन्धों का संचालन करना चाहिये, दूसरे मत के लोग यह अधिकार उत्पादक वर्ग को देना चाहते हैं। सहकारिता आन्दोलन में कार्य करनेवालों का बहुमत इस पक्ष में है कि खेती-बारी को छोड़कर अन्य धन्धों के संचालन का अधिकार उपभोक्ता को होना चाहिए। इन धन्धों में काम करनेवालों की स्थिति मज़दूरी पानेवालों से अच्छी नहीं होती। जहाँ-जहाँ उपभोक्ता सहकारी समितियों का सङ्गठन हुआ है और उनके सम्मिलित संघ ने स्वयं आवश्यक वस्तुओं को तैयार करने के लिये मिल और कारखाने खोले हैं, उनमें काम करनेवाले मज़दूरों को उस कारखाने के संचालन में कोई अधिकार नहीं है। यद्यपि इन कारखानों में मजदूरों की स्थिति साधारणतः कारखानों से बहुत अच्छी होता है, किन्तु उनका कोई अधिकार नहीं होता। हाँ, यदि वे भी उन उपभोक्ता समितियों के सदस्य होते हैं, जिनके सम्मिलित संघ ने उस कारखाने को चलाया है, तो वे उस रूप में उस कारखाने की व्यवस्था में भाग लेते है। मजदूरों को व्यवस्था में भाग न लेने देने का कारण यह भी हैं कि उससे व्यवस्था के शिथिल होजाने का भय रहता है। जिन समि-तियों में उत्पादक ही सदस्य होते हैं और वे ही मजदूर होते हैं, वहां व्यवस्था उन्हीं के हाथ में रहती है। किन्तु कहीं कहीं ऐसा देखने में

आता है कि ऐसी समितियों में भी उन सहकारी साख समितियों अथवा सहकारी उपभोक्ता समितियों का व्यवस्था में अधिक अधिकार रहता है जो उत्पादक समितियों को पूँजी देती है। ऐसी दशा में उत्पादक समिति के सदस्य अर्थात् मजदूरों का व्यवस्था में नाम-मात्र का अधिकार होता है। जहाँ तक सहकारिता आन्दोलन उत्पादकों को उस धंधे की व्यवस्था का अधिकार नहीं दिला सका है, वहाँ तक उसको अपने लक्ष्य में असफल ही समझना चाहिए।

इङ्गलैंड में इस प्रश्न को लेकर सहकारिता आन्दोलन में काम करने वालों में गहरा मतभेद है। जब इङ्गलैंड के उपभोक्ता स्टोरों की होल सेल सोसायटी ने अपने सम्बंधित स्टोरों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपने कारखाने स्थापित करना आरम्भ किए और गेहूँ, चाय, सब्जी, फल तथा मक्खन और दूध के लिए क्रमशः बड़े बड़े खेत चाय और फलों के बाग तथा मक्खन के कारखाने स्थापित करना आरम्भ कर दिया तो यह प्रश्न अधिक गम्भीर हो गया। जो लोग कि उत्पादक सहकारिता के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं उनका कहना था कि यदि उपभोक्ता स्टोरों ने उत्पादन को भी अपने हाथ में ले लिया तो उनमें काम करने वाले मजदूरों का उसमें हाथ क्या रहेगा। वे पूंजीवादी व्यव-स्था में जिस प्रकार उपेक्षित और पीड़ित हैं। उसी प्रकार सहकारी व्यवस्था में भी उपेक्षित और पीड़ित रहेंगे। अतएव उनका कहना यह है कि उत्पादन का संगठन तो उनमें काम करने वाले मजदूरों के अधिकार में ही होना चाहिए।

व्यवहार में आज सहकारिता आन्दोलन में काम करने वालों ने यह स्वीकार कर लिया है कि जहां तक खेती तथा उससे सम्बन्धित छोटे धंधों का प्रश्न है उनका संगठन सहकारी उत्पादक समितियों के द्वारा होना चाहिए और जहां तक बड़े कारखानों इत्यादि को स्थपित करने का प्रश्न है वहाँ उपभोक्ता सोसायटियों को उनको स्थापित करने की छूट रहना चाहिए। इसका मुख्य कारण यह है कि व्यवहार में बड़े-बड़े

कारखानों को उत्पादक सहकारी समितियों के आधार पर संगठित करने में अभी तक सफलता नहीं मिली है। अस्तु उनको होल-सेल सोसायटी एक पूंजपिति के अनुसार ही चलाती है।

सच तो यह है कि सहकारिता के आधार पर यदि हमें समाज के आर्थिक जीवन को संगठित करना है तो हमें यह सिद्धान्त स्वीकार कर लेना चाहिए कि उत्पादन का संगठन तो उत्पादक समितियां ही करें और उपभोग का संगठन उपभोक्ता स्टोरों और उनकी होल-सेल सोसायटी द्वारा हो। परन्तु प्रश्न यह हो सकता है कि यदि उत्पादन का संगठन उत्पादक समितियां करेंगी तो वे अपने सदस्य अर्थात् उत्पादन कर्ता के लिए वस्तु का अधिक से अधिक मूल्य प्राप्त करने की चेष्टा करेंगी और यदि उपभोग का संगठन उपभोक्ता स्टोरों और उनकी होल सेल सोसायटी द्वारा हो तो वे अपने सदस्यों के लिए उसी वस्तु को कम से कम मूल्य पर प्राप्त करने की चेष्टा करेंगी। इस विरोधी दृष्टिकोण तथा स्वार्थ का समन्वय किस प्रकार हो सकेगा।

यदि हम समाज में एक सहकारी आदर्श की कल्पना करना चाहते हैं और वास्तव में एक सहकारी समाज का निर्माण करना चाहते हैं तो यह आवश्यक होगा कि हम एक केन्द्रीय संगठन करें जिसमें उपभोक्ता स्टोरों तथा उत्पादक समितियों के प्रतिनिधि हों जो उत्पादन व्यय इत्यादि को ध्यान में रखकर प्रत्येक वस्तु का मूल्य निर्धारित करदें और उसी मूल्य पर उत्पादन समितियां अपनी वस्तुओं को उपभोक्ता स्टोरों की होल सेल सोसायटी को दे दें। इस प्रकार उत्पादक तथा उपभोक्ता दोनों ही व्यापारियों तथा दलालों के शोषण से बच जावेंगे और उपभोक्ता अपनी वस्तु को उचित मूल्य पर पाजावेगा तथा उत्पादन करने वाला अपने तैयार किए हुए माल का अथवा पैदावार का उचित मूल्य पाजावेगा। जब तक इस प्रकार का कोई सगठन नहीं होता तब तक सहकारिता आन्दोलन अपूर्ण रहेगा। परन्तु आज तो अधिकांश

देशों में वह स्थिति आई ही नहीं है अतएव व्यवहार में अभी इसका विशेष महत्व नहीं है।

यद्यपि सहकारिता आन्दोलन विशेषकर आर्थिक आन्दोलन है, किन्तु इसकी नींव ऊँचे आदर्श पर जमाई गई है। यह आन्दोलन समाज में एक नवीन भावना को जाग्रत करता है। स्वावलम्बन तथा भ्रातृभाव ही वह भावना है, जिसके बल पर यह आन्दोलन खड़ा किया गया है! सहकारिता आन्दोलन समाज में किसी एक वर्ग का अत्याचार सहन नहीं करता, वह तो समाज के सदस्यों में आत्मनिर्भरता तथा भाईचारे का भाव उत्पन्न करता है। सब मिलकर एक उद्देश्य के लिए प्रयत्न करें, यही सहकारिता का अर्थ है। व्यक्तिवाद को हटाकर सहकारिता आन्दोलन सामूहिक स्वार्थ को प्रधानता देता है। पूँजीवाद के युग में व्यक्तिगत स्वार्थ की प्रधानता है। किन्तु सहकारिता समूह को व्यक्ति के ऊपर रखती है।

पूँजीवाद के युग में आर्थिक असमानता तथा अन्य दोषों के कारण समाज घबरा उठा है। कोई-कोई तो पूँजीवाद को समूल नष्ट कर देना चाहते हैं। समाजवाद इसी असमानता को नष्ट करने का एक प्रयोग है। किन्तु सहकारिता आन्दोलन समाजवाद के सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं करता। बीसवीं शताब्दी में सहकारिता आन्दोलन ने यथेष्ट उन्नति की है; और आशा है भविष्य में, समाज के निर्बल सदस्यों की आर्थिक स्थिति के सुधारने में. इसका अधिक उपयोग किया जावेगा।

सहकारिता के सिद्धान्त को मोटे रूप में समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए। एक गाँव के तीस निवासी समीपवर्ती नगर में अपना दूध बेचने जाते हैं। पाठकों ने प्रातः काल देखा होगा कि शहरों में प्रत्येक ओर से ग्रामवासी अपनी छोटी-छोटी मटकी में थोड़ा-थोड़ा दूध लाकर शहर में हलवाइयों को बेच जाते हैं। इसका परिमाण यह होता है कि प्रत्येक किसान का प्रतिदिन तीन-चार घंटा समय व्यर्थ

नष्ट होता है। यदि वे सब मिलकर एक समिति स्थापित करलें और गाँव के सभी सदस्यों का दूध बारी-बारी से शहर में आकर बेच जावें तो प्रत्येक किसान को महीने में केवल एक बार ही शहर जाना होगा। इससे केवल यही लाभ न होगा कि प्रत्येक किसान का २६ दिन का परिश्रम बच जावेगा, वरन् यह भी लाभ होगा कि जब ३० व्यक्तियों का दूध इकट्ठा बेंचा जावेगा तो उसके अच्छे दाम मिल सकेंगे। इन ३० दूध बेचनेवाले किसानों के संगठन को सहकारिता कहेंगे।

जहाँ सहकारिता आन्दोलन जनता की आर्थिक स्थिति में सुधार करना चाहता है वहाँ वह उसका नैतिक धरातल भी ऊँचा उठाना चाहता है। सामूहिक रूप में कार्य करने की भावना, भ्रातृभाव, सच्चाई और ईमानदारी, स्वावलम्बन की भावना, इत्यादि आधारभूत नैतिक सिद्धान्तों को अपनाने के कारण, जिन पर सहकारिता आन्दोलन का भवन खड़ा किया गया है, वह व्यापार और व्यवसाय में नैतिक पुट देने में सफल हुआ है। जो लोग सहकारिता आन्दोलन में कार्य करते हैं, उन्हें इस आन्दोलन के इस नैतिक पक्ष को न भूल जाना चाहिए। यदि सहकारी समितियों में नैतिकता की ओर ध्यान न दिया गया तो वे महाजनी की अच्छी दूकानें हो सकती हैं किन्तु सहकारी समितियाँ नहीं हो सकतीं।

आज संसार में समाज के आर्थिक संगठन के तीन आदर्श हमारे सामने उपस्थित हैं—पूँजीवाद, समाजवाद और सहकारिता। पूँजीवाद में उत्पादकों अर्थात् मजदूरों और उपभोक्ताओं का व्यवसायियों तथा बीच के दलालों द्वारा खूब ही आर्थिक शोषण होता है। पूँजीपति मजदूरों को कम मजदूरी देकर शेष सब अपनी तिजोरी में रख लेता है। पूँजीवादी व्यवस्था में लाखों का शोषण होता है और उसका लाभ एक को मिलता है। धनी अधिक धनी होता जाता है और निर्धन अधिकाधिक निर्धन होता जाता है। पूँजीवादी व्यवस्था का आदर्श है "सब एक के लाभ के लिए।"

पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा उत्पन्न भयंकर आर्थिक विषमता की प्रतिक्रिया समाजवादी व्यवस्था में हुई है। इस व्यवस्था में धनोत्पादन के साधनों पर व्यक्ति को अपना अधिकार नहीं करने दिया जाता। उन पर राष्ट्र का स्वामित्व स्थापित कर दिया जाता है, और उत्पन्न हुए धन का वितरण भी राष्ट्र के अधिकार में होता है। राष्ट्र प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता के अनुसार उसे देता है। व्यक्ति की आर्थिक स्वतंत्रता पर राष्ट्र का नियंत्रण हो जाता है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि समाजवादी व्यवस्था में "प्रत्येक व्यक्ति राज्य अथवा राष्ट्र के लिए होता है"। समाजवादी व्यवस्था में राज्य जो समाज का प्रतीक है, सर्वोपरि होता है; उसमें व्यक्ति का कोई महत्व नहीं होता।

सहकारी व्यवस्था इन दोनों से ही भिन्न है। उसमें न तो व्यक्ति की स्वतंत्रता का ही अपहरण होता है और न व्यक्ति द्वारा समाज के अधिकांश जनों के शोषण की छूट ही होती है। सहकारी संगठन स्वतंत्र व्यक्तियों के सामूहिक संगठन को कहते हैं। सहकारी व्यवस्था में व्यक्तिगत सम्पत्ति की मनाही नहीं होती। व्यक्तिगत लाभ से आर्थिक प्रयत्न में जो प्रेरणा मिलती है, सहकारी व्यवस्था में रहती है, किन्तु व्यक्तियों का एक पूँजीपति द्वारा आर्थिक शोषण नहीं हो पाता। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सहकारिता का आदर्श है—"सब एक के लिए और एक सारे समाज के लिए।"

मनुष्य-समाज आज एक बड़ी उलझन में फंसा हुआ है। एक ओर पूँजीवाद की आन्तरिक बुराइयों के कारण पूंजीवाद को जन-साधारण घृणा से देखते हैं। जिन देशों में पूंजीवादी पद्धति का बोल-बाला है वहाँ अनन्त धनराशि कुछ थोड़े से पूंजीपतियों के हाथ में इकट्ठी हो जाती है। वे क्रमशः उस देश के समाचार-पत्रों पर अधिकार कर लेते हैं और राजनैतिक दलों को आर्थिक सहायता देकर अपने प्रभाव में कर लेते हैं। अस्तु उन देशों में जनतन्त्र नाम को

ही रह जाता है, वहाँ की राजनीति उन बड़े धन कुबेरों के संकेत पर चलती है। सर्वसाधारण के हित के विरुद्ध एक वर्ग का वहाँ प्रधान्य हो जाता है। दूसरी ओर कम्यूनिस्ट रूस में जहाँ उत्पादन के साधनों का अधिकतर राष्ट्रीयकरण हो गया है वहाँ व्यक्तिगत स्वामित्व के अभाव में उत्पादन की कठिनाइयां बढ़ जाती हैं और वहाँ व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता बिलकुल लोप हो जाती है। वह समाज रूपी यंत्र का एकमात्र पुर्जा भर रह जाता है। यहीं नहीं कि व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता कम्यूनिस्ट रूस में समाप्त हो गई है वरन वहाँ एक खतरा खड़ा हो रहा है। राज्य के भीमकाय कारखानों का प्रबन्ध करने की क्षमता केवल कुछ अत्यन्त कुशल प्रबन्धकों में ही होती है उनको राज्य आसानी से हटा नहीं सकता। अस्तु क्रमशः प्रबन्धक वर्ग का प्रभाव देश में बढ़ रहा है और आगे चल कर यह खतरा पैदा हो सकता है कि एक शोषक वर्ग वहाँ भी उत्पन्न हो जावे।

सहकारिता के द्वारा समाज का आर्थिक संगठन करने का एक तीसरा तरीका है जो कि इन दोषों से मुक्त है। सहकारिता धन के असमान वितरण को रोकती है, साथ ही समाज में शोषण तथा प्रतिस्पर्द्धा का विनाश करती है। सहकारिता के आधार पर संगठित समाज में व्यक्तिगत स्वामित्व की भावना को बिलकुल नाश नहीं कर दिया जाता। व्यक्ति अपने परिश्रम के फल को प्राप्त करता है, परन्तु साथ ही व्यक्ति को इतना प्रबल नहीं होने दिया जाता कि वह समाज के हितों के विरुद्ध अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को बढ़ाने में सफल हो सके। अस्तु आज के शत प्रतिशत समाज को सहकारिता का अधिकाधिक सहारा लेना होगा तभी वह शान्ति लाभ कर सकेगा।

सहकारिता की विशेषताएं:—अब हम संक्षेप में सहकारिता की उन विशेषताओं का वर्णन करेंगे जिनके कारण सहकारिता मानव जाति के लिए एक विशेष महत्व रखता है:—

सहकारिता आन्दोलन में लोग स्वेच्छा से आते हैं:— सहकारिता आन्दोलन में काम करने वाले इस बात में एकमत हैं कि सहकारी संगठन में आने के लिए किसी पर कोई दबाव न डालना चाहिये, वह नितान्त स्वेच्छा से ही होना चाहिए। जो व्यक्ति उसकी उपयोगिता को समझे वह उसका सदस्य बने। सहकारिता आन्दोलन में कार्य करने वाले दबाव डालकर अथवा किसी प्रकार का प्रलोभन देकर किसी को सहकारी संगठन में लाने की कल्पना भी नहीं करते।

पारस्परिक सहायता के द्वारा निज की सहायता—सहकारिता आन्दोलन की दूसरी विशेषता यह है कि वह 'पारस्परिक सहायता के द्वारा निज की सहायता' के सिद्धान्त पर आधारित है। केवल स्वेच्छा से संगठन में आने की सुविधा प्रदान कर देने से ही वह सहकारी संगठन नहीं बन सकता। अन्य संस्थायें जैसे मिश्रित पूंजीवाली कंपनियों में भी लोग स्वेच्छा से ही हिस्सेदार बनते हैं, परन्तु वे सहकारी संस्था नहीं होतीं। सहकारिता का सिद्धान्त है 'पारस्परिक सहायता के द्वारा निज की सहायता की जावे'। सहकारी संगठन व्यक्तियों का संगठन नहीं होता, जो दूसरों का शोषण करके अपने सदस्यों को लाभ पहुँचाता है। यह उन लोगों का संगठन होता है जिन्हें सहायता की आवश्यकता होती है और जो बाहरी व्यक्तियों की सहायता पर निर्भर नहीं रहते। वे अपने साधनों को इकट्ठा करने के लिए सहयोग करते हैं और एक दूसरे की मदद करके वे अपनी मदद करते हैं। वे अपनी निर्बलता को दूर करके शक्ति प्राप्त करने के लिए 'प्रत्येक (व्यक्ति) सबों के लिए और सब (समूह) एक के लिए' सिद्धान्त को अपनाते हैं। जो मदद करते हैं और जिन्हें मदद की जरूरत होती है उनके स्वार्थों में कोई संघर्ष नहीं होता, क्योंकि मदद देने वाले और मदद लने वाले एक ही होते हैं। बात यह है कि सहकारिता में वे लोग ही सम्मिलित होते हैं जिनकी

आवश्यकताएं एक सी होती हैं और वे ही समितियों के हिस्से इत्यादि खरीदते हैं। अस्तु जिनको आवश्यकता पड़ती है वे सहकारी समिति से सहायता लेते हैं। जो किसी समय सहायता नहीं लेते वे यह भली-भाँति जानते हैं कि जब उन्हें आवश्यकता होगी तो वह उन्हें अवश्य प्राप्त होगी और वे लोग ही उनकी सहायता करेंगे जिन्हें आज उन्होंने सहायता दी है। अतएव सहकारिता में स्वार्थों का संघर्ष नहीं होता।

'पारस्परिक सहायता के द्वारा स्वयं अपनी सहायता' का सिद्धान्त उन व्यक्तियों के दृष्टिकोण में, जो उसे स्वीकार करते हैं, मूलभूत परिवर्तन कर देता है। प्रत्येक स्वयं अपने लिए' को छोड़कर व्यक्ति की सहानुभूति समूह के लिए जागृति होती है। सहकारिता में केवल व्यक्तिगत स्वार्थपरता के लिए कोई स्थान नहीं है।

सहकारिता में व्यक्तिवाद का स्थान नहीं होता—पारस्परिक सहायता के द्वारा स्वयं अपनी सहायता करने के सिद्धान्त को अपनाने के फलस्वरूप व्यक्तिवाद को सहकारिता आन्दोलन में कोई जगह नहीं रहती। व्यक्तिवाद प्रतिस्पर्द्धा को जन्म देता है और सहकारिता उसको समाज से निकाल देना चाहती है। यहीं पूंजीवाद और सहकारिता में मौलिक भेद है, पूंजीवाद व्यक्तिवाद और प्रतिस्पर्द्धा के आधार पर खड़ा रहता है जब कि सहकारिता व्यक्तिवाद और उससे उत्पन्न होने वाली प्रतिस्पर्द्धा को समाज से निकाल बाहर करना चाहता है।

सहकारिता का आधार जनतंत्र है—सहकारिता का एक प्रमुख सिद्धान्त जनतंत्र है। सहकारी संगठन जनतंत्रीय आधार पर खड़े किए जाते हैं। सहकारी संगठन में सभी व्यक्ति बराबर हैं सबके समान अधिकार होते हैं। सहकारिता में ऊँच-नीच, धनी, निर्धन जाति इत्यादि का कोई भेद-भाव नहीं होता। सदस्य चाहे जिस जाति, धर्म, के हों, चाहे जितने धनी या निर्धन हों परन्तु उनके अधिकार एक समान होते हैं। इसी सिद्धान्त के आधार पर सहकारी संगठन के

द्वार किसी व्यक्ति के लिए सदैव खुले रहते हैं। सदस्य केवल मानवता के आधार पर एक दूसरे से मिलते हैं और सबों का सहकारी संगठन से एक समान लाभ होता है। यदि किसी सहकारी समिति में कुछ व्यक्ति प्रभाव जमालें और उस गुट्ट का ही वहाँ बोलबाला हो जावे और वे अपने हितों को प्रधानता देने लगें तो वह सहकारी संगठन नहीं रहेगा।

सहकारिता का चरित्र पर विशेष बल होता है—व्यापार संगठन के अन्य तरीकों के विरुद्ध सहकारी संगठन में मानवीयता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। अन्य व्यापारिक संगठन अपने सदस्यों के चरित्र पर इतना बल नहीं देते। वे तो केवल उस उद्देश्य की पूर्ती पर ही बल देते हैं जिसके लिए वे खड़े किए गए हैं। सहकारिता केवल उस उद्देश्य की प्राप्ति पर ही बल नहीं देता जिसके लिए वह खड़ा किया गया है वरन् सदस्यों के चरित्र-निर्माण पर विशेष बल देता है और उनमें मितव्ययिता तथा आत्मनिर्भरता तथा स्वाभिमान की भावना जागृत करता है। सहकारिता अपने सदस्यों में से स्वार्थपरता की भावना को दूर करता है अस्तु उसमें आर्थिक उद्देश्य के साथ-साथ नैतिक उद्देश्य भी होता है।

ऊपर के सिद्धान्तों को पढ़ने से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि सहकारिता पूंजीवादी संगठनों, समाजवादी संगठन, ट्रेड यूनियन अथवा दान देने वाली संस्था से सर्वथा भिन्न है।

ट्रेड यूनियन वर्तमान पूंजीवादी आर्थिक पद्धति को स्वीकार करती है तथा मालिक पर दबाव डालकर मजदूरों की स्थिति को सुधारना चाहती है। सहकारिता पूंजीवादी पद्धति को अस्वीकार करता है और पारस्परिक सहायता द्वारा अपनी सहायता के सिद्धान्त के आधार पर अपने सदस्यों की स्थिति को स्वयं उनके अपने प्रयत्न से सुधारने में सहायता देता है।

समाजवाद व्यक्तिगत जायदाद को स्वीकार नहीं करता किन्तु

सहकारिता ऐसा नहीं करता। वह व्यक्ति की स्वतंत्रता को स्वीकार करता है और उसकी स्थिति को "पारस्परिक सहायता" के द्वारा सम्हालने का प्रयत्न करता है।

कोई कोई लोग सहकारी समिति को एक दान देने वाली संस्था समझते हैं, परन्तु यह भूल है। यद्यपि दोनों ही निर्धनों की सहायता करती हैं परन्तु उनमें एक मौलिक अन्तर है। दान बाहर से मिलता है अस्तु लेने वाले के आत्मसम्मान को धक्का पहुँचता है परन्तु सहकारी संगठन में सहायता स्वयं अपने में से आती है और आत्म सम्मान की भावना जाग्रति करती है।

पूंजीवादी संगठन तथा सहकारी संगठन में भी मौलिक भेद हैं। पूंजीवादी संगठन पूंजी का संगठन होता है, व्यक्ति का उसमें कोई महत्व नहीं होता। सहकारी संगठन व्यक्तियों का संगठन होता है। पूंजी का स्थान उसमें गौण होता है।

पूंजीवादी संगठन का आधार निज का स्वार्थ होता है। सहकारी संगठन में व्यक्तिवाद को कोई स्थान नहीं होता निज का स्वार्थ सामूहिक स्वार्थ के द्वारा पूरा होता है। सहकारी संगठन में प्रतिस्पर्द्धा को कोई स्थान नहीं होता, एक दूसरे के स्वार्थों को धक्का नहीं पहुँचाता।

सहकारी संगठन से होने वाले लाभ या सुविधायें सबों को एक समान प्राप्त होती हैं। पूंजीवादी संगठन में जितनी पूंजी किसी सदस्य ने लगाई है उसके अनुसार ही लाभ प्राप्त होता है।

पूंजीवादी संगठन का आधार ही लाभ प्राप्त करना होता है अस्तु उसमें तथा जिनसे पूंजीवादी संगठन व्यवहार करता है उनमें संघर्ष होना अनिवार्य है। सहकारी संगठन जिनको सहायता की आवश्यकता होती है वे और जो सहायता देते हैं वे एक ही होते हैं अस्तु उनमें स्वार्थों का संघर्ष नहीं होता।

अस्तु हम एक वाक्य में कह सकते हैं कि सहकारिता नैतिक आधार पर आश्रित व्यापार का एक तरीका है।

भारतवर्ष के लिये सहकारिता का सिद्धान्त नया नहीं है। भारतीय समाज अत्यन्त प्राचीन काल से सहकारिता का उपयोग करता आ रहा है। यद्यपि वर्तमान रूप में सहकारिता समितियाँ इस देश के लिए नई वस्तु हैं, किन्तु सिद्धान्त रूप से तो सहकारिता हिन्दू समाज के जीवन में ओतप्रोत है। सम्मिलित कुटुम्ब, जो हिन्दुओं की एक अत्यन्त प्राचीन सामाजिक संस्था है, सहकारी संस्था ही तो है? आज भी बहुत से कार्य गाँवों में किसान लोग सामूहिक रूप में करते हैं। उत्तर प्रदेश के ईख उत्पन्न करनेवाले किसानों में यह बात बहुत से गाँवों में प्रचलित है कि वे एक या दो कोल्हू मिलकर मोल ले लेते अथवा किराये पर ले आते हैं तथा बारी-बारी से अपनी ईख पेर लेते हैं।

अपने अर्थशास्त्र में सामूहिक रूप से कार्य करने के लिए आदेश करते हुए, आचार्य कौटिल्य ने कई बार सहकारिता का महत्व बतलाया है। प्राचीन काल में कारीगरी के संघ भारतवर्ष में बहुत थे, जिनका विवरण वेदों तथा मनुस्मृति में मिलता है। 'रस्टिकस, लोकिटर' नामक पुस्तक में लिखते हुए, श्री० एम० एल० डार्लिंग ने पंजाब के गाँवों के विषय में जो विवरण दिया है, उनसे ज्ञात होता है कि वहाँ गाँवों में आज सामूहिक रूप से बहुत सा कार्य होता है। किसी किसी गाँव में दो से दस तक किसान सम्मिलित होकर एक वर्ष के लिये भूमि जोतते हैं। फसल के कटने पर पैदावार को, प्रत्येक किसान द्वारा खेत पर किये गये काम तथा उसके बैलों के उपयोग के अनुपात में, बाँट दिया जाता है। यह वार्षिक साझेदारी कभी-कभी कई वर्षों तक चलती है। बहुत से गाँवों में, जब फसल पकने पर होती है तो एक रखवाला खेतों की देखभाल के लिए रख दिया जाता है। फसल काटने तथा बोने के समय भी पड़ोसी एक-दूसरे की सहायता करते हैं। प्रत्येक घर के मनुष्य गाँव के कुओं की मरम्मत के लिये बारीबारी से काम करते हैं। कहीं-कहीं गाँव के लोग सड़क भी मिल कर बनाते हैं। मदरास प्रान्त में सहकारिता

आन्दोलन के श्रीगणेश के पूर्व, 'निधि' स्थापित हो चुकी थीं। निधियाँ एक प्रकार की अर्ध-सहकारी संस्था होती है।

लेखक को कई बार राजस्थान में यात्रा करने का अवसर मिला है और उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वहाँ बहुत से गाँवों में समाज शुद्ध सहकारिता का उपयोग करता है। राजस्थान के दक्षिण में मेवाड़ का प्रसिद्ध राजपूत राज्य है, जिसकी राजधानी उदयपुर है। उदयपुर से लगभग ३० मील की दूरी पर मैनार नामक एक गाँव है। बहुत समय हुआ, उदयपुर के महाराणाओं ने यह गाँव कुछ ब्राह्मणों को दान कर दिया था। आज भी वह गाँव उन्हीं ब्राह्मणों की सन्तान के अधिकार में है। दो हजार की आबादी वाले इस गाँव में अधिकतर ब्राह्मण लोगों की बस्ती है। पंचायत ने कुछ निम्न जाति के लोग बसा लिए हैं, जो गाँव की सेवा करते हैं। पञ्चायत यहाँ का शासन करती है। गाँव के बीच में एक शिवालय है, जो पञ्चायत का न्यायालय है। प्रति दिन पञ्च लोग वहीं बैठकर गाँव की समस्याओं पर विचार करते हैं और मुकदमों को निपटाते हैं। मन्दिर में एक पुजारी रहता है, जिसको पञ्चायत थोड़ी सी भूमि दे देती है। घर पीछे पञ्चायत छटांक भर घी, सवा सेर तेल, पाव भर रूई प्रति वर्ष मन्दिर के खर्चे के लिए लेती है।

मेवाड़ में सिंचाई के लिए तालाबों का बहुत उपयोग होता है। मैनार में एक विशाल जलाशय है, जिसका क्षेत्रफल लगभग तीन वर्ग मील होगा। प्रति वर्ष, वर्षा के पूर्व पञ्चायत उसके बांध की मरम्मत करवाती है। यह मरम्मत गाँववाले स्वयं कर लेते हैं। नियम यह है कि गाँव का प्रत्येक पुरुष, स्त्री तथा लड़का एक घन फुट मिट्टी खोदकर बाँध पर डाले। गाँव की लड़कियों से यह कार्य नहीं लिया जाता, क्योंकि हिन्दुओं में लड़कियों को पूज्य समझा जाता है। पञ्च लोग खुदी हुई भूमि को नाप लेते हैं। यदि गाँव को किसी बाहरी आदमी अथवा गाँव से, राजकीय अदालतों में मुकदमा लड़ना होता है तो

पञ्चायत घर पीछे कर लगा देती है। यदि कोई पंडित मिल जाता है तो पञ्चायत उसे रख लेती है और वह गाँव के लड़कों को पढ़ाता है। राजस्थान में गाँवों में नदी नालों का, जिनमें कि पानी सदा बहता हो, अभाव है और, गरमियों में जब पशु चरने को जाते हैं तो उनको जल का कष्ट होता है; इसलिए वहाँ सर्वत्र यह नियम प्रचलित है कि प्रत्येक किसान बारी-बारी से एक कुएँ पर अपने बैल और चरस लेकर उपस्थित रहता है और जब गाँव के पशुओं को जल की आवश्यकता हो तो उन्हें जल पिलाता है। भारतवर्ष में ऐसे बहुत से स्थान हैं जहाँ के ग्रामीण जीवन में हमें शुद्ध सहकारिता का स्वरूप देखने को मिलता है। किन्तु जहाँ जहाँ पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव अधिक पड़ गया है, वहाँ व्यक्तिवाद के कारण सामूहिक जीवन नष्ट हो गया है।

भारतवर्ष जैसे कृषि-प्रधान देश में, जहाँ कृषि ही मनुष्यों की जीविका का प्रधान साधन है, सहकारिता आंदोलन कितना आवश्यक है, यह आगे के परिच्छेदों में स्पष्ट हो जावेगा। यदि पुरानी संस्थाओं को पुनर्जीवित किया जावे और उन्हें आधुनिक सहकारी संस्थाओं का रूप दे दिया जावे तो देश में ग्राम-सुधार का कार्य सफलता-पूर्वक हो सकता है।

द्वितीय परिच्छेद

भिन्न-भिन्न प्रकार की सहकारी समितियाँ

पिछले परिच्छेद में सहकारिता के सिद्धान्तों की चर्चा की गई है उससे स्पष्ट हो जाता है कि सहकारिता आन्दोलन का उपयोग प्रत्येक आर्थिक समस्या के हल करने में किया जा सकता है। वास्तव में सहकारिता आन्दोलन का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि किसी भी देश में सहकारी समितियों की एकसी उन्नति दिखाई नहीं देती। इंगलैंड में उपभोक्ता-सहकारी-स्टोर्स को आश्चर्यजनक सफलता मिली है, जर्मनी में सहकारी साख समितियों तथा बैंकों ने आशातीत सफलता प्राप्त की है. फ्रांस ने उत्पादक सहकारी समितियों की ओर अधिक ध्यान दिया है. इटली में श्रमजीवी सहकारी समितियाँ विशेष सफल हुई हैं और डेनमार्क ने सहकारिता का उपयोग खेतीबारी के लिये किया है। भारतवर्ष में सहकारी साख समितियाँ ही अधिक संख्या में हैं। बात यह है कि प्रत्येक देश ने अपनी आवश्यकता को पूरा करने के लिये सहकारिता आंदोलन का उपयोग किया है। जहाँ जिस प्रकार की सहकारी समितियों की अधिक आवश्यकता थी, वहाँ उसी प्रकार की समितियाँ स्थापित की गईं। हमें अब देखना यह है कि सहकारी समितियाँ कितनी तरह की होती हैं और उनकी विशेषता क्या है।

यदि हम समाज का आर्थिक दृष्टि से विभाजन करें तो वह तीन समूहों में बाँटा जा सकता है—सम्पत्ति की उत्पत्ति करनेवाले, सम्पत्ति का उपभोग करनेवाले, तथा दलाल, जो उत्पन्न की हुई सम्पत्ति को उपभोक्ताओं तक पहुँचाते हैं। उत्पन्न करनेवालों में वे सभी लोग आ जाते हैं जो किसी भी रूप में सम्पत्ति का उत्पादन करते हैं,

किसान, सब प्रकार के कारीगर जो गृह-उद्योग-धन्धों में लगे हुए हैं, मिल-मालिक तथा मिल-मजदूर। दलालों की श्रेणी के अंतर्गत वे सभी लोग आते हैं, जो उत्पन्न की हुई सम्पत्ति को उपभोक्ता के पास पहुँचाते हैं, जैसे बड़े-बड़े व्यापारी, जो विदेशों से व्यापार करते हैं, थोक व्यापारी, फुटकर बेचनेवाले, बैलगाड़ी मोटर तथा रेलवे लाइनों पर काम करनेवाले, जहाज चलानेवाले, तथा कमीशन-एजेन्ट। तीसरा समूह उपभोग करनेवालों का है। देश की समस्त जन-संख्या ही इस समूह में आजाती है, क्योंकि कुछ चीजें ऐसी हैं जिन्हें उत्पन्न तो थोड़े से ही लोग करते हैं, किन्तु उपभोग प्रत्येक मनुष्य करता है। अस्तु, उपभोक्ता समूह सबसे बड़ा है, उसके बाद उत्पादक समूह आता है, और सबसे छोटा दलाल समूह है।

सहकारिता आन्दोलन मुख्यतः आर्थिक आन्दोलन है। जिस वर्ग की आर्थिक स्थिति कमज़ोर है, उस वर्ग को सङ्गठित करके सबल बनाना ही उसका उद्देश्य है। किसी ने ठीक ही कहा है, "सहकारिता! तू निर्धनों का बल है।" जो निर्धन हैं, वे ही सहकारिता की शरण में आते हैं और अपना सङ्गठन करते हैं क्योंकि ऐसा किये बिना वे धनी प्रतिद्वन्दी की प्रतिस्पर्धा में खड़े नहीं रह सकते। दलाल-समूहों के लोगों को, जो शक्तिवान और सम्पन्न होते हैं तथा जिन्होंने बाजार पर अपना एकाधिपत्य जमा रखा है, सहकारिता की सहायता नहीं चाहिए। दलाल, उत्पादक समूह को उसके परिश्रम के लिये कम से कम मूल्य देकर, उपभोग करनेवालों से अधिक से अधिक मूल्य लेते हैं। सहकारिता आन्दोलन ऐसे समूह की कोई सेवा नहीं कर सकता। उत्पादक समूह तथा उपभोक्ता समूह में से भी सहकारिता उन्हीं लोगों की सेवा कर सकती है, जो निर्बल हैं और जिन पर आर्थिक अत्याचार हो रहा है।

उत्पादक समूह, उत्पादक सहकारी समितियाँ स्थापित कर सकता है। ये समितियाँ प्रत्येक धन्धे तथा प्रत्येक स्थान के लिये पृथक-पृथक

होंगी। उदाहरण के लिये बुनकर सहकारी समितियाँ प्रत्येक स्थान के लिये पृथक्-पृथक् होंगी, जैसे बनारस सिल्क-वीवर्स सहकारी समिति, लुधियाना बुनकर सहकारी समिति। इसी प्रकार उपभोक्ता समितियाँ भी प्रत्येक स्थान के लिये अलहदा होंगी। यही नहीं, उपभोक्ता सहकारी समितियाँ एक पेशे में काम करनेवालों के लिये भी अलग-अलग होती हैं जैसे इलाहाबाद के लिये एक सहकारी उपभोक्ता स्टोर्स हो सकता है, प्रयाग विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के लिये विश्वविद्यालय सहकारी स्टोर्स हो सकता है, रेलवे कर्मचारियों के लिये स्टोर्स चलाया जा सकता है। अस्तु, सहकारी समितियों के दो मुख्य भेद हैं, उत्पादक समितियाँ और उपभोक्ता समितियाँ। उत्पादक समितियों का उद्देश्य यह होता है कि माल कम खर्च से तैयार किया जावे और उसे अच्छे दामों पर बेचा जावे, जिससे कि उत्पत्ति करनेवालों को अधिक लाभ हो। उपभोक्ता स्टोर्स का ध्येय यह होता है कि तैयार माल को सस्ते दामों पर खरीदें और अपने सदस्यों को सस्ते दामों पर दें। ये दोनों ही तरह की सहकारी समितियाँ दलालों को अपने स्थान से हटा देने का प्रयत्न करती हैं।

उपभोक्ता स्टोर्स बीच के दलालों को हटा ही देते हैं; उनका लक्ष्य यह होता है कि आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन भी वही करें। जहाँ उपभोक्ता समितियाँ अधिक संख्या में स्थापित हो गई हैं, वहाँ वे उत्पादन कार्य भी करने लगी हैं। दूसरी ओर उत्पादक समितियाँ बीच के सब दलालों को अपने स्थान से हटाकर उपभोक्ता से सीधा सम्बन्ध स्थापित करना चाहती हैं। पाठक कह सकते हैं कि तब तो यह दो प्रकार की समितियाँ एक दूसरे की विरोधी हुईं। किन्तु जब समाज का आर्थिक संगठन सहकारिता के सिद्धान्तों के अनुसार होगा और समाज एक बृहद् सहकारी संगठन का रूप धारण कर लेगा तब इन दो प्रकार की समितियों का पारस्परिक विरोध मिट जायगा, उत्पत्ति करनेवालों को

अपने माल का उचित मूल्य मिलेगा तथा उपभोग करनेवालों को उचित मूल्य देना होगा।

इन दो प्रकार की समितियों के अन्तर्गत बहुत प्रकार की समितियाँ होती हैं, उदाहरण के लिये साख समितियाँ तथा बैंक। क्रय विक्रय समितियाँ, उपभोक्ता स्टोर, बुनकर समितियाँ, अथवा उद्योग धन्धों का संगठन करने वाली समितियाँ इत्यादि। भारतवर्ष में अधिकतर सहकारी साख समितियाँ ही स्थापित की गई हैं। यह देश कृषि-प्रधान है; यहाँ की तीन चौथाई जनसंख्या खेती-बारी पर अपने उदर पालन के लिये निर्भर रहती है। इसके अतिरिक्त इस देश की ९० प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती हैं। गाँव की आवश्यकताएँ शहरों से भिन्न होती हैं। गाँव वालों को खेती बारी के लिये साख की अत्यन्त आवश्यकता होती है। उनकी स्थिति इतनी खराब होती है कि उनको कोई व्यापारिक बैंक पूँजी नहीं देता। इस कारण उन्हें महाजन की शरण जाना पड़ता है। महाजन किसान का इस प्रकार दोहन करता है कि वह कभी पनप ही नहीं सकता और सर्वदा ऋणी रहता है। सहकारी साख समितियाँ उसकी आर्थिक स्थिति को सुधारने का प्रयत्न करती है। साख समितियों के अतिरिक्त किसानों के लिये अन्य प्रकार की सहकारी समितियाँ भी स्थापित की गई हैं, जैसे चकबंदी सहकारी समितियाँ, दूध सहकारी समितियाँ, सिंचाई सहकारी समितियाँ, विक्रय समितियाँ इत्यादि। भारतवर्ष में किसानों के अत्यन्त ऋणी होने के कारण तथा साख का विशेष महत्त्व होने के कारण, यहाँ सहकारी समितियाँ दो श्रेणियों में बाँटी जाती हैं— साख समितियाँ और गैर-साख-समितियाँ।

अन्तर्राष्ट्रीय कृषि इंस्टीट्यूट ने सहकारी समितियों का निम्नलिखित विभाजन किया है:—(१) साख, (२) उत्पादक, (३) क्रय और (४) विक्रय। एक समिति एक, या एक से अधिक, कार्य कर सकती है। उदाहरण के लिये एक ही समिति क्रय और विक्रय दोनों का कार्य

करती है। वास्तव में सहकारी समितियाँ कितने प्रकार की होती हैं, यह बताना कठिन है। प्रत्येक आर्थिक समस्या को हल करने के लिए सहकारिता का उपयोग किया जा सकता है और किया गया है। अच्छा अब हम देखेगें कि भिन्न-भिन्न प्रकार की समितियों का संगठन कैसे होता है?

खेती-बारी के लिये साख समितियाँ—भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है, इस कारण हम पहले साख समितियों पर विचार करते हैं। आधुनिक आर्थिक संगठन में साख का अत्यन्त महत्व है, सबसे बड़ा व्यवसायी और छोटे से छोटे कारीगर भी बिना साख के अपना कार्य नहीं चला सकता। बड़े-बड़े व्यवसायी आरम्भ में लाखों रुपये लगाकर मिल खड़ी करते हैं, जब मिल चलने लगती है और तैयार माल बिकने लगता है तब कहीं मिल-मालिक को रुपया मिलता है। व्यवसायियों को औद्योगिक बैंकों से आरम्भ में पूंजी मिल जाती है और मजदूरों के वेतन के लिये वे व्यापारिक बैंको से पूंजी उधार ले लेते हैं। व्यापारी तथा दलालों को, जो तैयार माल का अथवा खेती-बारी की पैदावार का व्यापार करते हैं, माल लेते समय तो उसका मूल्य देना पड़ता है, परन्तु वह माल बहुत दिनों के बाद बिकता है। ऐसी स्थिति में यदि उन्हें कहीं से पूँजी न मिले तो उनका व्यापार ही चौपट हो जावे। अस्तु, व्यापारियों को व्यापारिक बैंक से रुपया मिल जाता है। जो व्यापारी विदेशी व्यापार करते हैं उन्हें विनिमय बैंक से साख मिल जाती है। साख के साथ जोखिम भी है। जो बैंक अथवा मनुष्य किसी को ऋण देता है, वह पूँजी के मारे जाने की जोखिम भी उठाता है। अस्तु, बिना ज़मानत के कोई भी साख नहीं देता। साख और ज़मानत का साथ है, बिना जमानत के साख नहीं मिल सकती। एक निर्धन किसान अथवा कारीगर जिसके पास पूँजी नहीं है, इन बैंकों से ऋण नहीं पा सकता, क्योंकि उसके पास ज़मानत कुछ भी नहीं होती। बड़े-बड़े व्यापारी व्यवसायियों के पास निजी

पूँजी यथेष्ट होती है, इस कारण व्यापारिक बैंक उन्हें कर्ज दे देता है। जो बैंक जमानत के बिना कर्ज दे देती है उसका दिवाला निकलने में देर नहीं लगती।

निर्धन किसानों के पास इतनी सम्पत्ति नहीं होती कि उससे उनकी साख हो। इसके अतिरिक्त एक कठिनाई और भी उपस्थित होती है, उनकी पूँजी की मांग इतनी थोड़ी होती है कि बड़े-बड़े व्यापारिक बैङ्क ऐसा काम लेना पसन्द नहीं करते। मान लीजिये कि एक हजार किसान जो कि भिन्न-भिन्न गाँवों में रहते हैं, बैङ्क से फसल बोने के समय कुल पचास हजार रुपया उधार लेना चाहते हैं, अर्थात् प्रत्येक किसान केवल पचास रुपये लेना चाहता है। यदि बैङ्क इन किसानों को रुपया देना स्वीकार करे तो उसे चार या पांच कर्मचारी केवल इसलिये नियुक्त करने होंगे कि वे इन किसानों की हैसियत की जाँच करें और यह बात बतलावें कि वे ईमानदार हैं अथवा नहीं, और उसको रुपया उधार देना चाहिये या नहीं। जो बैंक इस विषय में सतर्कता से काम नहीं लेता उसको हानि उठानी पड़ती है। बैंक व्यापारिक केन्द्रों में होते हैं, इस कारण बड़े-बड़े व्यापारियों की आर्थिक स्थिति की जाँच सरलता से हो सकती है। किन्तु भिन्न-भिन्न गाँवों में बिखरे हुए किसानों की आर्थिक स्थिति की ठीक-ठीक जाँच करना कठिन ही नहीं, व्यय-साध्य भी है। इसके अतिरिक्त एक हजार किसानों का हिसाब रखना तथा उनसे समय पर वसूल करना भी कठिन तथा व्ययसाध्य होता है। यदि एक व्यापारी पचास हजार रुपये उधार लेता है तो बैंक उसकी स्थिति की जाँच भी कर लेता है। उसके हिसाब के रखने तथा उससे रुपया वसूल करने में न तो अधिक कठिनाई और न अधिक व्यय ही करना पड़ता है। इन्हीं कारणों से किसान, छोटे कारीगर तथा अन्य निर्धन लोग इन बड़े बैंकों से कर्ज नहीं पा सकते। यही नहीं आधुनिक व्यापारिक बैंक का व्यवस्था व्यय इतना अधिक होता है कि जबतक कि यथेष्ट कार-

बार न हो वे अपनी शाखा वहाँ नहीं खोल सकते। छोटे गाँवों में इतना कारबार नहीं होता कि व्यापारिक बैंक वहाँ अपनी शाखा खोलें। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि पूँजी के बिना उत्पादन कार्य चल नहीं सकता, इस कारण किसान और कारीगर को पूँजी की आवश्यकता होती है। उनकी आवश्यकता को महाजन और साहूकार पूरी करते हैं।

महाजन किस प्रकार किसान और कारीगर का दोहन करते हैं, यह तो अगले परिच्छेदों में लिखा जायेगा, यहाँ यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि महाजनों का कर्जदार होकर किसान चिर-दास बन जाता है। वह कठिन परिश्रम करता है, किन्तु उसका लाभ मिलता है महाजन को। किसान को तो भूखे रहकर महाजन की थैलियाँ भरनी पड़ती हैं। किसानों और कारीगरों को इस आर्थिक दासता से छुड़ाने के लिये उनको अपने धन्धे के लिए उचित सूद पर पूँजी देने का आयोजन करने के लिए सर्वप्रथम जर्मनी में सहकारी साख समितियों की स्थापना हुई। जर्मनी में शुल्ज और रैफीसन नामक दो सज्जनों को निर्धन किसानों और कारीगरों की अत्यन्त शोचनीय आर्थिक स्थिति ने आकर्षित किया और दोनों ने लगभग एक ही समय देश के दो भिन्न-भिन्न भागों में दो प्रकार की सहकारी साख समितियों की स्थापना की।

रैफीसन तथा शुल्ज प्रणाली की सहकारी साख समितियाँ- रैफीसन तथा शुल्ज दोनों ही ने निर्धन किसानों और कारीगरों की सामूहिक साख पर पूँजी उधार लेने का आयोजन किया। कुछ लोगों का विचार है कि रैफीसन सहकारी साख समितियाँ केवल गाँव वालों के लिये, तथा शुल्ज सहकारी साख समितियाँ नगर निवासी कारीगरों के लिए उपयुक्त हैं। वास्तव में बात ऐसी नहीं है। रैफीसन सहकारी साख समितियाँ उन स्थानों के लिये उपयुक्त हैं, जहाँ अधिक जनसंख्या न हो, निवासी एक दूसरे से भलीभांति परिचित हों, तथा उस

स्थान पर स्थायी रूप से रहनेवाले हों, साथ ही जनता अधिक निर्धन हो। गाँवों के निवासियों में अधिकतर ऊपर लिखी हुई बातें मिलती हैं, इसलिये गाँवों में रैफीसन सहकारी साख समितियाँ अधिक पाई जाती हैं। यही कारण है कि साधारणतः लोग समझते हैं कि रैफीसन सहकारी समितियाँ गाँवों के लिए हैं।

इसके विपरीत, शुल्ज सहकारी साख समितियाँ ऐसे स्थानों के लिए उपयुक्त होती हैं, जहाँ जनसंख्या अधिक हो जिसके कारण उनके निवासी एक दूसरे से भली भाँति परिचित न हों, जनता स्थायी रूप से निवास न करती हो, अर्थात् वहाँ के निवासी काम की खोज में दूसरे स्थानों पर चले जाते हों, तथा वे अत्यन्त निर्धन न हों। यह स्थिति अधिकतर नगरों में होती है, इस कारण शुल्ज़ सहकारी साख समितियाँ शहरों में कारीगरों तथा अन्य लोगों के लिये खोली जाती हैं।

बात यह है कि रैफीसन सहकारी साख समितियाँ अपरिमित दायित्व वाली होती हैं, इस कारण उनके सदस्यों को स्थायी रूप से एक स्थान का निवासी होना तथा एक दूसरे से भली भाँति परिचित होना आवश्यक है। शुल्ज समितियाँ परिमित दायित्व वाली होती हैं इस कारण उनके लिये यह आवश्यक नहीं है।

रैफीसन सहकारी साख समितियाँ—रैफीसन साख समितियों के संस्थापक श्री रैफीसन महोदय का जन्म १८१८ में हैम नामक ग्राम में हुआ था। युवा अवस्था में वे सेना में भरती हो गये, किंतु शीघ्र ही उन्हें सैनिक जीवन छोड़ना पड़ा क्योंकि उनकी आँखें खराब हो गईं। सैनिक जीवन से हटकर वे सिविल सर्विस में आये और शीघ्र ही बरगोमास्टर नियुक्त किये गये। वे एक जिले के जिलाधीश बनाये गये। यहाँ पर उनको किसानों की दयनीय दशा का करुणा जनक दृश्य देखने को मिला। उन्होंने देखा कि वर्ष भर कठिन परिश्रम करते रहने पर भी निर्धन किसान को भरपेट भोजन नहीं

मिलता और वह सदा कर्जदार ही रहता है। यहूदी साहूकार किसान को जोंक की भाँति चूसता था, और सरकार का उस ओर ध्यान भी नहीं था। किसानों की पैदावार को साहूकार बहुत सस्ते दामों पर खरीद लेता था, और सूद की दर इतनी अधिक थी कि किसान उसके चंगुल से कभी भी नहीं निकल सकता था। किसान का मकान भूमि तथा हल और बैल सभी साहूकार के यहाँ गिरवी रख दिये जाते थे, और किसान उसका दास बन जाता था।

रैफीसन का हृदय इस नग्न निर्धनता को देख कर अत्यन्त दुखी हुआ। इसके उपरान्त वे उसी प्रदेश में एक दूसरे जिले में भेज दिये गये, वहाँ की दशा पहले से भी बुरी थी। बस, रैफीसन ने निर्धनता तथा भयंकर कर्जदारी से युद्ध छेड़ दिया। क्रमशः उसने सहकार साख समितियों का देश में एक जाल सा फैला दिया। यह ध्यान रखने की बात है कि रैफीसन को कोई सरकारी सहायता अथवा सहानुभूति प्राप्त नहीं हुई, आन्दोलन सफल हो गया तब भी उन्होंने सहायता लेना पसंद नहीं किया। सहकारी साख समितियों ने जर्मनी के गाँवों की कायापलट कर दी। किसान साहूकारों के चँगुल से निकल कर, ऋण-मुक्त हो गये, और उनकी आर्थिक स्थिति बहुत सुधर गई।

रैफिसन महोदय ने देखा कि निर्धन किसान को साख मिलने में कठिनाई होती है और उसे विवश होकर ग्रामीण महाजन से बहुत अधिक सूद पर कर्ज लेना पड़ता है उसका मुख्य कारण यह है कि व्यापारिक बैंकों तथा अन्य साख देने वाली संस्थाओं के लिए किसान की साख कुछ नहीं होती। साख बिना जमानत के नहीं मिल सकती। किसान के पास न तो ऐसी बहुमूल्य सम्पत्ति ही होती है और न कोई दूसरी जमानत होती है कि जिसके आधार पर उसे उचित मूल्य पर बैंक साख देना ठीक समझे। ऐसी दशा में रैफिसन ने सोचा कि किसान की जमानत उसकी ईमानदारी तथा परिश्रमी और सचरित्र

होना ही हो सकती है। यही कारण है कि रैफ़ीसन महोदय ने यह नारा दिया कि किसान की ईमानदारी और सचरित्रता को पूंजी में परिणित करो। उन्होंने सोचा कि यदि हम किसानों की एक ऐसी समिति बनावें जिसमें प्रवेश पाने के लिए कोई हिस्सा खरीदना तो आवश्यक न हो परन्तु ईमानदार और सचरित्र होना अत्यन्त आवश्यक हो। अर्थात् गाँव में जो ईमानदारी और सचरित्रता के लिए प्रसिद्ध हो, जुआ न खेलता हो, शराबी और दुर्व्यसनी न हो, वही उस समिति का सदस्य हो। दूसरे शब्दों में रैफीसन ने सदस्यता के लिए धन की शर्त न रखकर नैतिकता की शर्त रख दी। रैफीसन ने सोचा कि यदि सौ ईमानदार और सचरित्र तथा परिश्रमी किसान एक समिति बनावें और अपरिमित दायित्व को स्वीकार करें तो इस प्रकार की समिति को कोई भी बैंक अनायास ही ऋण देना स्वीकार करेगा। उस समिति की जमानत बहुत अच्छी होगी। इस प्रकार रैफीसन ने निर्धन किसानों की ईमानदारी और पुरुषार्थ को पूंजी में परिणित करने का सरल तरीका ढूँढ़ निकाला।

रैफीसन पद्धति की साख समितियों की विशेषताए ये हैं:— रैफीसन महोदय एक गाँव में एक ही साख समिति की स्थापना ठीक समझते हैं। यदि छोटे हों तो दो या तीन गाँवों के लिये एक समिति की स्थापना की जा सकती है। रैफ़ीसन का मत है कि समिति के सदस्य बनाने में बहुत छानबीन की आवश्यकता है; अधिक सदस्यों की इतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कि चरित्रवान सदस्यों की। सदस्यों में चाहे कितनी ही आर्थिक विषमता हो, किंतु गरीब और अमीर को समिति के प्रबन्ध में बराबर अधिकार है।

सब सदस्यों की सभा को साधारण सभा कहते हैं। साधारण सभा नीति निर्धारित करती है और वही प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्यों को चुनती है। साधारण सभा प्रबन्धकारिणी समिति को कार्य चलाने तथा सभा द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार कार्य करने का अधिकार

देती है। साधारण सभा अपने में से ही एक निरीक्षण-कौंसिल का चुनाव करती है। जो प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्यों के कार्य का निरीक्षण करती है। प्रबन्धकारिणी समिति तथा निरीक्षण कौंसिल के सदस्यों को कोई वेतन फीस, अथवा कमीशन नहीं दिया जाता। केवल कैशियर को थोड़ा वेतन दिया जाता है, किन्तु उसे कोई अधिकार नहीं होता, वह केवल समिति का नौकर होता है।

रैफीसन के अनुसार साख समितियों के सदस्यों को न तो फीस देने की आवश्यकता है और न उन्हें समिति का हिस्सा खरीदने की। जब जर्मन सरकार ने एक कानून बना दिया कि सदस्यों को हिस्से खरीदने चाहिए तब भी रैफीसन सहकारी समितियों ने अपने हिस्से का मूल्य नाममात्र रखा इनका उद्देश्य यह है कि गरीब किन्तु सच्चरित्र किसान, समिति के सदस्य बनने से वंचित न रह जावें।

रैफीसन, समिति के लाभ को बाँटने नहीं देता। उसका कथन है कि यदि लाभ सदस्यों में बाँटा जावेगा तो उन में लालच बढ़ जावेगा। वार्षिक लाभ रक्षित कोष में जमा होना चाहिए। रक्षित कोष को क्रमशः बढ़ाते रहने पर रैफीसन ने बहुत जोर दिया है। वह कहता था कि रक्षित कोष ही इस आन्दोलन का स्तम्भ है। यदि किसी वर्ष समिति को हानि हो तो वह इस कोष से पूरी की जा सकती है। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ा लाभ यह है कि अधिक कोष हो जाने से समिति के पास अपनी निज की कार्यशील पूँजी हो जायगी, और उधार नहीं लेनी होगी! इसका फल यह होगा कि समिति सूद की दर को घटा सकेगी और सदस्यों को कम सूद पर कर्ज मिल सकेगा।

यदि रक्षित कोष अधिक हो जावे तो यह रुपया गाँव में किसी सार्वजनिक हित के कार्य में व्यय किया जाता है। यदि कभी समिति टूट जावे तो सदस्य रक्षित कोष को आपस में नहीं बाँट सकते, समिति के टूट जाने पर कोष में जमा किया हुआ रुपया किसी ऐसी सार्वजनिक

संस्था के पास जमा कर दिया जाता है, जो भविष्य में, यदि उस गाँव में कोई दूसरी सहकारी समिति स्थापित हो, तो उसको देदे। कुछ समय व्यतीत हो जाने पर भी कोई दूसरी समिति स्थापित न हो तो वह रुपया उसी गाँव के सार्वजनिक हित के कार्यों पर व्यय कर दिया जावे। रैफीसन ने यह नियम इस लिए बनाया कि कहीं ऐसा न हो कि अधिक कोष जमा हो जाने पर सदस्य समितियों को तोड़ कर कोष का धन बाँट लें।

कर्ज देने के लिये रैफीसन ने यह सिद्धांत निश्चित किया कि ऋण केवल उसी आदमी को दिया जाना चाहिये, जो समिति की प्रबन्ध-कमेटी को निश्चय करा सके कि उसे पूँजी की आवश्यकता है और जिस कार्य को वह करने जा रहा है, उसमें सफल होने की संभावना है। समिति उत्पादन कार्यों के लिए रुपया दे। अनुत्पादक तथा व्यर्थ कार्यों के लिए रुपया न देना चाहिये। जब समिति एक बार सदस्य की आवश्यकता के विषय में छानबीन करके कर्ज देदे तब देखना चाहिए कि जिस कार्य के लिये सदस्य ने कर्ज लिया है, उसके अतिरिक्त और किसी कार्य में तो व्यय नहीं किया। निरीक्षण-कौंसिल प्रत्येक तीन महीने के उपरांत सदस्य और उसकी जमानत देने वालों की आर्थिक स्थिति की, तथा उस रुपये के उपयोग की जाँच करती है। यदि यह ज्ञात हो कि सदस्य ने क़र्ज का ठीक उपयोग नहीं किया तो उस से फौरन ही रुपया वापिस माँगना चाहिये। समिति को मजबूत बनाने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है।

सदस्य को कर्ज देते समय ही, उस पर सूद का हिसाब लगाकर, किश्तें बाँध दी जाती हैं। रैफीसन ने किश्तों को ठीक समय पर वसूल करने के लिये बहुत ज़ोर दिया है। उसका कहना है कि समिति इस नियम के पालन करने तथा सदस्यों से पालन करवाने में बड़ी कड़ाई से काम ले। सदस्यों को किश्त का रुपया ठीक समय पर ही देना चाहिये। इससे सदस्यों को एक बहुत बड़ा लाभ यह होता है कि वे

अपने अपने कर्ज को ठीक समय पर चुका देने के लिये बाध्य होते हैं, वे लापरवाह नहीं होते।

रैफीसन का मत था कि सदस्य को कर्ज देने का कार्य ऐसी सरलता पूर्वक होना चाहिये कि न तो उसमें सदस्य को कोई कठिनाई हो, और न कर्ज मिलने में देरी हो। क़र्ज के विषय में जाँच कर चुकने के उपरान्त एक या दो ज़मानत लेकर रुपया दे देना चाहिये।

रैफीसन का साख आन्दोलन केवल आर्थिक आन्दोलन मात्र नहीं था। उसका आन्दोलन एक नैतिक आन्दोलन भी था। वह कहता था कि यह एक भाई चारे का संगठन है, जिसमें रहकर प्रत्येक व्यक्ति को उस भाई चारे को सहायता पहुँचानी चाहिए। अतएव कोई भी सदस्य समिति से कोई विशेष लाभ प्राप्त करे जो कि दूसरों को नहीं मिलता हो ऐसा नहीं हो सकता। यही कारण है कि रैफीसन ने इस बात पर बहुत जोर दिया कि समिति का जो भी काय कोई सदस्य करेगा उसको उस कार्य के लिए कोई वेतन या मुआविजा नहीं मिलेगा। वह सदस्य वह कार्य भाई चारे के सेवार्थ करेगा उससे उसको व्यक्तिगत, लाभ नहीं हो सकता। यही कारण है कि रैफीसन समिति के मंत्री अध्यक्ष तथा अन्य कार्यकर्ताओं को भी वेतन नहीं दिया जाता। सारा कार्य अवैतनिक होता है।

जर्मनी में रैफीसन सहकारी साख समितियों ने तो देश की दशा ही पलट दी। जर्मनी की ग्रामीण जनता कर्जे के भयंकर बोझ से दबी हुई आर्थिक दासता को भोग रही थी, वही निर्धन रैफीसन सहकारी समितियों की सहायता से वह स्वावलम्बन का पाठ सीख गई और महाजनों की दासता से स्वतन्त्र होकर सुखी जीवन व्यतीत करने लगी। सच तो यह है कि रैफीसन ने अपने देश के किसानों के लिए वह कार्य किया जो बड़े से बड़े राजनीतिज्ञ भी नहीं कर सकता था। यही कारण था कि जब उसका स्वर्गवास हुआ तो आधा जर्मन साम्राज्य

शोक-ग्रस्त हो गया था। आज भी जर्मनी में पिता रैफीसन का नाम अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति से लिया जाता है।

जब जर्मनी में रैफीसन सहकारी साख समितियाँ फैल गईं तो उत्पादक, क्रय, विक्रय, दूध सहकारी समितियाँ तथा अन्य सभी प्रकार की समितियाँ स्थापित हो गईं। सहकारी समितियाँ अधिक हो जाने के कारण, समितियों के समूहों की यूनियन स्थापित की गई हैं। जर्मनी में इस प्रकार की १३ यूनियन हो गईं, जो सब रैफीसन सहकारी समितियों का संरक्षण करती थीं। इन यूनियनों के भी ऊपर एक कौंसिल थी, जो रैफीसन सहकारिता आन्दोलन की बागडोर सभालती थी। कौंसिल की देखभाल में एक बैंक भी स्थापित किया गया था, जो साख-समितियों की आवश्यकताओं को पूरी करता था।

रैफीसन सहकारी साख समितियों की विशेषता अपरिमित दायित्व है। रैफीसन ने अपरिमित दायित्व पर बहुत जोर दिया है। रैफीसन के अनुसार वास्तविक सहकारिता वही है, जहाँ प्रत्येक सदस्य अपने को समिति-रूपी बड़े कुटुम्ब का सदस्य समझे और उन 'एक सब के लिये, सब एक के लिये'। इस आदर्श का वास्तविक रूप सदस्यों को समझाने के लिये अपरिमित दायित्व अत्यन्त आवश्यक है। इसका अर्थ है कि प्रत्येक सदस्य समिति के समस्त ऋण को सम्मिलित तथा व्यक्तिगत रूप में देने का जिम्मेदार है। रैफीसन सहकारिता आन्दोलन का यह आधार-स्तम्भ है, जिसपर इतना बड़ा आन्दोलन खड़ा किया गया है।

शुल्ज़ सहकारी साख समितियाँ—जर्मनी में रैफीसन के अलावा सहकारिता का दूसरा भक्त शुल्ज़ था। दोनों सज्जन लगभग एक ही समय में एक ही देश में स्वतन्त्र रूप से कार्य कर रहे थे। किन्तु आरम्भ में वे एक दूसरे को बिलकुल न जानते थे और न उनको एक दूसरे के कार्य का परिचय मिला। एक पूर्व जर्मनी के सहकारिता का प्रचार कर रहे थे तो दूसरे सज्जन पश्चिम में। दोनों ही के हृदय में

अपने ग्राम-वासियों की दरिद्रता को देखकर सेवा भाव जागृत हुआ, और उसके फलस्वरूप उन्होंने सहकारिता आन्दोलन चलाया। अस्तु, शुल्ज़ ने अपने मित्र डाक्टर बर्नहार्डी की सहायता से अपने गाँव डैलिट्ज़ तथा अपने मित्र के गाँव ईलनबर्ग में वहाँ के चमारों तथा अन्य कारीगरों के वास्ते कच्चा माल खरीदने के लिये दो सहकारी समितियाँ खोलीं। तब से क्रमशः क्रय-समितियों का प्रचार बढ़ता गया और अब वे जर्मनी में सर्वत्र पाई जाती हैं। क्रय समितियों की सफलता से उत्साहित होकर शुल्ज़ ने १८६ में पहली साख समिति स्थापित की। किन्तु वह पूर्णतया सहकारी समिति नहीं थी। इसी बीच में शुल्ज़ को कुछ समय के लिए कार्यवश बाहर जाना पड़ा और उसके मित्र डाक्टर बर्नहार्डी ने ईलनबर्ग में एक शुद्ध सहकारी समिति स्थापित की। जब शुल्ज़ डैलिट्ज़ को लौटा तो वह अपने मित्र द्वारा स्थापित समिति के शुद्ध सहकारी रूप को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने वही सिद्धान्त अपना लिया।

अब शुल्ज ने बड़े उत्साह से इस सिद्धान्त का प्रचार करना प्रारम्भ किया। शुल्ज़ के व्यक्तित्व, उनकी धारा-प्रवाहिणी भाषण-शक्ति, तथा उनकी सच्ची लगन का फल यह हुआ कि साख समितियाँ बहुत बड़ी संख्या में स्थापित हो गईं। किन्तु अभाग्यवश जर्मन सरकार उसके इस कार्य से अप्रसन्न हो गई और शुल्ज को (जो न्यायाधीश था) अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा। इसके उपरान्त शुल्ज ने अपना समय इस कार्य में लगा दिया।

शुल्ज सहकारी समितियों का अध्ययन करते समय बात यह ध्यान में रखने की है कि शुल्ज ने यह आन्दोलन मध्यम श्रेणी के मनुष्यों और विशेष कर कारीगरों के लिये चलाया था। अब भी इन समितियों से मध्यम श्रेणी के मनुष्यों को ही लाभ होता है। शुल्ज ने अपने आन्दोलन को चरित्र-सुधार का साधन नहीं बनाया, उसने केवल आर्थिक समस्या को ही सुलझाने का प्रयत्न किया। इन सहकारी

समितियों में निर्धनों के लिये स्थान नहीं है, क्योंकि शुल्ज़ समितियों में सदस्यों को हिस्सा अवश्य खरीदना पड़ता है, और हिस्से का मूल्य अधिक होता है। उसका मत था कि समिति को उधार ली गई पूँजी पर निर्भर नहीं रहना चाहिये, सदस्यों को हिस्से खरीदने चाहिये और बैंक के पास निजी यथेष्ट पूँजी होनी चाहिये।

जिस समय शुल्ज ने आन्दोलन चलाया, उस समय परिमित दायित्व का सिद्धान्त जर्मनी में किसी को ज्ञात नहीं था और न राजकीय कानून ही उसको मानता था। इस कारण प्रारम्भ में यह समितियाँ अपरिमित दायित्व वाली थीं। किन्तु शुल्ज ने रैफीसन की भाँति अपरिमित दायित्व को आवश्यक नहीं माना। इसका फल यह हुआ कि उसकी मृत्यु के उपरान्त जब जर्मनी में परिमित दायित्व का सिद्धान्त मान लिया तो बहुत सी समितियों ने इस सिद्धान्त को अपना लिया। किन्तु इस समय भी यथेष्ट संख्या में शुल्ज समितियाँ अपरिमित दायित्व को अपनाये हुये हैं।

शुल्ज समितियों की विशेषता यह है कि वे अपनी यथेष्ट पूँजी इकट्ठी करना चाहती हैं। इसी कारण सदस्यों के लिये हिस्सों का खरीदना आवश्यक समझा गया। इसके अतिरिक्त शुल्ज ने सुरक्षित कोष को जमा करने पर बहुत जोर दिया है, क्योंकि उसका उद्देश्य किसी प्रकार बैंक की निजी पूँजी को बढ़ाना था। किन्तु यह न समझ लेना चाहिए कि यह सहकारी साख समितियाँ लाभ नहीं बाँटतीं। लाभ का कुछ भाग सुरक्षित कोष में जमा करने के उपरान्त, शेष लाभ सदस्यों में बाँट दिया जाता है।

शुल्ज ने व्यक्तिगत जमानत पर कर्ज देने के सिद्धान्त को अपनाया है, तथा कर्ज को वसूल करने पर बहुत जोर दिया है। इन समितियों के सदस्य अपनी वार्षिक बैठक में एक कमेटी का निर्वाचन करते हैं और वह कमेटी अपने सदस्यों में से एक कार्यकारिणी समिति का निर्वाचन करती है। कार्यकारिणी समिति, समिति का कार्य चलाती है तथा

कमेटी उसके कार्य का निरीक्षण करती है। शुल्ज, कार्यकारिणी समिति के सदस्यों तथा पदाधिकारियों को वेतन देने के पक्ष में है।

वास्तव में यह सहकारी साख समितियाँ विस्तृत क्षेत्र के लिए उपयुक्त हैं। इस कारण वे पूर्ण रूप से व्यापारिक संस्था होती हैं। व्यापारिक कार्य सफलता-पूर्वक करने के लिए अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है और वेतन-भोगी कर्मचारी रखने पड़ते हैं।

लुज्जती समितियां (पीपल्स बैंक)—लुज्जती ने शुल्ज प्रणाली का सुधार करके उसे अपनाया। आस्ट्रिया राज्य का कोप-भाजन बनकर भागा हुआ लुजती अपनी योग्यता के कारण इटली में अर्थशास्त्र का अध्यापक बन गया और उसने शुल्ज के विचारों का अध्ययन करने के उपरान्त मिलन नाम के नगर में बैंक स्थापित किया। किन्तु लुजता जैसा योग्य व्यक्ति यह भली भाँति समझता था कि जर्मन संस्था इटली में सफल न होगी। इस कारण उसने शुल्ज-समितियों का नवीन संस्कार करके उनका प्रचार किया।

लुजती ने अपरिमित दायित्व के स्थान पर सिद्धान्त-रूप से परिमित दायित्व को अपनाया। इसके अतिरिक्त उसने शुल्ज की भाँति अधिक मूल्य के हिस्से न रखकर बहुत थोड़े मूल्य के हिस्से रखे और बहुत सी किश्तों में हिस्सों के मूल्य चुकाने का नियम बनाया, जिससे निर्धन मनुष्य समिति के सदस्य बन सकें। लुजती ने यह नियम बनाया कि हिस्से का मूल्य दस मास के अन्दर सदस्य को चुका देना होगा। लुजती का विचार यह था कि यह थोड़ी सी पूँजी बाहर की पूँजी को आकर्षित कर सकेगी, अर्थात् इसकी गारंटी पर बाहर से कर्ज मिल सकेगा। साथ ही उसने अधिकतर सेविंग्स डिपाजिट लेकर अपनी कार्यशील पूँजी को बढ़ाने पर जोर दिया। उसका कहना था कि यदि कार्यशील पूँजी की आवश्यकता हो तो सेविंग्स डिपाजिट आकर्षित करो।

यद्यपि हिस्सों की पूँजी तो बाहरी कर्ज के लिये जमानत

काम देगी ही, किन्तु लुज्जती के मतानुसार वास्तविक जमानत समिति के सदस्यों की ईमानदारी होगी। उसने कहा कि "ईमानदारी को पूँजी में परिणत करो।" इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उसने ऐसा सगठन बनाया, जिससे सदस्यों को ईमानदार रहने में ही अपना हित दिखलाई दे और वे एक दूसरे को ईमानदार बनाने में सहायक हो। लुज्जती ने इस बात को लक्ष्य में रखकर समिति के कार्य की जिम्मेदारी को बाँट दिया, जिससे कि प्रत्येक सदस्य को कुछ न कुछ कार्य करना पड़े। इस कारण लुज्जती-समितियों में सदस्यों को लेते समय उनके चरित्र पर विशेष ध्यान रखा जाता है। प्रत्येक सदस्य को समिति का थोड़ा बहुत कार्य करना पड़ता है। जो कर्ज दिया जाता है, वह जाँच करने के बाद दिया जाता है। कोई बात गुप्त नहीं रखी जाती, जिससे कि प्रत्येक सदस्य समिति की दशा से पूर्ण परिचित रहे। लुज्जती, प्रबन्धकारिणी समिति तथा अन्य पदाधिकारियों को वेतन देने के पक्ष में बिलकुल नहीं है।

लुज्जती समितियों में प्रबन्ध का कार्य एक कमेटी करती है, जिसका निर्वाचन साधरण सभा करती है। यह आवश्यकता समझी जाती है कि प्रबन्ध कमेटी में सब प्रकार के सदस्यों के प्रतिनिधि हों किंतु कमेटी बड़ी होने के कारण उसके सदस्य बैंक के दैनिक कार्य को सुचारु रूप से नहीं चला सकते; इसके लिये कमेटी अपने में से एक उपसमिति बना देती है यह उपसमिति केवल एक वर्ष के लिए बनाई जाती है; दूसरे वर्ष दूसरे सदस्यों की उपसमिति बनाई जाती है। उपसमिति का एक सदस्य प्रतिदिन बैंक में रहता है, उसकी आज्ञा के बिना कार्य नहीं हो सकता।

इटली की ग्रामीण साख समितियाँ—इटली में पीपल्स शुल्ज के विचारों को अपनाकर लुज्जती ने पीपल्स बैंक स्थापित किये, ठीक उसी प्रकार इटली ने अपने रैफीसन को भी ढूँढ़ निकाला। बैंक छोटे व्यापारियों तथा सम्पन्न किसानों के लिए अत्यन्त उपयोगी

प्रमाणित हुए; किन्तु निर्धन छोटे छोटे किसानों के लिए, जो गाँव में निवास करते हैं; उनका कोई उपयोग नहीं था। साथ ही गाँव में निवास करनेवाले छोटे-छोटे किसानों को साख की अत्यन्त आवश्यकता थी। डाक्टर बोलेम्बर्ग का हृदय गाँवों की आर्थिक शोचनीय दशा को देख कर सिहर उठा और उन्होंने रैफीसन सहकारी साख समितियों के ढङ्ग की समितियाँ स्थापित करने का निश्चय किया। उन्होंने सर्वप्रथम अपने गाँव में एक समिति की स्थापना की। प्रारम्भ में तो सदस्य बहुत कम थे और डिपाजिट भी बहुत ही कम आई, किंतु डाक्टर अथक परिश्रम से कार्य करते रहे। जब समिति को स्थापित हुए तीन महीने हो गये और समिति के मंत्री ने सदस्यों को लिखा कि वे लिए हुए कर्ज पर १॥ प्रतिशत सूद दे जावें तो सदस्यों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। पहले तो उन्होंने समझा कि लिखने में कुछ भूल हो गई है, किन्तु जब उन्हें ज्ञात हुआ कि यह ठीक है, तो यह खबर बड़ी तेजी से गाँव भर में फैल गई और धड़ाधड़ समितियाँ स्थापित होने लगीं।

डाक्टर वोलेम्बर्गने अपनी समितियों का संगठन रैफीसन के भाँति ही रखा; भेद केवल इतना ही है कि इटली की ग्रामीण समिति जर्मनी की समिति से छोटा होती है। प्रत्येक कार्य में किफायत पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता है। सदस्य समिति के कार्य में खूब भाग लेते हैं। प्रत्येक सदस्य, जो साधारण बैठक में आने के योग्य होता है, अवश्य आता है। साधारण बैठक जल्दी-जल्दी होती है, और जो सदस्य बिना उचित कारण के सम्मिलित नहीं होता, वह दूसरे सदस्यों की दृष्टि में गिर जाता है और उसे कुछ जुर्माना देना होता है। समिति का संचालन सब सदस्य मिलकर करते हैं। साधारण बैठक प्रबन्धकारिणी समिति के लिए आज्ञा देती है, और प्रबन्धकारिणी समिति केवल उन आज्ञाओं का पालन करतो है। साधारण बैठक का सञ्चालन में बहुत हाथ रहता है।

तीसरा परिच्छेद

भारतीय ग्रामीण ऋण

[नोट—इस पुस्तक में जहाँ जहाँ भारतवर्ष सम्बन्धी बात कही गई है, वह भारतीय संघ और पाकिस्तान दोनों के मिले हुए स्वरूप के सम्बन्ध में समझनी चाहिए। इसी प्रकार पंजाब से पूर्वी और पश्चिमी पंजाब का, और बंगाल से पूर्वी और पश्चिमी बंगाल का आशय है।]

भारतवर्ष में लगभग ९० प्रतिशत जनता गाँवों में निवास करती है, और ग्रामीण जनता अधिकतर खेतीबारी पर ही निर्भर रहती है। अधिकतर ग्रामीण तो किसान ही होते हैं और कुछ ग्रामीण उद्योग-धंधों में लगे रहते हैं। किन्तु गाँव के धन्धे भी अप्रत्यक्ष रूप से खेतीबारी पर ही निर्भर हैं। यदि हम कहें कि समस्त ग्रामीण जनता खेती-बारी पर निर्भर है तो अतिशयोक्ति न होगी। जो मनुष्य भारतीय ग्राम्य जीवन से परिचित नहीं है, वह सम्भवतः ग्रामीण जनता के विषय में धोखा खा जाय। आज भारतीय किसान की आर्थिक दशा जितनी खराब है उतनी सम्भवतः संसार के अन्य किसी देश के किसानों की नहीं है। भारतीय ग्रामीण कर्ज के भयंकर बोझ से बहुत दबा हुआ है और कर्जदार होने के कारण उसका राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा चरित्र-विषयक पतन हो रहा है। यह निर्विवाद सत्य है कि देश की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए इस समस्या को हल करना होगा। जब तक देश की जनसंख्या का एक बहुत-बड़ा भाग आर्थिक दासता का जीवन व्यतीत करता रहेगा, तब तक देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने का प्रयत्न करना स्वप्न मात्र है।

सन् १६३० में सेन्ट्रल बैंकिङ्ग इनकायरी कमेटी के साथ सहयोग करने के लिए प्रत्येक प्रान्तीय सरकार ने प्रान्तीय बैंकिङ्ग इनकायरी कमेटी बैठाई। प्रान्तीय कमेटियों ने अपने अपने प्रान्तों में ग्रामीण ऋण का अनुमान लगाने का प्रयत्न किया। यद्यपि अनुमान बिलकुल सही नहीं हो सकता, फिर भी हमें कर्ज की भयङ्करता का ज्ञान भली भाँति हो सकता है—

आसाम २२ करोड़, बङ्गाल १००, बिहार-उड़ीसा १५५, बम्बई ८१, बर्मा ५०-६० मध्य प्रदेश ३६, मद्रास १५०, पञ्जाब १३५ उत्तर प्रदेश १२४, केन्द्रीय सरकार द्वारा शासित प्रदेश १८ करोड़। इस प्रकार ब्रिटिश भारत का ग्रामीण ऋण लगभग नौ सौ करोड़ होता है।

अभी तक किसी कमेटी ने देशी राज्यों के ग्रामीण ऋण को मालूम करने का प्रयत्न नहीं किया। किन्तु जिन्होंने उनकी आर्थिक स्थिति का कुछ भी अध्ययन किया है, वे जानते हैं कि देशी राज्यों के ग्रामीण की आर्थिक दशा ब्रिटिश भारत के ग्रामीणों से कुछ अच्छी नहीं है। यदि हम सारे देशी राज्यों का ग्रामीण ऋण ब्रिटिश भारत का एक तिहाई मान लें तो कुछ भूल न होगी। इस हिसाब से समस्त देश का ग्रामीण ऋण १२०० करोड़ रुपये होता है।

अब प्रश्न यह है कि यह कर्ज घट रहा है अथवा बढ़ रहा है। प्रांतीय कमेटियों की सम्मति में भारतीय ग्रामीण ऋण पिछले १०० वर्षों में बराबर बढ़ता गया है। सर ऐडवर्ड मैकलेगन ने १६११ में कहा था —"यह तो स्पष्ट है कि ग्रामीण ऋण भारतवर्ष के लिए कोई नई बात नहीं है इतिहास को देखने से ज्ञात होता है कि ब्रिटिश शासन के पूर्व भी यह समस्या उपस्थित थी। किन्तु यह भी मानना पड़ेगा कि यह ऋण ब्रिटिश शासन में और विशेषकर पिछले पचास वर्षों में बहुत बढ़ गया है।" शाही कृषि कमीशन की भी इस विषय

ग्रामीण ऋण अवश्य ही पिछले वर्षों में बढ़ गया है। पिछले दस वर्ष में तो इसकी भयङ्करता बहुत ही बढ़ गई है। इसका अनुमान केवल अङ्कों से नहीं किया जा सकता। १६२६ के बाद खेतो की पैदावार का मूल्य लगभग ५० प्रतिशत घट गया। अस्तु, किसानों के कर्ज का बोझ पहले से दुगना हो गया।

१६२६ से १६३६ तक जो विश्वव्यापी आर्थिक मन्दी हुई, उसका प्रभाव भारतवर्ष पर भी पड़ा। भारतीय किसानों के कर्जे का बोझ बेहद बढ़ गया। सन् १६३३ में रिजर्व बैङ्क ने हिसाब लगाकर ब्रिटिश भारत का ग्रामीण ऋण १८०० करोड़ रुपये होने का अनुमान किया था। १६३६ के उपरान्त प्रत्येक प्रान्त में काँग्रेस-मंत्रिमंडलों ने किसान के कर्जे के बोझ को हलका करने के लिए कुछ कानून बनाये। परन्तु शीघ्र ही देश में राजनैतिक स्थिति गड़बड़ हो गई और महायुद्ध के कारण उत्पन्न हुई परिस्थिति में कुछ भी सुधार न हो सका। अर्थ-शास्त्रियों के मत से सन १६३६ के आसपास समस्त भारत का ग्रामीण ऋण दो हजार करोड़ से अधिक, लगभग २२०० करोड़ रुपये था।

१६३६ से, युद्ध के समय खाद्य पदार्थों तथा खेतों की उपज का मूल्य कल्पनातीत बढ़ गया। किसान की आर्थिक स्थिति कुछ अच्छी हुई. उसके हाथ में रुपया आया। उस समय में किसान का भार कुछ कम हुआ। इस सम्बन्ध में प्रामाणिक आँकड़े प्राप्त नहीं हैं केवल मदरास सरकार ने १९४५ में एक कमेटी इस उद्देश्य से बिठाई थी कि वह, युद्ध का ग्रामीण ऋण पर क्या प्रभाव पड़ा है उसकी जाँच करे। उस कमेटी ने १६४६ में अपनी रिपोर्ट में बतलाया कि मदरास प्रान्त का ग्रामीण ऋण २० प्रतिशत कम हो गया, किन्तु अभी केवल बड़े किसानों और जमींदारों के ऋण में ही हुई है छोटे किसानों के ऋण में नहीं हुई, वरन् किसी-किसी दशा में छोटे किसानों का ऋण बढ़ गया है। बात यह है कि गाँव में जो खेत-मजदूर वर्ग है, उसके पास भूमि नहीं होती। वह तो सम्पन्न किसानों के खेतों पर मजदरी

करके लकड़ी और घास बेचकर, अपना निर्वाह करता है। उसको खेती की पैदावार का मूल्य बढ़ने से कोई लाभ नहीं हुआ। छोटे किसान को भी विशेष लाभ नहीं हुआ क्योंकि उसके पास बेचने के लिये कुछ बचता ही नहीं है, उसकी भूमि इतनी कम होती है कि वह अपने निर्वाह योग्य अनाज इत्यादि कठिनाई से उत्पन्न कर पाता है। हाँ, बड़े किसानों को लाभ अवश्य हुआ क्योंकि उनकी लगान आबपाशी इत्यादि पूर्ववत ही रही, किन्तु खेती की पैदावार का मूल्य कई गुना हो गया। यद्यपि उन्होंने भी इस अल्पकालीन समृद्धि को सामाजिक और धार्मिक कृत्यों, जेवर और कपड़े पर अनाप-शनाप व्यय करके नष्ट कर दिया, फिर भी उनका ऋण कम अवश्य हुआ।

मदरास सरकार द्वारा जो ग्रामीण ऋण की जाँच डाक्टर बी० बी० नायडू ने की उसका सारांश इस प्रकार है। उन्होंने ऋण ग्रस्त किसानों को पांच श्रेणी में बाँटा और उनके ऋण की जांच की उनकी जांच का परिणाम नीचे दी हुई तालिका से स्पष्ट हो जावेगा।

प्रति वर्ग के प्रति व्यक्ति पर ऋण

वर्ग	१९३९ रु	१९४५ रु	अंतर	प्रतिशत ह्रास अथवा वृद्धि
१.	१८८.५	११३.३	—७५.२	—३९.९
२.	६८.८	५१.४	—१६.५	—२४.६
३.	४२.८	३७.६	— ५.२	—१२.३
४.	२०.५	२१.३	+ ०.८	+ ४.१
५.	५.७	८.३	+ २.६	+४५.६

ऊपर की तालिका से स्पष्ट है कि युद्ध काल में प्रथम तीन श्रेणी के कृषकों (जिनके पास अधिक जोत थी) के ऋण में कमी हुई है।

परन्तु चौथी और पांचवीं श्रेणी के कृषकों के ऋण में वृद्धि हुई है। इससे स्पष्ट है कि युद्ध से छोटे कृषकों को नाम मात्र को ही लाभ हुआ है और खेत मजदूरों की स्थिति बिगड़ गई है। रिजर्व-बैंक की कृषि साख शाखा का भी यही मत है कि छोटे किसानों और खेत मजदूरों के ऋण में कोई कमी नहीं हुई है। आज भारतवर्ष में एक बड़ी गलत धारणा फैली हुई है कि द्वितीय महायुद्ध के फल स्वरूप किसान ऋण मुक्त हो गया और ग्रामीण ऋण की समस्या अब नहीं रही। खेद की बात तो यह है, कि अर्थशास्त्री, सहकारिता आन्दोलन के कार्य कर्ता तथा सरकार भी इस भ्रामक धारणा का शिकार हो रही है। आवश्यकता इस बात की है कि इस सम्बन्ध में एक विस्तृत जांच की जावे और इस समस्या को हल करने का प्रयत्न किया जावे।

बम्बई प्रान्तीय सहकारिता इंस्टिटयूट ने भी बम्बई प्रान्त में द्वितीय महायुद्ध का ग्रामीण ऋण पर क्या प्रभाव पड़ा इसका अध्ययन किया और गैडगिल महोदय ने एक रिपोर्ट उपस्थित की जिसका सांराश इस प्रकार है।

श्री गैडगिल की रिपोर्ट के अनुसार भी छोटे किसानों का ऋण कुछ विशेष नहीं घटा है केवल बड़े किसानों का ही ऋण घटा है। श्री गैडगिल की रिपोर्ट के अनुसार उन किसानों का ऋण जिनके पास २० एकड़ से अधिक भूमि है ऋण यथेष्ट घटा है (३० प्रतिशत तक) लेकिन महाराष्ट्र के उन क्षेत्रों में जहाँ कुआँ से सिंचाई होती है उन किसानों का ऋण अधिक घटा है जिनके पास ५ से १० एकड़ भूमि है २० एकड़ से ४० एकड़ वाले किसानों का ऋण उतना नहीं घटा है।

जिन किसानों के पास ५ एकड़ से कम भूमि है उनका ऋण नाम मात्र को ही घटा है। जिन क्षेत्रों में नहर से सिंचाई होती है वहाँ २० एकड़ से अधिक भूमि वाले किसानों का ऋण ६० प्रतिशत तक घट

गया किन्तु जिन किसानों के पास पाँच एकड़ से कम भूमि थी उनका ऋण घटने के बजाय बढ़ गया।

भिन्न-भिन्न प्रदेशों को यदि लें तो चावल के प्रदेश में तथा अत्यन्त शुष्क प्रदेशों में ग्रामीण ऋण बढ़ा है और तम्बाकू तथा घाटों के नीचे के प्रदेश में ऋण घटा है।

भिन्न-भिन्न प्रदेशों में तथा भिन्न-भिन्न जोत के किसानों का ऋण पर युद्ध का भिन्न प्रभाव पड़ा है। छोटे किसानों का ऋण घटने के बजाय कहीं-कहीं बढ़ा है।

प्रान्तीय कमेटियों ने यह जानने का भी प्रयत्न किया कि प्रतिशत कितने लोग कर्जदार नहीं हैं। लेकिन यह स्पष्ट नहीं होता कि वास्तव में कितने किसान ऋण-मुक्त हैं। अर्थशास्त्र के कुछ विद्वानों का मत है कि लगभग ७० प्रतिशत किसान कर्जदार हैं।

प्रान्तीय बैंकिङ्ग इन्क्वायरी कमेटियों ने उन कारणों का विस्तार पूर्वक विवेचन किया है जो किसान को कर्जदार बनाते हैं। ग्रामीण जनता के कर्जदार होने के बहुत से कारण हैं। किसान का पुराना ऋण उसको कर्जदार बनाने में बहुत सहायक है। किसान पुराने कर्जे को चुकाने के लिए नया कर्ज लेता है। भारतीय किसान को भयङ्कर सूद देना पड़ता है, क्योंकि उसकी आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय है। दूसरा मुख्य कारण यह है कि भारतीय किसान के पास इतनी भूमि नहीं है कि वह उस पर खेती करके अपने कुटुम्ब का पालन पोषण कर सके; कारण यह है कि देश के अन्य धन्धे, विदेशी माल तथा देशी मिलों की प्रतिद्विन्दिता के कारण, नष्ट हो गये और उनमें लगी हुई जन-खेती-बारी में लग गई। भारतवर्ष में खेती बारी की भूमि का अकाल पड़ गया और प्रति किसान भूमि कम हो गई। यही नहीं, हिन्दुओं तथा मुसलमानों में पिता के मरने पर सब लड़कों में बराबर-बराबर भूमि बांटने की प्रथा के कारण वह थोड़ी भूमि भी छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित हो जाती है, और एक स्थान पर सारे खेत न होकर खेत

मीलों में बिखरे होते हैं, जिसके कारण खेती वैज्ञानिक ढंग से नहीं की जा सकती और न इस धन्धे में लाभ ही हो सकता है। इसका कारण किसान साधारणतया बिना कर्ज लिए अपना काम नहीं चला सकता। इनके अतिरिक्त बैलों की आकस्मिक मृत्यु तथा अनिश्चित खेती भी किसान को कर्जदार बनाती है। भारतवर्ष के किसान के पास पशुधन ही उसकी अत्यन्त मूल्यवान् पूँजी है, किन्तु पशुओं की बीमारी इतनी भयङ्कर हैं और पशुओं की मृत्यु संख्या इतनी अधिक है कि किसान को उससे बहुत हानि होती हैं और कर्ज लेकर नये पशु खरीदने पड़ते हैं। भारतवर्ष में खेती अधिकतर वर्षा पर निर्भर है, किन्तु वर्षा यहां अनिश्चित होती है जिसके कारण फसल भी अनिश्चित होती है। यदि वर्षा आवश्यकता से बहुत कम हो अथवा अति वर्षा हो तो फसल खराब हो जाती है। कभी टिड्डी दल तो कभी कोई हवा, अथवा कीड़ा फसल को नष्ट कर देती है। जिन वर्षों में फसल अच्छी होती है उनमें तो किसान किसी प्रकार अपना काम चला लेता है। किन्तु फसल खराब होने पर तो उसको कर्ज ही लेना पड़ता है।

कुछ अर्थशास्त्रज्ञों का मत है कि किसान विवाह, मृत्यु-संस्कार तथा अन्य सामाजिक कृत्यों में अपनी हैसियत से बहुत अधिक व्यय कर देता है, और उसे कर्ज लेना पड़ता हैं। हो सकता है कि इसमें कुछ सत्य हो किन्तु इसमें अतिशयोक्ति की मात्रा अधिक है। कुछ प्रान्तीय बैंकिंग इनक्वायरी कमेटियों की भी इस विषय में यही सम्मति है। हाँ, जिस वर्ष फसल अच्छी होती है और किसान को कुछ अधिक रुपया मिल जाता है, उस वर्ष, बैंक इत्यादि न होने के कारण, यह उसे सामाजिक तथा अन्य धार्मिक कार्यों पर खर्च कर डालता है। लेखक के मतानुसार मुकदमेबाजी भी किसान के कर्जदार होने का एक मुख्य कारण है। जो लोग भारतीय अदालतों से परिचित हैं, वे जानते हैं कि किसान भूखे रहकर भी, कर्ज लेकर मुकदमे में अंधाधुन्ध व्यय कर देता है।

इसके अतिरिक्त लगान और मालगुजारी* भी किसान के कर्जदार होने का एक मुख्य कारण है। सरकार तथा सरकारी वेतन-भोगी अर्थशास्त्र के विद्वान इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं हैं कि लगान और मालगुज़ारी अधिक है। किन्तु लेखक का तथा अन्य बहुत से विद्वानों का यह मत है कि लगान तथा मालगुजारी उचित से अधिक है, क्योंकि खेतीबारी में लाभ बहुत कम है। लगान व मालगुजारी अधिक है, अथवा कम, इस विषय में मतभेद है; किन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि तीस वर्ष के लिये लगान और मालगुजारी पहले से निश्चित कर देने के कारण, जब कभी फसलें नष्ट हो जाती हैं, अथवा खेती की पैदावार की कीमत बहुत गिर जाती है, तो किसानों को लगान या मालगुजारी देना कठिन हो जाता है यद्यपि ऐसे समय में छूट देने का प्रयत्न किया जाता है किन्तु वह आवश्यकता से बहुत कम होती है; निर्धन किसान को कर्ज लेकर मालगुजारी या लगान देना पड़ता है क्योंकि जमींदार तथा सरकारी कर्मचारी उसे बड़ी सख्ती से वसूल करते हैं। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि खेती में लगे हुए मनुष्यों की संख्या आवश्यकता से अधिक है, इस कारण खेती के योग्य भूमि का अकाल है अस्तु किसान भूमि लेने के लिए लम्बे पट्टे लेता है और उचित से अधिक लगान देता है। कभी कभी कर्ज लेकर वह भूमि भी मोल लेलेता है। कहीं कहीं इन दो कारणों से भी वह कर्जदार बना हुआ है। इन कारणों के होते हुए तथा महाजन के कर्ज देने का ढङ्ग और भयंकर

---

*जमींदारी प्रथा वाले प्रान्तों में किसान भूमि के उपयोग के लिये जो रक़म ज़मींदार को देता है, वह लगान कहलाती है; और सरकार जो रक़म ज़मींदार से लेती है, उसे मालगुजारी कहते हैं। रैयतवारी प्रान्तों में किसान जो रक़म सरकार को देता हैं उसे मालगुज़ारी कहते हैं।

सूद को देखते हुए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि किसान सदा कर्जदार रहता है।

इसके अतिरिक्त, किसान की कर्जदारी का एक मुख्य कारण, जिसके विषय में ऊपर के पृष्ठों में संकेत किया जा चुका है, खेती में लगी हुई जनसंख्या की वृद्धि है। सन् १८९१ की मनुष्य-गणना में ६१ प्रतिशत मनुष्य खेतीबारी में लगे हुए थे, यही संख्या १९०१ में ६६ प्रतिशत, १९११ में ७१ प्रतिशत १९२१ में ७२ प्रतिशत तथा १९३१ में ७३ प्रतिशत हो गई। ग्रामीण उद्योग धन्धों का नष्ट हो जाना भी इस बढ़ी हुई कर्जदारी का एक कारण है।

कर्जदारी बढ़ने का फल बहुत भयङ्कर हो रहा है। किसान और कारीगर महाजन के मानों दास बन गये हैं। वर्ष भर परिश्रम करने के उपरांत भी उनको भरपेट भोजन नहीं मिलता। एक बार कर्ज ले लेने पर वह लोग महाजन के चंगुल से बचकर कभी निकल ही नहीं सकते। महाजन उनका दोहन करके आनन्द करता है, और निर्धन किसान परिश्रम करता है महाजन के लाभ के लिये। किसान किसी प्रकार अपनी आवश्यकताओं को घटा कर गुजारा करता है। किसी वर्ष फ़सल नष्ट हो गई तो उसे महाजन की शरण जाना पड़ता है, और एक बार वह महाजन के पास गया नहीं कि चिर-दास बना नहीं।

क़र्ज लेना कोई बुरी बात नहीं हैं और न कर्जदार होना ही आर्थिक-हीनता का सूचक है, यदि कर्ज उत्पादक कार्य के लिये लिया गया हो; किन्तु अनुत्पादक कार्य के लिये लिया हुआ कर्ज किसान की आर्थिक मृत्यु का कारण होता है। भारतीय किसान का ऋण अधिकतर अनुत्पादक कार्यों के लिये लिया गया है, और जो ऋण उत्पादक कार्यों के लिये लिया जाता है, उस पर इतना अधिक सूद देना पड़ता है कि किसान दिवालिया हो जाता है। किसान को इतना अधिक सूद देना पड़ता है कि खेतीबारी में उसे लाभ हो ही नहीं सकता। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में सूद की

दर भिन्न-भिन्न हैं, परन्तु २० प्रतिशत से लेकर ३० प्रति शत तक तो साधारण दर है। कहीं-कहीं ५० प्रति से लेकर १०० प्रतिशत तक सूद देना पड़ता है। भारतीय अदालतों में ऐसे बहुत से मुकदमे आये, जिनमें सूद की दर १००० प्रतिशत से भी अधिक थीं। कभी-कभी चतुर महाजन जितनी रकम देता हैं, उससे कई गुनी लिख लेता है और अशिक्षित किसान उस पर अँगूठा लगा देता है! महाजन किसान से मूलधन तो नहीं माँगता और सूद लेता रहता है।

महाजन का सूद निकालना ही किसान के लिये कठिन हो जाता है, मूलधन की बात ही क्या। फल यह होता है कि किसान सदा के लिये कर्जदार बन जाता है और वर्ष भर परिश्रम करके महाजन की थैलियाँ भरता रहता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि भारतीय किसान ऋणी जन्म लेता हैं, ऋणी ही मरता हैं और ऋण को भावी पीढ़ियों के लिये छोड़ जाता है। यह ऋण पीढ़ी-दर-पीढ़ीं चलता है। क्रमशः भारतीय किसान के हृदय में यह बात बैठ गई है कि कर्जदार होना अवश्यम्भावी है, इससे छुटकारा नहीं हो सकता। अस्तु, वह मुक्त होने का प्रयत्न करना भी छोड़ देता है। फल यह होता है कि जब कभी सामाजिक रूढ़ियों तथा बिरादरी के दबाब के कारण उसको सामाजिक कार्यों में धन व्यय करना पड़ता है तो वह निश्चिन्त होकर कर्ज ले लेता है। वह जानता है कि मैं कर्जदार तो अवश्य रहूँगा फिर थोड़े से खर्च के लिये बिरादरी में हँसी क्यों करवाऊँ। कर्जदार होने के कारण भारतीय किसान तथा गृह उद्योग-धन्धों में लगे हुए कारीगर इतने हताश हो चुके हैं कि यदि आप किसान को वैज्ञानिक ढंग से खेती करके अधिक पैदावार प्राप्त करने का आदेश दें तो वह कदापि मानने को तैयार नहीं होता, क्योंकि वह जानता है कि यदि अच्छा बीज, खाद और यन्त्रों का उपयोग करके मैंने अधिक पैदावार की तो वह महाजन के पास जावेगी; मैं तो जैसा पहले था वैसा ही रहूँगा, मैं क्यों व्यर्थ में परिश्रम करूँ। यदि

हम चाहते है कि कृषि की उन्नति हो और भारतीय ग्रामीणों की आर्थिक दशा सुधरे तो हमें उन को इस भयङ्कर बोझ से मुक्त करना होगा। जब तक यह नहीं किया जायगा, तब तक देश की आर्थिक दशा सुधारना केवल एक सुन्दर कल्पना है, इसमें तथ्य कुछ भी नहीं है।

किसान फसल बोने के समय महाजन से सवाये ड्योढ़ें पर बीज लाता है तथा खाद इत्यादि डालने के लिये कर्ज लेता है। फसल तैयार होने पर, उसे अपनी अधिकतर फसल शीघ्र ही बेच देनी पड़ती है क्योंकि जमींदार लगान के लिये, सरकार आबपाशी के लिये, तथा महाजन अपने कर्ज के लिये जल्दी मचाते हैं। उस समय किसान अपना पीछा छुड़ाता है। महाजन फसल को बाजार-भाव से बहुत सस्ते दामों पर मोल लेता है। कभी-कभी तो कर्ज देने के समय यह निश्चय हो जाता है कि किसान फसल महाजन के ही हाथ बेचेगा। यदि कोई किसान समीपवर्ती मंडी में फसल बेचने जाता है तो वहां दलाल, आढ़तिया तथा व्यापारी उसको लूटते हैं। साथ ही फसल कटने के थोड़े दिन बाद तक बाजार का भाव बहुत मंदा रहता है और किसान को उस मन्दे भाव पर अपनी फसल बेच देनी पड़ती है। जूट, गन्ने तथा अन्य औद्योगिक कच्चे माल के किसान तो खड़सारियों तथा जूट के व्यवसायियों के चिरदास बने रहते हैं। खंड़सारी फ़सल बोने के समय कुछ रुपया किसान को पेशगी दे देता है और उससे तय कर लेता है कि इस कीमत पर तुम्हें गन्ना अथवा रस हमें देना होगा; गन्ने अथवा रस का मूल्य एक साल पहले से ही निश्चित हो जाता है। निर्धन किसान को गन्ने की फसल बोने के लिए रुपया चाहिये और उसे खंड़सारियों से ऋण लेना पड़ता है। वास्तव में स्थिति यह है कि परिश्रम तो करता है किसान और उसका लाभ उठाते हैं महाजन- अधिकतर किसानों की स्थिति यह है कि फसल काट चुकने के उपरांत जमींदार सरकार तथा महाजन का देना चुकाने पर उनके पास कठिनता से आठ महीने का भोजन बचा रहता है। पिछले चार महीने के लिये

उन्हें महाजन से सवाये-ड्योढ़े पर अनाज उधार लेना पड़ता है।

जिन प्रदेशों में रेल इत्यादि का विस्तार नहीं है, वहां कर्जदार केवल थोड़े से भोजन पर महाजन के यहाँ मजदूरी करने को विवश होता है। जीवन-भर वह कुछ कमा ही नहीं पाता कि वह अपना कर्ज चुका सके। अतएव वह क्रीत (मोल लिये हुए) दास की भांति अपने महाजन का कार्य करता रहता है। बिहार के छोटा नागपुर प्रान्त में, दक्षिण राजपूताना, और मध्यभारत के भील प्रदेश में, भील तथा निर्धन जातियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई है। वे जीवन भर थोड़े से रुपये के बदले दासता करते रहते हैं। इनके अतिरिक्त वे किसान भी जिनकी दशा ऐसी गई-बीती नहीं है, अपनी पैदावार बेचने में स्वतन्त्र नहीं होते और उनका भी घोर शोषण होता है।

इसी प्रकार कारीगर भी व्यापारियों और महाजनों के चंगुल में फँसे हुए हैं, और महाजन उनका शोषण कर रहे हैं। बुनकरों का ही धंधा ले लीजिये। निर्धन बुनकर कपड़े तथा दरी के व्यापारी से सूत उधार लाता है तथा कर्घे इत्यादि आवश्यक वस्तुओं के लिये भी रुपया लेता है। कपड़े का व्यापारी सूत का भी व्यापारी होता है। वह सूत का मूल्य अधिक लेता है। बुनकर को तैयार माल उसी व्यापारी के हाथ बेचना पड़ता है। कहीं-कहीं व्यापारी बुनकरों को कुछ रुपया एक-साथ दे देता है जिसे 'बाकी' कहते हैं। बुनकर को उसके बदले उसी व्यापारी से सूत खरीदना पड़ता है और उसी व्यापारी के हाथ तैयार माल बेचना होता है। व्यापारी सूत का अधिक दाम लेकर तथा तैयार माल का कम मूल्य देकर बुनकर को लूटता है। जब तक कि बुनकर 'बाकी' का रुपया न चुका दे तब तक वह दूसरे व्यापारी के पास नहीं जा सकता। इस प्रकार महाजन कारीगरों का शोषण करते हैं। जब तक पूंजी के उचित मूल्य पर मिलने का तथा तैयार माल के बिकने का प्रबन्ध सहकारी समितियों के द्वारा नहीं किया जाता, तब तक गृह उद्योग-धन्धे पनप नहीं सकते।

यह तो पहले कहा जा चुका है कि साहूकार का ऋण देने की पद्धति तथा सूद की दर इतनी भयङ्कर हैं कि किसान कभी मुक्त नहीं हो सकता। भिन्न-भिन्न प्रान्तीय बैङ्किङ्ग इनक्वायरी कमेटियों ने अपने-अपने प्रान्तों में जो सूद की दर लिखी है, वह इस प्रकार है :—

आसाम — १२ प्रति शत से ७५ प्रतिशत तक।
बम्बई — १२ ,, ५० ,, ।
बंगाल — कम से कम १० से ३७॥ तक; अधिक से अधिक ३७॥ से ३०० तक।
बिहार-उड़ीसा—१८ से ५० प्रतिशत तक।
मध्यप्रान्त — १२ से ३७॥ प्रतिशत तक। अनाज के ऋणपर २५ से १०० प्रतिशत तक।
मदरास — १२ से लेकर ४८ प्रतिशत तक।
संयुक्त प्रांत — व्यापारिक कार्यों के लिये ६॥ से १२॥ तक, तथा अनाज के कर्ज पर २५ प्रतिशत से ४० प्रतिशत तक।

पंजाब कमेटी ने केवल उन ऋणों के सूद की दर बतलाई है, जिनके लिये कुछ सम्पत्ति बन्धक रूप में रख दी गई है। यह सूद की दर ६ से १२ प्रतिशत तक है।

इस भीषण ऋण के बोझ को न सह सकने के कारण किसानों की भूमि उनके हाथ से निकल कर क्रमशः महाजनों के हाथों में जाने लगी। इस भयङ्कर परिस्थिति की ओर भारत सरकार का ध्यान किसान-विद्रोह ने आकर्षित किया। दक्षिण भारत, अजमेर-मेरवाड़ा, तथा छोटा-नागपुर डिविजन में किसान विद्रोही हो उठे; उन्होंने महाजनों के घर जला दिये और उन्हें मार डाला, तथा बही खातों को जला कर भस्म कर दिया। सरकार ने एक कमीशन दक्षिण के किसानों के विद्रोह के कारणों की जांच करने के लिये बिठाया। कमीशन की सम्मति में

किसानों की गिरी हुई आर्थिक दशा और भयङ्कर सूद की दर ही इन विद्रोहों का कारण थी। शान्ति-प्रिय किसान जब महाजन का अत्याचार न सह सके तो वे विद्रोही हो गये। सरकार ने किसान की रक्षा के लिये एक एक्ट बनाया, जिससे अदालतों को यह अधिकार दे दिया गया कि वे किसी भी नालिश के मुकदमे में न्यायोचित सूद की ही डिगरी दें फिर किसान ने महाजन को चाहे जितना अधिक सूद देने का इक़रार क्यों न किया हो। इस एक्ट का कोई फल न हुआ, क्योंकि किसान निर्धन हैं और न्यायालयों में व्यय अधिक होता है; साथ ही अदालतों ने इस ओर विशेष ध्यान भी नहीं दिया।

सरकार ने फसल नष्ट होने पर मालगुजारी तथा लगान में छूट देने की नीति को अपनाया, किन्तु इससे भी किसान को विशेष लाभ नहीं हुआ। सरकार एक तो छूट बहुत कम देती है और उस छूट में भी यह शर्त लगाई जाती है कि यदि किसान एक निश्चित तारीख तक लगान नहीं देगा तो छूट नहीं मिलेगा। फल यह होता है कि किसान को महाजन से कर्ज लेकर लगान देना पड़ता है। भारत सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया गया कि भारतीय किसानों में मितव्ययिता का भाव जाग्रत करना चाहिये। अस्तु, पोस्ट-आफिस सेविंग बैंक खोले गये। किन्तु उन बैंकों ने किसानों में मितव्ययिता का कितना प्रचार किया है, यह पाठक भली भांति जानते हैं। अशिक्षित किसान भला उन बैंकों से कैसे लाभ उठा सकता है, जिनका कार्य विदेशी भाषा में होता है, और जो अधिकतर शहरों और बड़े कस्बों में होते हैं। जिस देश में किसानों को मनीआर्डर और तार की लिखाई दो आने और खत की लिखाई एक आना देनी पड़ती हों वहां पोस्ट आफिस सेविंग बैंक किस प्रकार किसानों को अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं। सरकार ने कई बार कानून से यह व्यवस्था की कि किसान को कुछ सुविधा दी जावे किन्तु कानून उन्हें कुछ सहायता न पहुँचा सका।

सरकार ने देखा कि किसान को खेतीबारी का धंधा करने के लिये साख की आवश्यकता होती है। किसान को दो प्रकार की साख चाहिए अर्थात् थोड़े समय के लिए तथा अधिक समय के लिए। किसान को फसल तैयार करने के लिए जो कर्ज लेना पड़ता है वह लगभग एक वर्ष के लिये लिया जाता है फसल के लिये किसान को बीज, खाद, हल तथा अन्य औजारों और मजदूरों की मजदूरी का प्रबन्ध करना पड़ता है। किसान इनके लिये कर्ज लेकर फसल कटने के उपरांत अदा कर सकता है। किंतु कुछ कार्य ऐसे है जिनमें पूँजी लगाने से तुरन्त ही लाभ नहीं होता जैसे कुआँ खोदना, खेती के मूल्यवान यंत्र मोल लेना, तथा भूमि को अधिक उपजाऊ बनाना, इत्यादि। इन कार्यों के लिये कर्ज अधिक समय के लिये चाहिए। अस्तु, सरकार ने दो एक्ट बनाकर प्रांतीय सरकारों को यह अधिकार दे दिया कि वे किसान को दोनों प्रकार की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिये कर्ज दे सकती है। इस सरकारी कर्ज को तकावी कहते हैं। किन्तु तकावी से भी यह समस्या हल नहीं हुई और न किसानों ने तकावी का अधिक उपयोग ही किया। कारण यह है कि एक तो किसान को समय पर रुपया नहीं मिलता, उसको रुपये की इस समय आवश्यकता है किन्तु रुपया मिलता है देर में। इसमें सब से बड़ा दोष यह है कि किसानों को तकावी पटवारी कानूनगो तथा नायब तहसीलदार इत्यादि रेवन्यू विभाग के कर्मचारियों की सिफारिश से ही मिलती है। इस कारण किसान को तकावी मिलने में कठिनाई होती है। इसलिए तथा वसूलयाबी में कड़ाई होने के कारण, तकावी का अधिक प्रचार न हो सका।

कर्जदार होने के कारण किसानों के हाथ से भूमि महाजनों के पास चली जाती है और किसान उस पर मजदूर की भाँति काम करता है। पंजाब में इस समस्या ने भीषण रूप धारण कर लिया था, इस कारण वहाँ कानून बना कर इसे रोक दिया गया। 'पंजाब लैंड एलीनियेशनएक्ट' के अनुसार कुछ जातियां किसान जातियाँ मान ली गई

हैं, खेती की भूमि इन जातियों के अतिरिक्त अन्य जातियाँ नहीं ले सकतीं। इस एक्ट से यह लाभ हुआ कि महाजन कर्ज के लिये डिगरी करा कर अब किसान की भूमि नहीं ले सकते। संयुक्तप्रांत के झांसी के आसपास के प्रदेश में तथा मध्यप्रांत के कुछ भागों में इसी प्रकार का कानून लागू किया गया है।

किन्तु ऋण-समस्या जैसी पहले थी, वैसी ही बनी रही। इसी बीच में भारत सरकार का ध्यान सहकारिता आन्दोलन की ओर आकर्षित हुआ और उसके द्वारा भारतवर्ष में इस आन्दोलन का श्रीगणेश किया गया। जर्मनी और इटली में सहकारी साख समितियों ने वहाँ के किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारने में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की। भारत सरकार ने भी ऋण-समस्या हल करने के लिए सहकारिता आन्दोलन की शरण ली।

इस देश में ४४ वर्षों से ऊपर इस आन्दोलन को चलते हो गये। सहकारिता आन्दोलन कहाँ तक सफल हुआ है और भविष्य में उसमें क्या आशा है, यह आगे के पृष्ठों में लिखा जायगा। अनुभव से यह तो स्पष्ट ही हो गया है कि किसानों का पिछला कर्ज चुकाने तथा अधिक समय के लिए किसानों को कर्ज देने का कार्य सहकारी साख समितियाँ सफलता-पूर्वक नहीं कर सकती। और; जब तक किसान पुराने कर्ज के बोझ से दबा रहेगा तब तक उसकी आर्थिक उन्नति नहीं हो सकती। यदि किसान सहकारी साख समिति का सदस्य बनता है किन्तु महाजन का पुराना कर्ज नहीं चुका सकता तो महाजन उसको तङ्ग करता है और किसान को पुराने कर्ज पर तो भयङ्कर सूद देना ही पड़ता है। फल यह होता है कि किसान की मुक्ति का कोई उपाय नहीं रहता। इसी समस्या को हल करने के लिए भूमि-बंधक बैंक स्थापित करने का आयोजन किया जा रहा है। यह बैंक भी उन्हें किसानों का पिछला कर्ज चुका सकेंगे, जिनके पास भूमि है, और जो उसे बैंक के पास बंधक रख सकेंगे। बैंक किसान से सूद सहित उस कर्ज को

बीस अथवा पच्चीस वर्षों में किस्ते लेकर वसूल कर लेगा। यह प्रयोग अभी नया है, बहुत कम बैंक देश में स्थापित किये गये हैं; इस कारण इसकी सफलता के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि भूमि-बंधक बैंक को कार्यशील पूँजी इकट्ठा करने की समस्या हल करनी होगी और यदि इन बैंकों के डिबेंचर बेच कर कार्यशील पूँजी इकट्ठी हो गई तो भी बैंक उन्हीं किसानों को कर्ज दे सकेंगे, जो भूमि को बंधक रख सकेंगे। बहुत से प्रांतों में किसान का भूमि पर स्वामित्व ही नहीं है, वहाँ ये बैंक किसानों की सहायता न कर सकेंगे।

ऋण परिशोध—पहले कहा जा चुका है कि पुराने कर्ज को चुकाने की समस्या बहुत कठिन है। अधिकतर यह ऋण पैतृक होता है. यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी पर आता है। किसान की आर्थिक स्थिति इतनी शोचनीय हो गई है कि वह इस कर्ज को चुका नहीं सकता। जब साधारण रूप से फसल तैयार करने के लिये महाजन अथवा सहकारी साख समिति के लिए हुए कर्ज को देकर उसके पास वर्ष भर के लिये खाने को नहीं रहता, तब वह पुराने कर्ज को किस प्रकार चुका सकता है! जिस वर्ष फसल खराब हो जाती है, बैल मर जाते हैं, अथवा और कोई अनिवार्य खर्च आ जाता है तो ऋण अधिक बढ़ जाता है। जब तक पुराने कर्ज को चुका नहीं दिया जाता अथवा उसको गैर-कानूनी नहीं बना दिया जाता, तब तक किसानों की आर्थिक स्थिति सुधर नहीं सकती। शाही कृषि कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि "इस ऋण की ओर से उदासीन रहना बहुत भयङ्कर होगा।

सैंट्रल बैंकिङ्ग इनक्वायरी कमेटी की समिति में सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिए और निम्नलिखित योजना के अनुसार कार्य करना चाहियेः—

'प्रांतीय सरकार इस कार्य के लिए विशेष कर्मचारी नियुक्त करे, जो गाँव में दौरा करके महाजन को इस बात पर राज़ी करें कि वह किसानों से एक मुश्त अथवा किस्तों से रुपया लेकर उन्हें ऋण-मुक्त कर दे। इन कर्मचारियों का यह भी कर्त्तव्य होगा कि वे बतलावें कि निश्चित सूद की दर को कानून द्वारा घटवाया जा सकता है।

'जब कर्मचारी महाजन से तय करले कि वह कम से कम कितना रुपया लेकर किसान को ऋण-मुक्त कर देगा, तब किसान को सहकारी साख समिति का सदस्य बनवा दिया जावे। समिति उसका कर्ज इकट्ठा अथवा किस्तों में चुका दे तथा खेतीबारी के लिये किसान को आवश्यक साख दे।

'जब महाजन रुपया वार्षिक किस्तों में लेना स्वीकार करे तो जितना ऋण किसान स्वयं अदा कर सकता हो करदे बाकी का ऋण समिति, सदस्य की जमा के रूप में, अपने यहाँ लिखले और प्रतिवर्ष जब किस्त का रुपया अदा करे तो जमा किया हुआ रुपया कम कर दिया जावे।

'यदि महाजन एक मुश्त रुपया माँगे तो सरकार को चाहिए कि वह उतना रुपया समिति को उधार देदे; समिति उस कर्ज को वार्षिक क़िस्तों में चुका दे। तदुपरांत यह निश्चय किया जावे कि किसान प्रति वर्ष कितनी किस्त अदा करे। यदि किसान रुपया अदा न कर सके और समिति को हानि हो जावे तो सरकार उस हानि को पूरा करदे।

'यह भी सम्भव है कि महाजन कर्ज के इस प्रकार चुकाये जाने के लिये तैयार न हो और समझौता न करें। ऐसी परिस्थिति में उन्हें कानून बना कर समझौते के लिये मजबूर किया जावे।

शाही कृषि-कमीशन ने भी पैतृक ऋण के विषय पर अपनी सम्मति दी थी। कमीशन की सम्मत्ति में ग्रामीण 'इन्सालवेंसी (दिवाला)

एक्ट' बनाया जावे। इससे यह लाभ होगा कि जो ग्रामीण ऋण के बोझ से इतना दबा हो कि अपनी सम्पत्ति बेच देने पर भी कर्ज़ अदा न कर सके, वह दिवालिया होने का प्रार्थना-पत्र दे दे, अपनी सम्पत्ति लेनदारों को देकर ऋणमुक्त हो जावे, और स्वतन्त्र रूप से आजीविका उपार्जन करे। चाहे उसकी सम्पत्ति से लेनदारों का आधा रुपया भी वसूल न हो सके, वे उस किसान से भविष्य में रुपया वसूल नहीं कर सकते। किसान सदा के लिए उस ऋण से मुक्त हो जायगा। यह एक्ट पास हो गया है, किन्तु इसका लाभ साधारण किसान नहीं उठा सकता, क्योंकि एक्ट में विशेष प्रकार के किसानों को को ही यह सुविधा दी गई है।

ऋण परिशोध के प्रयत्न—भारतवर्ष में सर्व प्रथम किसानों को ऋणमुक्त करने का श्रेय काठियावाड़ की एक छोटी सी रियासत भावनगर को है। वहाँ के दीवान स्वर्गीय सर प्रभाशंकर पट्टनी ने एक आज्ञा निकाल दी कि जिस किसी महाजन का किसी किसान पर कर्जा हो, वह राज्य को उसकी सूचना निश्चित तारीख तक दे दे; नहीं तो उसका कर्ज गैर-कानूनी घोषित कर दिया जायगा। जब राज्य के सभी महाजनों की सूचनाएं आगईं तो राज्य ने हिसाब लगा कर देखा कि तमाम किसानों का ऋण ८६, ३८, ८७४ रुपया निकला। श्री पट्टनी ने महाजनों के सामने यह प्रस्ताव रखा कि राज्य उस तमाम ऋण के बदले २०, ५१, ४७३ रु० देकर किसानों को ऋणमुक्त कर देना चाहता है। पहले तो महाजन इस समझौते के लिए तैयार न हुए। किन्तु जब उन्होंने देखा कि राज्य किसानों को ऋणमुक्त करने पर तुला हुआ है और हमारे द्वारा इस प्रस्ताव को न मानने का फल यह होगा कि राज्य ऐसा कानून बना देगा कि उन्हें अपना रुपया वसूल करने में कठिनाई हो जायगी, तो वे राजी हो गये। राज्य ने २०, ५६, ४७३ रु० देकर सब किसानों को महाजनों के ऋण से मुक्त कर दिया।

ध्यान रहे कि भावनगर राज्य के किसान उस तमाम ऋण पर हर साल २५ लाख रुपये केवल सूद में दे देते थे। राज्य ने एक साल की रकम से भी कम देकर किसानों को बिलकुल ऋणमुक्त कर दिया। राज्य ने किसानों से यह रकम किस्तों में लगान के साथ वसूल करली। इसका फल यह हुआ कि किसान बिना किसी के कहे अच्छे हल, बैल खाद इत्यादि का उपयोग करने लगा है, उसने कुएं खोदकर वैज्ञानिक ढङ्ग की खेती को अपनाया है, क्योंकि उसको अब विश्वास हो गया है कि उसकी पैदावार उसके पास रहेगी। राज्य को एक बड़ा लाभ यह हुआ कि अब उसे बिना किसी कठिनाई के मालगुजारी मिल जाती है। भविष्य में राज्य फिर किसान महाजन के चंगुल में न फँस जावे, इसलिए राज्य ने एक कानून (खेडूत रक्षा कानून) बना कर किसान की साख को बहुत सीमित कर दिया है। वह केवल कुछ विशेष कार्यों के लिए, और कुछ विशेष अवस्थाओं में ही, कर्ज ले सकेगा। खेती बारी के लिए आवश्यक साख का प्रबन्ध राज्य ने ही किया है। राज्य ने तकावी देने का समुचित प्रबन्ध किया है, और सूद बहुत कम लिया जाता है।

भावनगर का प्रयोग एक देशी राज्य में हुआ है। ब्रिटिश प्रान्तों में यह कार्य उतना सरल नहीं था। फिर भी सन् १९३६ से १९३९ तक प्रान्तीय मंत्रिमंडलों ने इस ओर विशेष ध्यान दिया और किसान की रक्षा के लिए कुछ कानून बनाये; उनमें निम्नलिखित कानून मुख्य हैं।

ब्रिटिश सरकार के कानून—बंगाल, आसाम, मध्यप्रान्त, विहार पञ्जाब और संयुक्तप्रान्त में महाजन पर नियन्त्रण रखने के उद्देश्य से कानून बनाये गये। भिन्न-भिन्न प्रान्तों के कानून के थोड़ी सी भिन्नता है। परन्तु उनकी मुख्य बातें एकसी ही हैं।

प्रान्तीय सरकारों ने सूद की दर निश्चित कर दी है। भिन्न-भिन्न

प्रान्तों में सूद की दर इस प्रकार है :—

	सुरक्षित ऋण		अरक्षित ऋण	
प्रान्त	सूद	सूद-दर-सूद	सूद	सूद-दर-सूद
मदरास...	६।%	...	६।%	...
बम्बई ..	९%	मना है	१२%	मना है
बङ्गाल...	१५%	१०%	२५%	१०%
पञ्जाब...	१२%	९%	१८%	१४%
बिहार...	९%	मना है	१२%	मना है
मध्यप्रांत...	७%	५%	१०%	५%
आसाम...	१२॥%	मना है	१८॥%	मना है

संयुक्तप्रान्त में व्याज की दर ऋण की रकम पर निर्भर है, और इस प्रकार है।

	सुरक्षित		अरक्षित	
रकम	सूद	सूद-दर-सूद	सूद	सूद-दर-सूद
५०० रु० से कम—	५॥%	३%	१०%	१०%
५०१ से ५००० रु० तक	४॥%	२॥%	८%	७%
५००१ से २०००० रु० तक	३॥%	२%	६॥%	४०%
२०,००० रु० से अधिक	२॥%	१॥%	५॥%	३%

यह दर सन् १९३० के बाद के लिए हुए ऋण पर ही लागू है। इसके पहले लिए ऋण पर ब्याज की दर दूसरी है।

कानून के अनुसार प्रत्येक महाजन को सरकार से एक लायसेंस लेना होगा। कुछ प्रान्तों में लायसेंस लेना अनिवार्य है और कुछ में यह महाजन की इच्छा पर निर्भर है। परन्तु इन प्रान्तों में भी यदि महाजन ने लायसेंस नहीं लिया है तो वह अपने रुपये के लिये अदालत में नालिश न कर सकेगा। हर एक लायसेंसदार महाजन को नियमानुसार हिसाब रखना होगा और प्रत्येक कर्जदार को निश्चित समय पर उसका हिसाब लिखकर देना होगा। जब कभी कर्जदार

कुछ रुपया महाजन को दे तो महाजन को उसकी रसीद देनी होगी। यदि कोई महाजन इन नियमों का पालन नहीं करेगा तो उसको दण्ड दिया जावेगा।

१९३६ के उपरान्त प्रान्तीय मंत्रिमंडल ने किसानों के ऋण की समस्या को हल करने का थोड़ा बहुत प्रयत्न अवश्य किया। किंतु विशेष सफलता कहीं भी नहीं मिली और न कोई क्रांतिकारी योजना ही काम में लाई गई।

किसान को कर्ज मुक्त करने के लिये यह आवश्यक समझा गया कि उससे कर्ज की रकम को किसी प्रकार कम कर दिया जाय। इसके लिए दो प्रकार के कानून बनाये गए। एक प्रकार के लिए विवश नहीं किया जा सकता, केवल उस पर दबाव डाला जा सकता है। दूसरे प्रकार के कानून वह हैं, जिनमें महाजन को कर्ज की रकम कम करने के लिए विवश किया जाता है। पहले प्रकार के कानून द्वारा सरकार जिलों में ऋण समझौता बोर्ड स्थापित करती है। बोर्ड के सामने महाजनों को अपने कागज तथा हिसाब पेश करना होता है, यदि किसी प्रकार के ४० प्रतिशत लेनदार बोर्ड के फैसले को मान लें (अर्थात् बोर्ड जितनी कहे उतनी रकम कम कर दें) तो बोर्ड उस किसान को एक सार्टिफिकेट दे देता है, और वे लेनदार जिन्होंने बोर्ड का फैसला अस्वीकार कर दिया है, उस समय तक किसान से अपनी रकम वसूल नहीं कर सकते जब तक कि उन लेनदारों की रकम वसूल न हो जावे, जिन्होंने बोर्ड का समझौता स्वीकार कर लिया है। यदि कोई लेनदार बोर्ड के मांगने पर अपने कागज़ उपस्थित नहीं करता, अथवा किसी किसान विशेष पर उसका कितना रुपया है, यह नहीं बतलाता तो उसको भविष्य में अपनी रकम वसूल करने का कानूनन अधिकार नहीं रहता। इसका फल यह होता है कि बहुत से महाजन बोर्ड का फैसला मान लेते हैं। इस प्रकार का कानून आसाम, पञ्जाब, बङ्गाल, मध्यप्रांत तथा मदरास में प्रचलित है। किन्तु कांग्रेसी

मंत्रिमंडलों ने मदरास तथा मध्यप्रांत में ऐसा कानून बना दिया, जिससे महाजनों को रकम कम करने के लिए विवश किया जाता है। मदरास किसान रिलीफ एक्ट' के अनुसार १ अक्तूबर १९३२ के पहले लिए हुए ऋण पर, अक्तूबर १९३७ तक का बकाया सूद माफ कर दिया गया; केवल मूल ही देना होगा। यदि मूल अथवा सूद की अदायगी के रूप में मूल से दुगुनी रकम अदा कर दी गई हो तो सारा ऋण चुक गया मान लिया जावेगा, और यदि अदा की हुई रकम मूल ऋण के दुगने से कम हो तो शेष देकर किसान ऋणमुक्त हो जायगा। जो ऋण १ अक्तूबर १९३७ के उपरान्त लिया गया है उसके मूल पर ५ प्रतिशत सूद लगा कर कुछ रकम मालूम कर ली जाती है और उसमें से जितना ऋण किसान ने अदाकर दिया है, उसको घटा कर जो रकम शेष रहती है, वह कर्जदार को देनी पड़ती है। इस रकम पर भविष्य में किसान को केवल ६। प्रतिशत सूद देना पड़ता है।

मध्यप्रान्त में कानून के द्वारा यह निश्चित कर दिया गया है कि यदि ऋण ३१ दिसम्बर १९२५ के पूर्व लिया हो तो उसकी रकम ३० प्रतिशत कम कर दी जायगी। यदि ऋण १ जनवरी १९२६ के उपरांत और अक्तूबर १९२९ के पहले लिया गया हो तो २० प्रतिशत और यदि ऋण १ अक्तूबर १९२९ के बाद और ३१ दिसम्बर १९३० के पहले लिया गया हो तो १५ प्रतिशत कम कर दिया जायगा।

उत्तर प्रदेश में भी कांग्रेसी सरकार ने इस आशय का कानून बनाने का प्रयत्न किया था। उसके अनुसार महाजन को एक वर्ष के अन्दर अपने कर्जदारों पर नालिश कर देनी होती, नहीं तो फिर कर्ज चुकता मान लिया जाता। उसके साथ ही अदालत रक्षित कर्ज पर ५ प्रतिशत, तथा अरक्षित कर्ज पर ८ प्रतिशत के हिसाब से सूद लगाकर तथा 'दाम दुपत' के नियम के अनुसार कर्ज की रकम कम कर देती। युद्ध से उत्पन्न होने वाली राजनैतिक परिस्थिति वश कांग्रेस सरकारें टूट गईं और दूसरे प्रांतों में इस प्रकार के कानून न बन पाये। जो कानून

बने, उनके द्वारा भी किसान ऋणमुक्त हो सकेगा, इसमें बहुत सन्देह है।

भूमि बंधक बैंक—भारतवर्ष में भूमि बन्धक बैंकों की स्थापना इसी उद्देश्य से की गई थी कि वह लम्बे समय के लिए ऋण देकर किसानों को महाजनों की आर्थिक दासता से मुक्त कर दे परन्तु इस प्रयत्न में भी अधिक सफलता नहीं मिली क्योंकि मदरास प्रान्त को छोड़कर अन्य किसी भी प्रान्त में भूमि बंधक बैंक अधिक सफल नहीं हुए। फिर भूमि बंधक बैंकों से तो केवल वही किसान लाभ उठा सकते हैं जिनके पास गिरवी रखने के लिए भूमि है जिन किसानों के पास भूमि गिरवी रखने का अधिकार नहीं है वे भूमि बंधक बैंकों से लाभ नहीं उठा सकते।

हाँ, जमींदारी प्रथा के विनाश हो जाने के उपरान्त जब किसान का भूमि पर स्वामित्व स्थापित हो जावेगा तब किसान भूमि बंधक बैंकों से अधिक लाभ उठा सकेंगे।

फिर भी खेत मजदूरों की समस्या तो बनी ही रहेगी। खेत मजदूर के पास भूमि नहीं होती इस कारण वह भूमि बंधक बैंकों से लाभ नहीं उठा सकता। आज खेत मजदूर की स्थिति वास्तव में सबसे अधिक दयनीय है।

लेखक की योजना—यदि हम चाहते हैं कि किसान महाजनों की आर्थिक दासता से स्वतन्त्र होकर खेतीबारी की उन्नति करे ग्रामीण उद्योग धन्धों की सहायता से अपनी आय को बढ़ावे और मनुष्यों जैसा जीवन व्यतीत करे तो उसे कर्ज से मुक्त करना होगा। इसके लिये प्रान्तीय सरकारों को दृढ़तापूर्वक क्रान्तिकारी तरीकों को अपनाना होगा। लेखक भारतीय किसानों को ऋणमुक्त करने की एक योजना यहाँ उपस्थित करता है:—

जिन किसानों की दशा इतनी अधिक शोचनीय हो कि वे अपने कर्ज को चुकाने में असमर्थ हों, उन्हें एक सरल और सादा ग्रामीण

दिवालिया कानून बनाकर कर्ज से मुक्त कर दिया जाय। इसके लिए एक विशेष प्रकार का दिवालिया-एक्ट बनाना होगा। उसके अनुसार किसान के बैल, खेती के औजार, ६ महीने का भोजन, बीज और खाद लेनदार न ले सकें। इनके अतिरिक्त, किसान के पास और जो कुछ भी हो, उसको लेनदारों में बाँट कर किसान को ऋणमुक्त कर दिया जाय। हमारा अनुभव है कि अधिकांश किसान इसी तरह के होंगे। शेष किसान जो कुछ हद तक कर्ज को दे सकते हों, उनके ऋण को ५० प्रतिशत करके सरकार उसकी अदायगी की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ले। प्रश्न यह हो सकता है कि सरकार इतना रुपया कहाँ से लावे। इसके लिए दो उपाय काम में लाये जा सकते हैं। पहला यह है कि सरकार इस कार्य के लिए कर्ज ले और महाजनों को कम की हुई रकम अदा करके किसानों को ऋणमुक्त कर दे, और वह रकम किसानों से छोटी-छोटी किस्तों में वसूल कर ली जाय; दूसरा उपाय यह है कि सरकार कम की हुई रकम के लिए प्रत्येक महाजन को बौंड दे-दे, जिस पर सरकार ३ प्रतिशत सूद दे और यह शर्त रहे कि सरकार जब चाहेगी, तभी उन बौंडों का भुगतान कर देगी। तदुपरांत प्रत्येक किसान को, जिसका कर्ज सरकार ने महाजन को दे दिया है, अपना कर्ज सरकार को किस्तों में अदा करना होगा। किन्तु इससे पूर्व कि इस प्रकार की कोई योजना हाथ में ली जाय किसान के कर्ज की जाँच करवा लेना आवश्यक है। इसमें प्रत्येक प्रान्त के विश्वविद्यालयों तथा कालेजों के अर्थशास्त्र विभागों से सहायता ली जा सकती है।

जो हो, यह निर्विवाद है कि किसान को ऋणमुक्त किये बिना उसकी दशा सुधर नहीं सकती, किन्तु ऋणमुक्त कर देने से ही समस्या हल नहीं होगी। एक कानून बनाकर किसान की साख को बहुत मर्यादित कर देना होगा, जिससे भविष्य में वह महाजन के चंगुल में न फँसे। साथ ही सहकारी साख समितियों का खूब विस्तार करके सरकार को खेतीबारी के लिए आवश्यक साख का उचित प्रबन्ध करना होगा इसके

अतिरिक्त, सामाजिक कृत्यों (विवाह, मृतक भोज तीर्थ, पर्व इत्यादि) पर व्यर्थ व्यय न करने तथा मुकदमेबाजी में कर्ज लेकर व्यय न करने के लिए गाँवों में प्रचार करना होगा। उन्हें शिक्षित करना होगा तभी वे कर्ज से मुक्त हो सकेंगे।

कुछ लोग इस प्रकार की योजनाओं को अन्यायपूर्ण और समाजवादी कहकर बदनाम करते हैं। स्थिर स्वार्थ वाले लोग यह कहते नहीं थकते कि इससे वायदे की पवित्रता नष्ट हो जायगी। किंतु किसान के कर्ज के सम्बन्ध में वायदे की दुहाई देना स्वार्थपरता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। क्या अशिक्षित किसान से अँगूठा लगवा लेना न्याय है; क्या जरूरत के समय निर्धन किसान से जितना चाहे सूद ले लेना न्याय है? और क्या किसान का लगातार शोषण करना न्याय है? यदि जरूरत के समय किसान विवश होकर १००रु० कर्ज लेकर १५० रु० पर अँगूठा लगा देता है अथवा ७५ फी-सैकड़ा सूद देने पर राजी हो जाता है तो इसमें वायदे की पवित्रता का प्रश्न कहाँ उठता है! स्थिर स्वार्थ वाला वर्ग तो किसान को किसी प्रकार की सुविधा दिए जाने पर इसी प्रकार आन्दोलन करेगा।

अब प्रान्तों और केन्द्र में राष्ट्रीय सरकारें स्थापित हैं उन्हें इस समस्या को शीघ्र से शीघ्र हाथ में लेना चाहिए। नहीं तो कुछ समय के उपरान्त खेती की पैदावार का मूल्य घटने लगेगा और भारतीय ग्रामीण की स्थिति फिर भयावह हो उठेगी। कारण यह है कि साधारण समय में खेती का धंधा भारत में घाटे का धंधा है और किसान का बजट घाटे का बजट होता है, अर्थात् जितनी सम्पत्ति वह वर्ष में उत्पन्न करता है, वह उसकी न्यूनतम आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त नहीं होती। एक विद्वान ने ठीक कहा है कि खेती भारत में धंधा नहीं है, वरन् जीवन-निर्वाह का एक ढंग है। अस्तु, किसान के जीवन में जो यह अल्पकालीन समृद्धि आ गई है उसका सरकार को पूरा उपयोग करना चाहिए। प्रत्येक प्रांतीय सरकार को ग्रामीण ऋण की जांच

कराकर ऊपर लिखी योजना के अनुसार किसान को ऋणमुक्त कर देना चाहिए जिससे कि वह आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त कर सके और खेती की उन्नति हो सके। इस ओर युद्ध-काल में ही सरकार को ध्यान देना चाहिए था, किंतु उस समय सरकार राष्ट्रीय न थी, उसने इस स्वर्ण अवसर को निकल जाने दिया। हर्ष की बात है कि उत्तर प्रदेश की सरकार ने अभी हाल में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में ग्रामीण जांच कमेटी बिठाई है। आवश्यकता इस बात की है कि सभी प्रांतों में सरकारें इस समस्या को शीघ्र अपने हाथ में लेलें।

चौथा परिच्छेद

सहकारिता आन्दोलन का श्रीगणेश और सहकारिता क़ानून

पिछले परिच्छेद में कहा जा चुका है कि १८७८ में बम्बई प्रांत के पूना तथा अन्य जिलों में किसान विद्रोही हो उठे थे। उसके सम्बन्ध में एक जांच-कमेटी बैठाई गई थी और उस कमेटी ने विद्रोह का मूल कारण ग्रामीण कर्ज बतालाया था। इस पर बम्बई सरकार ने दक्षिण रिलीफ एक्ट बनाकर किसानों की रक्षा करने का प्रयत्न किया १८८२ में सर विलियम वैडरबर्न तथा श्री० गोखले ने ग्रामीण कर्ज की समस्या को हल करने के लिये सरकार के सामने कृषि-बैंक की एक योजना उपस्थित की। योजना मोटे रूप में यह थी कि एक ताल्लुका अथवा जिला ले लिया जावे, सरकार उस के किसानों का सारा कर्ज चुका दे और कृषि-बैंक स्थापित कर दे, बैंक सरकारी कर्ज अपने ऊपर लेले और प्रति वर्ष किस्तों में सूद सहित रुपया किसानों से वसूल करे। किंतु भारत-मंत्री ने इस योजना को अस्वीकार कर दिया क्योंकि यह 'व्यवहारिक' नहीं थी। इसके उपरांत १८८३ और १८८४ में तकावी कानून*पास किये गये, जिनके द्वारा प्रान्तीय सरकारों को उचित सूद पर किसानों को कर्ज देने का अधिकार मिल गया। इसी बीच में दुर्भिक्ष-कमीशन ने भी किसानों की शोचनीय दशा का वर्णन करते हुए अपनी रिपोर्ट में कृषि-बैंक खोलने के विषय में सम्मति देदी।

---

* Land Improvement Loans Act, and Agriculturists Loan Act.

जर्मनी में इसी समय सहकारिता आंदोलन बड़ी तेजी से बढ़ रहा था, मदरास सरकार ने अपने एक कर्मचारी श्री० फ्रैडरिक निकलसन को जर्मनी में इस आंदोलन का अध्ययन करने लिये भेजा। श्री० निकलसन ने वहां की साख-समितियों का अध्ययन करने के बाद एक रिपोर्ट लिखी और उसमें यह बतलाया कि यदि किसान की आर्थिक दशा को सुधारना हो तो देश में रैफीसन को ढूँढ़ निकालो। इसके उपरांत संयुक्तप्रांत के श्री ड्यूपरनैक्स ने सहकारिता आंदोलन का अध्ययन करके 'पीपल्स बैंक' नामकी पुस्तक लिखी। इन सब प्रयत्नों का फल यह हुआ कि भारत सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। इस विषय पर विचार करने के लिए एक कमेटी बैठाई गई। इस कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित होने पर उसकी सम्मति के अनुसार सन् १९०४ में प्रथम सहकारिता कानून पास हो गया। इस कमेटी के सभापति सर एडवर्ड ला थे, जो उस समय भारत सरकार के अर्थ-सचिव थे।

२५ मार्च सन् १९०४ को भारतवर्ष में सहकारिता आंदोलन का श्रीगणेश हो गया। इस एक्ट के अनुसार किसानों गृह उद्योग-धंधों, तथा नीची श्रेणी के लोगों के लिये साख-समितियों के खोलने का आयोजन किया गया। एक्ट संक्षेप में इस प्रकार था अठारह वर्ष से अधिक के कोई दस मनुष्य सहकारी साख समिति स्थापित कर सकते हैं। सदस्यों को एक ही गांव तथा एक ही स्थान का होना आवश्यक है, जिसमें वे एक दूसरे के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकें। समितियाँ दो प्रकार की होंगी, ग्रामीण और नागरिक। ग्राम्य समिति में ८० प्रतिशत सदस्यों का किसान होना, और नगर-समितियों में ८० प्रतिशत कारीगर तथा अन्य पेशे वालों का होना आवश्यक है। ग्राम्य समितियों के सदस्यों का दायित्व अपरिमित होगा, किन्तु नगर समितियों के सदस्यों का दायित्व यदि वे निश्चय करलें, सीमित भी हो सकता है। ग्राम्य समिति का सब लाभ सुरक्षित कोष में जमा करना आवश्यक है। हाँ, जब वह कोष एक निश्चित

रकम से ऊपर पहुँच जावे तो तीन-चौथाई लाभ सदस्यों में बाँटा जा सकता है। नगर समितियों में लाभ के बाँटने पर कोई रुकावट नहीं लगाई गई, हाँ, यह नियम बनाया गया कि २५ प्रतिशत लाभ सुरक्षित कोष में जमा किया जावे। समितियाँ व्यक्तिगत जमानत पर रुपया दे सकती हैं. परन्तु चल सम्पत्ति की जमानत पर रुपया नहीं दे सकतीं। समितियों के आय व्यय की जाँच रजिस्ट्रार द्वारा भेजे हुए परीक्षकों के द्वारा होगा। एक्ट ने समितियों को कुछ सुविधाएँ भी प्रदान कीं। समितियों को स्टाम्प-फीस नहीं देनी पड़ती, और किसी भी सदस्य के व्यक्तिगत ऋण के लिये उसका (समिति में) हिस्सा कुर्क नहीं कराया जा सकता।

सहकारिता एक्ट के पास होते ही सब प्रान्तों में प्रान्तीय सरकारों ने रजिस्ट्रार नियुक्त कर दिये, जिन्होंने प्रान्तों में सहकारिता आन्दोलन की देखभाल प्रारम्भ कर दी। रजिस्ट्रार आरम्भ में समितियों का संगठन, उनकी देखभाल, तथा उनको रजिस्टर करने का कार्य करता था। किन्तु थोड़े ही समय के उपरान्त रजिस्ट्रार तथा अन्य कार्यकर्ताओं को एक्ट के दोषों का अनुभव होने लगा। कई बार सब प्रान्तों के रजिस्ट्रारों के सम्मेलन हुए और उन्होंने एक्ट के संशोधन की आवश्यकता बतलाई। १९०४ के एक्ट के अनुसार साख-समितियों के रजिस्टर करने की तो व्यवस्था हो गई, किन्तु गैर-साखसमितियों, सेन्ट्रल बैंक, बैंकिंग यूनियन, तथा सुपरवायजिङ्ग यूनियन के रजिस्टर करने की सुविधा नहीं हुई। १९०४ के उपरान्त जब देश में साख-समितियों की स्थापना होने लगी, उसी समय यह आवश्यक समझा गया कि साख समितियों का निरीक्षण करने के लिये तथा उनको पूँजी देने के लिये सेन्ट्रल बैंक यूनियन की स्थापना की जावे, क्योंकि साख समितियों के पास सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरी करने के लिये यथेष्ट पूँजी नहीं थी। सेन्ट्रल बैंकों की स्थापना कम्पनी एक्ट के अनुसार ही हो सकती थी. न कि सहकारिता एक्ट के अनुसार। साथ ही इस बात

का अनुभव हुआ कि देश को गैर-साख समितियों की भी अत्यन्त आवश्यकता है, उदाहरणार्थ गृह-उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने के लिये, खेतों की पैदावार का उचित मूल्य पर बेंचने के लिये, तथा उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर वस्तुएँ देने के लिये सहकारी समितियों की स्थापना की आवश्यकता प्रतीत हुई। किन्तु १९०४ के एक्ट में गैर-साख समितियों के संगठन के लिए कोई भी सुविधा न थी। इन सब दोषों को देखते हुए यह आवश्यक समझा गया कि एक नया एक्ट बनाया जावे। अस्तु, सन् १९१२ में दूसरा एक्ट बनाया गया, जो भारतवर्ष में अब तक प्रचलित है।

यद्यपि अब लगभग सभी प्रान्तों ने अपने पृथक् सहकारिता कानून पास कर लिए हैं, वे कानून मूलतः १९१२ के भारतीय कानून पर ही आश्रित हैं, प्रान्तीय सरकारों ने केवल अपनी सुविधा के लिए कहीं-कहीं संशोधन कर लिए हैं। १९१९ के शासन विधान के अनुसार सहकारिता प्रान्तीय विषय हो गया। अतएव प्रान्तों ने अपने पृथक् कानून बना लिए।

हाँ, कुछ प्रान्तों में इस बात का अवश्य प्रयत्न हुआ है कि रजिस्ट्रारों के अधिकार और शक्ति जो पहले ही बहुत अधिक थी, और भी बढ़ा दी जाय। इसका आन्दोलन पर बुरा असर पड़ सकता है, क्योंकि वैसे भी आन्दोलन पर सरकारी कर्मचारियों का अत्यधिक प्रभाव है, आन्दोलन एक प्रकार से सरकारी नीति के अनुसार चलाया जा रहा है।

एक्ट के अनुसार प्रत्येक प्रान्त सहकारिता आन्दोलन की देखभाल के लिए रजिस्ट्रार नियुक्त कर सकता है। रजिस्ट्रार का कार्य केवल समितियों को रजिस्टर करना ही नहीं है, वरन उनका निरीक्षण, तथा उनके आय-व्यय की जाँच करना भी है। यदि वास्तव में देखा जावे तो सहकारिता आन्दोलन का सर्वेसर्वा रजिस्ट्रार ही होता है। सहकारिता के एक प्रसिद्ध विद्वान के शब्दों में वह आंदोलन का मित्र, पथ-प्रदर्शक, तथा उपदेशक है। रजिस्ट्रार की अधीनता में डिप्टी

रजिस्ट्रार से लेकर आय-व्यय परीक्षकों तक बहुत से कर्मचारी होते हैं, जो आंदोलन की देखभाल करते रहते हैं। (धारा ३)

रजिस्ट्रार को पंचायत के भी अधिकार प्राप्त हैं। समितियों के झगड़ों को सुनकर या तो वह स्वयं निर्णय दे देता है, अथवा और किसी को नियुक्त कर देता है। जब कभी कोई समिति टूट जाती है तो रजिस्ट्रार 'लिक्वीडेटर' (हिसाब निपटाने वाला) नियुक्त कर देता है।

एक्ट के अनुसार कोई भी समिति जो अपने सदस्यों की आर्थिक उन्नति का प्रयत्न सहकारिता के सिद्धान्तों के अनुसार करने के लिये स्थापित की गई हो, रजिस्टर की जा सकती है। बड़े बड़े व्यवसायी अथवा पूँजीपति इस एक्ट की आड़ में अपने धंधों का संगठन सहकारी समितियों के रूप में न करलें, इसलिए वही सहकारी समितियाँ रजिस्टर की जा सकती हैं, जिनके सदस्य किसान, कारीगर अथवा छोटी हैसियत के आदमी हों। (धारा ४)

समितियों के सदस्यों का दायित्व परिमित भी हो सकता है, तथा अपरिमित भी। यदि समिति साख का काम करती है और उस के सदस्य समिति न होकर व्यक्ति हैं, अथवा अधिकांश सदस्य किसान हैं, तो ऐसी समिति के सदस्यों का दायित्व अपरिमित होगा। अपरिमित उत्तरदायित्व का अर्थ यह है कि प्रत्येक सदस्य केवल अपना कर्ज ही चुकाने का जिम्मेवार नहीं है, वरन् उसको समिति का सारा कर्ज चुकाना होगा। उदाहरण के लिए मान लिया जावे कि अनन्तपुर नामक गाँव में सहकारी साख समिति स्थापित की गई, जिसके सदस्यों का दायित्व अपरिमित है। कालान्तर में यदि वह साख समिति दिवालिया हो जाती है और उसकी लेनी से देनी अधिक हो जाती हैं तो उस समय समिति का कोई भी लेनदार समिति के किसी एक सदस्य से अपना सारा ऋण वसूल कर सकता है। मान लीजिए कि अनन्तपुर साख समिति के दूसरे सब सदस्य अत्यन्त निर्धन हैं, केवल दो या तीन सदस्य ऐसे हैं, जिनके पास अधिक सम्पत्ति है; तो समिति के सारे

ऋणदाता समिति का सारा कर्ज उन धनी सदस्यों से वसूल कर सकते हैं, और उन सदस्यों को अपनी सारी सम्पत्ति बेचकर भी समिति का कर्ज़ चुकाना पड़ेगा।

यदि सहकारी समिति ऐसी है जिसके सदस्य व्यक्ति भी हैं तथा अन्य समितियाँ भी हैं, या फिर समिति के सदस्य अधिकतर किसान नहीं हैं, तो उस समिति के सदस्यों का दायित्व उनके हिस्सों के मूल्य से अधिक नहीं होगा। यदि किसी सदस्य ने किसी परिमित दायित्व वाली समिति से दस रुपये का हिस्सा लिया है, और उसने अपने हिस्से का पूरा मूल्य चुका दिया है तो उसको किसी दशा में भी अधिक कुछ नहीं देना होगा। (धारा ४)

इस आशंका को दूर करने के लिये कि कहीं सहकारी समिति पर कोई व्यक्ति-विशेष अपना एकाधिपत्य न जमाले, यह नियम बना दिया गया है कि परिमित दायित्व वाली समितियों में एक सदस्य अधिक से अधिक, मूल धन के बीस प्रतिशत के हिस्से, (यदि कोई समिति चाहे तो उपनियम बनाकर इससे भी कम रक़म निश्चित कर सकती है) या एक हज़ार रुपये के हिस्से (इनमें से जो भी रक़म कम हो) खरीद सकता है। बम्बई प्रान्तीय एक्ट के अनुसार साधारण समितियों के लिये यह रकम तीन हजार रुपये, तथा गृह-निर्माण समितियों के लिये दस हजार रुपये निश्चित की गई है। किन्तु यह पाबन्दी केवल व्यक्तियों के लिये हैं, समितियों के लिये नहीं। सदस्य-समितियाँ चाहे जितने मूल्य के हिस्से खरीद सकती हैं। (धारा ५)

जिन समितियों के सदस्य केवल व्यक्ति हैं, वे तभी रजिस्टर की जा सकती हैं जब नीचे लिखी शर्तें पूरी हो (धारा ६):—

(क) समिति के कम से कम दस सदस्य हों, और उनकी आयु १८ वर्ष से कम न हो।

(ख) यदि समिति साख का काम करना चाहती है तो सदस्यों का एक ही गाँव, समीपवर्ती गांवों के समूह, अथवा एक कस्बे का

निवासी होना आवश्यक है। यदि सदस्य एक ही स्थान के निवासी नहीं हैं तो उनका एक ही जाति, पेशे, अथवा कौम का होना आवश्यक है। किन्तु रजिस्ट्रार को यह अधिकार है कि यदि वह चाहे तो ऐसी समिति को भी रजिस्टर करले, जिसमें भिन्न-भिन्न जातियों के सदस्य हों।

(ग) समिति का ध्येय अपने सदस्यों की आर्थिक स्थिति को सहकारिता द्वारा सुधारना, होना चाहिये।

जिन समितियों के सदस्य अन्य समितियाँ भी हैं, और व्यक्ति भी हैं उनके लिये ये शर्तें लागू नहीं है।

जिन समितियों में केवल व्यक्ति ही सदस्य हों, उनकी रजिस्ट्री के लिये कम से कम दस व्यक्तियों को अपने हस्ताक्षर करके प्रार्थना पत्र रजिस्ट्रार को देना चाहिये। जिन समितियों में व्यक्ति तथा समितियां दोनों ही सदस्य हों, उनकी रजिस्ट्री के लिये व्यक्तियों के तथा समितियों के प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर होने आवश्यक हैं। प्रार्थनापत्र के साथ ही समिति के उपनियमों को भी भेजना चाहिये (धारा ८)। जब रजिस्ट्रार को यह निश्चय हो जाता है कि सब कार्य नियमानुसार हुआ है तथा वह समिति को रजिस्टर कर लेता है, और उसे एक सर्टिफिकट दे देता है तब समिति अपना काम शुरू कर सकती है (धारा ६ और १०)। यदि रजिस्ट्रार किसी कारणवश समिति को रजिस्टर करने से इनकार करे तो समिति के सदस्य दो मास के अन्दर प्रान्तीय सरकार से अपील कर सकते हैं। (धारा ९)।

समिति के सदस्यों से समिति का सम्बन्ध तथा अन्य भीतरी बातों को निर्धारित करने के लिए उपनियम बनाये जाते हैं! किन्तु इन उपनियमों से समिति तथा बाहर वालों के सम्बन्ध निर्धारित नहीं होते। मानलो कि उपनियमों में कोई वस्तु उधार पर बेचने की मनाही हो और किसी बाहर वाले को कोई वस्तु साख पर देदी गई हो तो इस उपनियम के होते हुए भी समिति अपना रुपया वसूल कर सकती है।

जो समितियां परिमित दायित्व वाली होंगीं, उनके नाम के आगे 'लिमिटेड' लिखा रहेगा और रजिस्ट्रार किन्हीं दो समितियों को एक हीं नाम न रखने देगा।

समिति का सदस्य वही व्यक्ति होगा, जो या तो रजिस्टर किये जाने के समय हस्ताक्षर करनेवालों में से हो, अथवा उपनियमों के द्वारा बनाया गया हो भारतवर्ष के कुछ प्रान्तों में ऐसी समितियाँ हैं, जिनमें हिस्से होते हैं; कहीं-कहीं हिस्से नहीं भी होते, केवल प्रवेश फीस होती है।

सहकारी साख समितियों तथा अन्य प्रकार की समितियों में एक मनुष्य की एक ही 'वोट' (मत) होती है। सहकारी समितियों में हिस्सों के मूल्य के अनुपात में वोट देने का अधिकार नहीं होता। जब कोई समिति किसी दूसरी समिति की सदस्य होती है तो वह अपने किसी प्रतिनिधि को उस समिति के कार्य में भाग लेने के लिये भेजती है। (धारा १३)

भूतपूर्व सदस्य, सदस्य न रहने के दो वर्ष बाद तक सहकारी साख समिति (अपरिमित दायित्व) के ऋण के लिये उत्तरदायी होता है। वह केवल उस समय तक के लिए हुए ऋण का ही जिम्मेदार होता है, जब तक कि वह सदस्य था। (२३)

स्वर्गीय सदस्य की सम्पत्ति, अथवा उसके उत्तराधिकारी एक वर्ष तक मृत सदस्य के व्यक्तिगत ऋण को चुकाने के लिये उत्तरदायी हैं। किन्तु समिति का सम्मिलित बाहरी ऋण (जिसे अपरिमित दायित्व समितियों के सदस्यों को चुकाना होता है) मृत सदस्य की सम्पत्ति, अथवा उसके उत्तराधिकारियों से उसी दशा में वसूल किया जा सकता है, जब साधारण रूप से अदालत में मुकदमा चलाकर डिगरी करवाई जावे। बम्बई के प्रान्तीय एक्ट के अनुसार समिति का लिक्वीडेटर मृत सदस्य की रियासत से समिति के सम्मिलित ऋण का वह भाग, जो सदस्य को देना है, वसूल कर सकता है। (धारा २४)

समितियों के हिस्से स्वतन्त्रता-पूर्वक बेचे नहीं जा सकते। समिति के हिस्सों के बेचने के विषय में कुछ प्रतिबन्ध एक्ट ने लगाये हैं, और कुछ (उपनियम बनाकर) समितियाँ लगाती हैं। (धारा १४)

परिमित दायित्व वाली समितियों में यह नियम है कि कोई बाहरी मनुष्य उतने ही मूल्य के हिस्से खरीद सकता है, जितने मूल्य से अधिक के हिस्से खरीदने का किसी को अधिकार नहीं है। मानलो कि नियमानुसार कोई भी मनुष्य १०० रुपये से अधिक के हिस्से नहीं ले सकता तो कोई बाहरी मनुष्य भी सदस्यों से १०० रुपये से अधिक के हिस्से नहीं खरीद सकेगा।

अपरिमित दायित्ववाली समितियों का कोई सदस्य तब तक अपना हिस्सा दूसरे को नहीं दे सकता, जब तक उसको हिस्सा लिए हुए एक वर्ष न हो गया हो। फिर भी उसे हिस्सा समिति को, अथवा समिति के किसी सदस्य को, ही देना होगा; किसी बाहरी आदमी को वह हिस्सा नहीं बेच सकता। (धारा १४)

रजिस्टर्ड समितियों को अपना आय-व्यय, रजिस्ट्रार द्वारा निश्चित किये हुये ढङ्ग पर, रखना होता है। रजिस्ट्रार द्वारा मनोनीत आय-व्यय परीक्षक आय-व्यय की जाँच करता है। (धारा १८)

सहकारी समितियों को निम्नलिखित विशेष सुविधाएं प्राप्त हैं:—
यदि समिति ने किसी वर्तमान सदस्य अथवा भूतपूर्व सदस्य को बीज अथवा खाद उधार दिया है, अथवा बीज और खाद मोल लेने के लिये रुपया उधार दिया है तो समिति को उस रुपये अथवा खाद और बीज के द्वारा उत्पन्न की हुई फसल से अपना रुपया वसूल करने का प्रथम अधिकार होगा। यदि वह सदस्य किसी और का भी कर्जदार है तो वह लेनदार उस फसल को, जो समिति के बीज या खाद से पैदा की गई है, कुर्क नहीं करवा सकता। इसी प्रकार यदि समिति ने सदस्यों को बैल, चारा, खेती-बारी तथा उद्योग धन्धों में काम आनेवाले यंत्र, और उद्योग-धन्धों के लिये कच्चा माल उधार दिया है,

अथवा इन वस्तुओं को खरीदने के लिये रुपया उधार दिया है तो इन वस्तुओं पर, तथा इस कच्चे माल के द्वारा तैयार किये हुए पक्के माल पर, समिति का प्रथम अधिकार होगा। किन्तु कलकत्ता हाईकोर्ट ने एक मुकदमे में यह रूलिंग (निर्णय) दे दी कि जब तक समिति अदालत से डिगरी न करा ले तब तक वह दूसरे लेनदारों को डिगरी कराने से नहीं रोक सकती। इस रूलिंग के कारण सहकारिता आन्दोलन में कार्य करनेवालों को यह अनुभव होने लगा कि एक्ट में इस नियम सम्बन्धी सुधार होना चाहिये। बम्बई प्रान्तीय एक्ट में संशोधन कर दिया गया है। उन प्रान्त में समिति को केवल ऊपर लिखी वस्तुओं के वास्ते दिए हुए ऋण पर ही प्रथम अधिकार नहीं होता, वरन् सब प्रकार की चीजों के वास्ते दिए हुये ऋण पर अधिकार होता है। किंतु यह प्रथम अधिकार सरकारी मालगुजारी, जमींदार की लगान, तथा किसी ऐसे लेनदार के अधिकार को नष्ट नहीं करता, जिसने यह न जानते हुए कि इस वस्तु पर समिति का अधिकार है, उसको खरीद लिया हो। (धारा १९)।

कोई लेनदार अपने ऋण के लिये समिति के सदस्य का हिस्सा कुर्क नहीं करवा सकता। समिति को किसी वर्तमान अथवा भूतपूर्व सदस्य के जमा किये हुए रुपये तथा उसके लाभ के हिस्से को ऋण के बदले में ले लेने का अधिकार है। बाहरी लेनदार कुर्की कराकर इस रुपये को नहीं ले सकता। (धारा २० और २१)।

किसी सदस्य के मरने पर अपरिमित दायित्व वाली समिति चाहे तो मृत सदस्य के वारिस को हिस्सा दे दे अथवा उसका मूल्य चुका दे। किन्तु परिमित दायित्व वाली समिति को मृत सदस्य के उत्तराधिकारी को अवश्य ही हिस्सा देना होगा। (धारा २२)।

सहकारी समिति के लाभ पर इनकमटैक्स तथा सुपरटैक्स नहीं लिया जाता, और न सदस्यों के लाभ पर टैक्स लिया जाता है।

सहकारी समिति केवल अपने सदस्यों को ही कर्ज दे सकती है,

किन्तु रजिस्ट्रार की आज्ञा लेकर वह दूसरी समितियों को भी कर्ज दे सकती है। बिना रजिस्ट्रार की आज्ञा के अपरिमित दायित्व वाली समिति चल जायदाद (स्थावर सम्पत्ति) की जमानत पर कर्ज नहीं दे सकती। (धारा २९)।

सहकारी समितियाँ अपने उपनियमों के द्वारा निश्चित रकम से अधिक ऋण और डिपाजिट नहीं ले सकती। इसी कारण प्रत्येक समिति प्रति वर्ष अपनी साख निर्धारित करती है। सहकारी साख समितियाँ उन व्यक्तियों का रुपया जमा कर सकती हैं, जो सदस्य नहीं हैं। (धारा ३०)।

समिति निम्नलिखित स्थानों में अपना धन जमा कर सकती हैं, अथवा लगा सकती है—(१) सरकारी सेविंग बैंक में, (२) ट्रस्टी सिक्योरिटी में, (३) किसी अन्य सहकारी समिति के हिस्सों में, (४) किसी भी बैङ्क में जिसमें रुपया जमा करने की अनुमति रजिस्ट्रार ने देदी हो। (धारा ३२)।

साधारणतया समिति का लाभ तथा उसका जमा किया कोष बाँटा नहीं जा सकता, वह केवल निम्नलिखित दशाओं में बाँटा जा सकता है:—परिमित दायित्व वाली समिति में एक--चौथाई लाभ रक्षित कोष (रिजर्व फंड) में जमा करने के उपरान्त सदस्यों में बाँटा जा सकता है। इसके लिये रजिस्ट्रार की अनुमति लेनी पड़ती है। यह प्रतिबन्ध इस कारण लगाया गया है कि कहीं सदस्यों का उद्देश्य केवल अधिकाधिक लाभ प्राप्त करना ही न हो जावे। अपरिमित दायित्व वाली समितियों में लाभ प्रान्तीय सरकार की आज्ञा से ही बांटा जा सकता है। प्रांतीय सरकार साधारण अनुमति भी दे सकती है। प्रत्येक प्रान्त ने यह नियम बना दिया है कि प्रत्येक समिति जिसके व्यापार में लाभ होता है, लाभ का कुछ अंश रक्षित कोष में रखेगी। रक्षित कोष, समिति के भंग हो जाने पर भी, सदस्यों में बांटा नहीं जा सकता।

रक्षित कोष या तो समिति के व्यापार में लगाया जाता है, या रजिस्ट्रार के पास रहता है, अथवा रजिस्ट्रार की आज्ञा से और कहीं जमा कर दिया जाता है। समिति के भङ्ग हो जाने पर, उसके ऋण को चुका कर जो रुपया बचे, उसका उपयोग समिति के निर्णय के अनुसार होगा। यदि समिति इसका निर्णय न कर सके तो रजिस्ट्रार, जिस प्रकार उस धन का उपयोग करना चाहे, कर सकता है। कुछ प्रान्तों में यह नियम है कि यदि समिति किसी अन्य सहकारी संस्था की सदस्य हो तो रक्षित कोष का बचा हुआ रुपया उसको दे दिया जावे।

प्रत्येक समिति, चौथाई लाभ रक्षित कोष में रखने के उपरान्त, लाभ का १० प्रति शत भाग दान तथा आगे लिखे सार्वजनिक कार्यों में व्यय कर सकती है:—निर्धनों को सहायता, सार्वजनिक शिक्षा (गांवों तथा उन स्थानों में जहाँ समितियाँ हैं), औषधि मुफ्त बँटवाने का प्रबन्ध, आदि। कोरी धार्मिक पूजा अथवा धार्मिक शिक्षा में वह रुपया व्यय नहीं किया जा सकता। (धारा ३४)।

यदि जिलाधीश जाँच के लिये प्रार्थना करे, पंचायत प्रार्थना-पत्र भेजकर जाँच करवाना चाहे, अथवा समिति के एक-तिहाई सदस्य जांच करवाना चाहें तो रजिस्ट्रार को स्वयं या अपने किसी अधीन कर्मचारी से जांच करवानी होगी। वैसे रजिस्ट्रार को अधिकार है कि वह जब चाहे समिति की जांच कर सकता है। (धारा ३५)।

समिति के किसी भी लेनदार को यह अधिकार है कि वह समिति के हिसाब की, रजिस्ट्रार अथवा उसके द्वारा नियुक्त किसी कर्मचारी से, जांच करवावे। किन्तु लेनदार को जांच करने का व्यय देना होगा और उतना रुपया उसको पहिले जमा करना पड़ेगा। (धारा ३६)

निम्नलिखित दशाओं में समिति भंग हो जाती है:—(१) यदि किसी लेनदार की प्रार्थना पर रजिस्ट्रार ने जांच कारवाई हो और उससे यह प्रतीत हो कि समिति को भंग कर देना चाहिये, तो वह भंग कर

सकता है। (२) यदि समिति के तीन-चौथाई सदस्य समिति को भंग कर देने की प्रार्थना करें तो रजिस्ट्रार समिति को भंग कर सकता है। भंग करने की आज्ञा के विरुद्ध कोई भी सदस्य प्रान्तीय सरकार से प्रार्थना कर सकता है। किन्तु भंग होने के दो मास के उपरान्त अपील नहीं सुनी जाती। (धारा ३६) (३) यदि समिति के सदस्यों की संख्या १० से कम हो जावे तो समिति स्वत: ही भंग हो जाती है। (धारा ४०)

जब समिति भंग हो जाती है, तब रजिस्ट्रार एक 'लिक्वीडेटर' नियुक्त करता है, जो उसका शेष कार्य करता है। लिक्वीडेटर का यह कर्त्तव्य होता है कि वह समिति की सम्पत्ति तथा देनी का हिसाब बनावे; जिन लोगों पर समिति का रुपया बाकी है, उनसे वसूल करे; जिनकी समिति ऋणी है, उनका ऋण चुकावे; तथा सदस्यों के दायित्व का निश्चय करे, और उनसे रुपया वसूल करे। (धारा ४१ और ४२)

प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार है कि वे सहकारी समितियों तथा उनके सदस्यों के झगड़ों को निपटाने के लिये कुछ नियम बना दें। सभी प्रांतों ने इसके वास्ते नियम बना लिया है। सहकारी समितियों के लिये वह नियम अत्यन्त आवश्यक हैं। इन समितियों का उद्देश्य निर्धन मनुष्यों की आर्थिक अवस्था का सुधार करना, उनमें स्वावलम्बन का भाव जागृत करना, तथा उन्हें मितव्ययिता का पाठ पढ़ाना है। यह उद्देश्य तब तक पूरा नहीं हो सकता, जब तक ये लोग मुकदमेबाजी में व्यय करते रहें।

निम्नलिखित झगड़ों का निपटारा रजिस्ट्रार स्वयं कर सकता है या वह इनके लिए या तीन पंच नियुक्त कर सकता है:—(१) जिनसे समिति के व्यापार का सम्बन्ध है। (२) जिनमें सदस्यों का आपस में किसी बात पर झगड़ा हो, भूतपूर्व सदस्यों में कोई झगड़ा हो, अथवा

समिति के पंचों में कोई झगड़ा हो। अन्य झगड़ों के लिए साधारण अदालतों में जाना होगा।

प्रत्येक पेशी के लिए दोनों पक्ष को उचित नोटिस दिया जाता है। रजिस्ट्रार अथवा पंचों को शपथ दिलाने, वादी प्रतिवादी और गवाहों को उपस्थित होने के लिये आज्ञा देने, तथा कागजों को मंगवाने का अधिकार है। यदि एक पक्ष उपस्थित हो तो भी फैसला किया जा सकता है। गवाही के लिये गवाह के उपस्थित न होने पर उसके विरुद्ध कार्यवाही की जा सकती है। रजिस्ट्रार तथा पंच 'ऐवीडेन्स एक्ट' (गवाही कानून) के नियमों को मानने के लिये बाध्य नहीं हैं।

यद्यपि राजिस्ट्रार तथा पंचों पर कानूनी बंधन लागू नहीं हैं, उन्हें यह प्रयत्न करना चाहिये कि वे दोनों पक्ष की बात एकदूसरे के सामने भली भांति सुनें। यदि झगड़े के विषय में निजी तौर से ज्ञात हुआ हो तो उसका विचार न करें। रजिस्ट्रार को तथा पंचों को यह अधिकार है कि केवल कानून को नहीं, वस्तुस्थिति को भी देखें। फैसला लिखित होना चाहिये; उसपर स्टाम्प नहीं होता। वकीलों का इन मुकदमे में आज्ञा मिलने पर ही आना हो सकता हैं। बम्बई में वकील, इन मुकदमों में किसी दशा में भी नहीं आ सकते।

यदि रजिस्ट्रार ने कोई पंच नियुक्त किया हो तो पंच के फैसले के विरुद्ध, रजिस्ट्रार से अपील की जा सकती है। रजिस्ट्रार के फैसले के विरुद्ध अपील नहीं होती; हाँ, बम्बई में अपील प्रान्तीय सरकार में हो सकती है। रजिस्ट्रार के फैसले ठीक उसी तरह लागू होते हैं, जिस तरह कि अदालत के। (धारा ४३)। रजिस्ट्रार की आज्ञा के विरुद्ध दो अवस्थाओं में प्रान्तीय सरकार में अपील की जा सकती है:—(१) जब वह किसी समिति को रजिस्टर करने से इनकार करे; (२) जब वह किसी समिति को भंग कर दे। अपील आज्ञा से दो महीने तक हो सकती है।

भारतवर्ष में सहकारिता का आन्दोलन प्रसार—आगे दिए हुए अंकों से समस्त भारतवर्ष में की सब प्रकार की सहकारी समितियों

की स्थिति का अनुमान किया जा सकता है। सन् १६१० से १६१५ तक पाँच वर्ष के औसत अंक इस प्रकार थे—समितियाँ १२ हजार, उनके सदस्य साढ़े पाँच लाख, और उनकी कार्यशील पूंजी साढ़े पाँच करोड़ रुपये। संख्याएँ धीरे-धीरे बढ़ती गयीं। सन् १६३० से १६३५ के औसत अंक क्रमशः १०६ हजार, ४३ लाख, और ६५ करोड़ थे। सन् १६३६–४२ में समितियां १३७ हजार, उनके सदस्य ६१ लाख, और कार्यशील पूंजी १०७ करोड़ रुपये थी।

आन्दोलन का सिंहावलोकन—सहकारिता आन्दोलन को यहाँ स्थापित हुए ४४ वर्ष हो गए। इसके जन्म (सन् १६०४) से १६१५ तक इसका 'प्रारम्भिक प्रयास और आयोजन काल' था। सन् १६१५ में आन्दोलन की जाँच के लिए मेकलेगन कमेटी बैठाई गयी। उसकी सिफारिशों का आन्दोलन पर बहुत प्रभाव पड़ा। १६१६ में सहकारिता हस्तान्तरित विषय हो गया और मंत्रियों ने उसको प्रोत्साहन दिया। अस्तु, १६१५ से १६२६ तक का काल सहकारिता आन्दोलन की उन्नति और शीघ्र गति से फैलने का समय है। आन्दोलन प्रत्येक प्रान्त में तेजी से बढ़ा। इसको हम 'योजना रहित प्रसार का काल' कह सकते कह सकते हैं। इसके उपरान्त अर्थात् १६२६—३० के बाद भारतवर्ष में घोर आर्थिक मंदी प्रगट हुई, खेती की पैदावार का मूल्य बेहद गिर गया। फल यह हुआ कि भूमि का मूल्य भी घट गया। इस आर्थिक मंदी के परिणाम-स्वरूप समस्त देश में सहकारिता आंदोलन को गहरा धक्का लगा। सभी प्रान्तों में आन्दोलन के पुनर्निर्माण और सुधार के प्रयत्न आरम्भ हुए। इस काल को हम 'अवनति और पुनर्निर्माण का काल' कह सकते हैं। १६३६ के उपरान्त कुछ सुधार हुआ। परन्तु कुछ प्रान्तों (बंगाल, बिहार, उड़ीसा और बरार) में आन्दोलन की स्थिति इतनी खराब हो गयी थी कि वह खेती की पैदावार के मूल्य में वृद्धि होने पर भी नहीं सुधरी। कार्यकर्त्ताओं ने प्रान्तीय सरकारों की सहायता से आन्दोलन को बचाने का प्रयत्न किया।

१९४० से सहकारिता आन्दोलन पर युद्ध का प्रभाव पड़ने लगा। युद्ध के लिये आवश्यक वस्तुएँ तैयार कराने तथा उन्हें सरकार के हाथ बेचने के उद्देश्य से सभी प्रान्तों में गृह-उद्योग धन्धों को संगठित किया गया। दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं का मूल्य अत्यधिक बढ़ जाने और उनके मिलने में कठिनाई होने से देश में उपभोक्ता-स्टोरों की एक बाढ़ सी आ गई। अन्य सहकारी समितियों की ओर कार्यकर्ताओं का ध्यान ही नहीं रहा। अब युद्ध समाप्त हो गया है। सहकारिता आन्दोलन में फिर नवीन परिवर्तन होगा। सम्भव है, युद्ध-जनित गृह-उद्योग-धन्धे और स्टोर लुप्त हो जायँ। फिर भी देश के आर्थिक निर्माण में सहकारिता आन्दोलन का विशेष भाग रहेगा, इसमें संदेह नहीं।

मल्टी-यूनिट कोआपरेटिव सोसायटीज एक्ट १९४२— २ मार्च १९४२ को भारत सरकार ने सहकारी समितियों के सम्बन्ध में एक एक्ट पास किया, जिसका सम्बन्ध उन सहकारी समितियों से है, जिनका कार्यक्षेत्र जिस प्रान्त में वे रजिस्टर की गई हैं, उनसे बाहर भी है, जैसे सहकारी बीमा समिति, रेल अथवा तार विभाग के कर्मचारियों के लिए स्थापित सहकारी समिति, कोई अन्य समिति जिसके सदस्य प्रान्तों में भी हों, अथवा जिसकी शाखा दूसरे प्रान्तों में हो।

सहकारी समितियाँ प्रान्तीय विषय है। परन्तु यदि कोई सहकारी समिति अपने प्रान्त की सीमा के बाहर भी काम करे तो वह 'कारपोरेशन' मानी जावेगी। कारपोरेशन केन्द्रीय विषय है। १९४२ के एक्ट की मुख्य धारा इस प्रकार है :—यदि कोई सहकारी समिति जिसके सम्बन्ध में यह एक्ट लागू होता है, किसी प्रान्त में रजिस्टर हो चुकी है और उसका कार्यक्षेत्र किसी दूसरे प्रान्त में भी है तो वह उस प्रान्त में भी रजिस्टर समझी जावेगी और उसके सम्बन्ध में वे ही सारे नियम (रजिस्ट्रेशन, निरीक्षण और दिवालिया होने के) लागू होंगे, जो उस प्रान्त में प्रचलित हैं, जहाँ कि वह समिति रजिस्टर

हुई है। जो समिति इस एक्ट के बनने के बाद रजिस्टर हो, उनके सम्बन्ध में भी जिस प्रान्त में रजिस्टर होगी उस प्रान्त के ही सारे नियम लागू होंगे। लेकिन वह जिन दूसरे प्रान्तों में काय करेगी, वहाँ भी रजिस्टर समझी जावेगी। इस एक्ट के अनुसार केन्द्रीय सरकार इस प्रकार की समितियों का एक केन्द्रीय रजिस्ट्रार नियुक्त कर सकती है। उसकी नियुक्ति होने पर इन समितियों का रजिस्ट्रेशन, नियंत्रण इत्यादि सब उसके अधिकार में होगा; प्रान्तीय रजिस्ट्रारों का इन समितियों से कोई वास्ता न होगा।

पाँचवाँ परिच्छेद

कृषि सहकारी साख समितियाँ

पहले कहा जा चुका है कि भारतीय कृषक की निर्धनता, उसका अशिक्षित होना, तथा महाजन का भयंकर ऋण उसको महाजन का क्रीत दास बना देता है। इसीलिए भारत सरकार ने सहकारी साख समितियों की स्थापना करवाई। इन समितियों के सदस्य वे ही हो सकते हैं, जो खेतीबारी में लगे हों तथा एक ही गाँव में रहते हों। प्रत्येक गाँव के निवासी एक दूसरे की आर्थिक स्थिति से भली भांति परिचित होते हैं तथा एक दूसरे के चरित्र के विषय में भी जानकारी रखते हैं। रैफीसन सहकारी साख समितियाँ अपरिमित दायित्व वाली होती हैं, इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि सदस्य एक दूसरे के चरित्र तथा आर्थिक स्थिति से भली भाँति परिचित हों। अपरिमित दायित्व के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक सदस्य समिति के ऋण को सामूहिक रूप से चुकाने के लिये बाध्य है। सहकारी साख समिति का प्रत्येक सदस्य दूसरे सदस्य के कार्यों का उत्तरदायी बन जाता है। यही कारण है कि नवीन सदस्य तभी समिति में लिया जा सकता है, जब दूसरे सब सदस्य उसको सदस्य बनाने के पक्ष में हों।

एक गाँव में एक ही समिति—प्रायः एक गाँव में एक ही साख समिति स्थापित की जाती है। यदि गाँव बहुत बड़ा हो, जिसके कारण एक समिति सब वर्गों के लिए उपयोगी न हो सके, तो भिन्न-भिन्न जातियों, तथा भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बियों की पृथक्-पृथक् समितियाँ स्थापित की जा सकती हैं। किन्तु सहकारिता आन्दोलन में कार्य करने-

वाले सरकारी तथा गैर-सरकारी कार्यकर्त्ता इस प्रकार की समितियों को प्रोत्साहन नहीं देते। सेन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी की सम्मति में किसी जाति, पेशे, तथा धर्मावलम्बियों की अलग साख समितियाँ स्थापित करना उचित नहीं है। गांव में जितने भी मनुष्य हों, उन सब की एक ही समिति होना आवश्यक है। ऐसी साख समिति गाँव के प्रत्येक मनुष्य को एक आर्थिक सूत्र में बांध कर उनमें प्रेम भाव उत्पन्न करती है।

प्रबन्धकारिणी सभा के कार्य—समिति का प्रबन्ध करने का अधिकार साधारण सभा तथा प्रबंधकारिणी सभा अर्थात् पंचायत को होता है। साधारण सभा सब महत्वपूर्ण प्रश्नों पर अपना स्पष्ट मत देती है; और पंचायत साधारण सभा की आज्ञाओं का पालन करती है। असल में साधारण सभा केवल नीति निर्धारित करती है, और पंचायत सब कार्य करती है; ये कार्य निम्नलिखित हैं :—

(१) वह सदस्यों को हिस्से देती है तथा उनको समिति का सदस्य बनाती है।

(२) वह गाँव से डिपाज़िट लेने का प्रयत्न करती है, तथा सेन्ट्रल बैंक से ऋण लेने का प्रबन्ध करती है। उसका सब से महत्वपूर्ण कार्य यह है कि वह सदस्यों में मितव्ययिता का प्रचार करे, और उन्हें तथा अन्य ग्राम-निवासियों को समिति में रुपया जमा करने के लिए प्रोत्साहित करे।

(३) जब आवश्यकता हो, वह साधारण सभा का आयोजन करती है।

(४) वह यह निश्चय करती है कि किन सदस्यों को कितने समय के लिए रुपया दिया जावे। साथ ही वह उस अवधि के अन्त में ऋण के रुपये को वसूल करती है।

(५) वह समिति के आय-व्यय का हिसाब रखती है।

(६) वह रजिस्ट्रार से समिति संबन्धी कार्यों की लिखापढ़ी करती है।

(७) वह उन सदस्यों के लिए, जो सम्मिलित रूप से आवश्यक वस्तुओं को खरीदना चाहते हैं तथा खेत की पैदावार को बेचना चाहते हैं, दलाल का काम करती है।

(८) वह सरपंच तथा मंत्री का निर्वाचन करती है। सरपंच समिति के सारे कार्य की देखभाल रखता है तथा मन्त्री समिति का हिसाब रखता है।

(९) वह प्रवेश-फीस, हिस्सों का मूल्य, डिपाज़िट तथा ऋण के द्वारा कार्यशील पूंजी उगाहती है। समिति का रक्षित कोष भी समिति की कार्यशील पूंजी को बढ़ाता है। प्रवेश-फ़ीस नाममात्र की होती है और उस प्रारम्भिक व्यय के लिए ली जाती है, जो समिति की स्थापना के समय करना पड़ता है।

हिस्स वाली और गैर-हिस्से वाली समितियाँ - कुछ प्रान्तों में सदस्यों को हिस्से खरीदने पड़ते हैं और कुछ प्रान्तों में हिस्से नहीं होते। पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा मदरास में समितियाँ हिस्से वाली होती हैं। अन्य प्रांतों में हिस्सेवाली और गैर-हिंस्सेवाली, दोनों ही तरह की समितियाँ हैं। भारतवर्ष में सहकारी साख समितियाँ कैसी होनी चाहिये, यह विचारणीय विषय है। कुछ विद्वानों का मत है कि समितियां हिस्से वाली होनी चाहिये, क्योंकि हिस्सों को बेचकर थोड़ी कार्यशील पूँजी इकट्ठी कर ली जाती है। समिति अपनी पूँजी सदस्यों को ऋण स्वरूप देकर उस पर लाभ उठाती है और अप्रत्यक्ष रूप से रक्षित कोष की वृद्धि होती है। सदस्य समिति के कार्यों में विशेष चाव से भाग लेने लगते हैं, क्योंकि वे उसे अपनी वस्तु समझते हैं। यह सब ठीक है, किन्तु भारतवर्ष में गाँवों में रहने वाले इतने निर्धन हैं कि किसी प्रकार भी हिस्से का मूल्य नहीं चुका सकते। ऐसी अवस्था में यदि हिस्से वाली समितियाँ स्थापित की जावें तो वे ईमानदार तथा

परिश्रमी किसान, जो निर्धन हैं, सदस्य नहीं बन सकते। लेखक के विचार से गैर-हिस्सेवाली समितियाँ ही उपयुक्त हैं। सदस्यों को सहकारिता के सिद्धान्तों की भली भाँति शिक्षा दी जावे तो वे समिति के कार्य में अधिक भाग लेने लगेंगे और उनमें मितव्ययिता के भाव जाग्रत हो सकेंगे। किसी को सदस्य बनाते समय यह भी बतलाया जाना चाहिए कि साख समिति केवल ऋण देने के ही लिये नहीं है, सदस्यों को उसमें रुपया भी जमा करना चाहिये।

डिपाजिट—साख समिति का कोई सदस्य एक निश्चित रकम से अधिक के हिस्से नहीं खरीद सकता। प्रत्येक सदस्य को केवल एक 'वोट' देने का अधिकार होता है। प्रवेश-फीस तथा हिस्सों के मूल्य से समिति के पास नाममात्र की पूँजी इकट्ठी होती है। इसलिये समितियाँ अधिकतर ऋण और डिपाजिट के द्वारा अपना काम चलाया करती हैं। कोई समिति जितनी अधिक डिपाजिट आकर्षित करे, उतनी ही उसकी सफलता समझनी चाहियेः क्योंकि डिपाजिट तभी अधिक जमा होंगी, जब जनता को समिति का भरोसा होगा, और उसकी आर्थिक स्थिति में विश्वास होगा। जब तक साख समितियाँ डिपाजिट आकर्षित करके अपनी आवश्यकता के अनुसार पूँजी जमा नहीं कर सकतीं, उनको निर्बल ही समझना चाहिये। जमा करने से ग्रामीण जनता तथा सदस्यों में मितव्ययिता का भाव जाग्रत होता है।

भारतवर्ष में अभी तक बम्बई प्रान्त को छोड़ और किसी प्रांत में समितियाँ डिपाजिट आकर्षित नहीं कर पाईं। साख समितियाँ गैर-सदस्यों से भी डिपाजिट लेती हैं, किन्तु सेन्ट्रल बैङ्किङ्ग इनक्वायरी कमेटी का यह मत है कि सहकारी साख समितियों को अधिक सूद देकर डिपाजिट आकर्षित न करना चाहिये, क्योंकि यदि समितियाँ डिपाजिट पर अधिक सूद देंगी तो गाँवों में सूद की दर नहीं घट सकेगी, जिसकी अत्यन्त आवश्यकता है। जब तक सेन्ट्रल बैंक सुसंगठित न हों और जब तक वे समितियों को आवश्यकता से अधिक

पूँजी का उचित उपयोग करने के योग्य न हो जावें तथा आवश्यकता पड़ने पर समितियों को शीघ्र ही पूँजी देने की योग्यता प्राप्त न करलें, तब तक गैर-सदस्यों से डिपाजिट लेना जोखिम का काम है, क्योंकि तनिक भी सन्देह हो जाने पर गैर-सदस्य अपना रुपया लेने को दौड़ पड़ेंगे।

मंत्री—समिति के पंचों को कोई वेतन नहीं दिया जाता, केवल मन्त्री को थोड़ा-सा वेतन दिया जाता है। यदि मंत्री उसी गाँव का रहनेवाला हो तो अच्छा है, क्योंकि वह सदस्यों से भली भाँति परिचित होगा। परन्तु पटवारी को किसी भी अवस्था में मन्त्री न बनाना चाहिए, क्योंकि उसका गांव में बहुत प्रभाव होता है, सम्भव है कि वह पंचायत के अनुशासन में न रहे, और सदस्य उसे दबाते रहें। यदि गांव कीसमिति में कोई शिक्षित सदस्य हो तो उसे मंत्री बनाया जाना चाहिए; यदि कोई सदस्य शिक्षित न हो तो गांव के शिक्षक को मंत्री बनाना चाहिए।

रक्षित कोष—सहकारी साख समितियों की स्थापना लाभ की दृष्टि से नहीं की जाती, इसलिए अपरिमित उत्तरदायित्व वाली समितियों में तो लाभ बाँटा ही नहीं जाता, और यदि बांटा भी जाता है तो प्रान्तीय सरकार की आज्ञा लेकर। परिमित दायित्व वाली समितियाँ लाभ बांट सकती हैं, परन्तु उनको भी यथेष्ट धन रक्षित कोष में जमा करना पड़ता है।

सहकारी साख समितियों का प्रबंध-व्यय बहुत कम होने के कारण, तथा लाभ न बांटने के कारण, रक्षित कोष यथेष्ट जमा हो जाता है। प्रत्येक साख समिति के लिए रक्षित कोष अत्यन्त आवश्यक है। जब तक समिति के पास यथेष्ट कोष न हो जावे, तब तक वह सबल नहीं बन सकती। रक्षित कोष किसी भी अवस्था में बाँटा नहीं जा सकता; उसका उपयोग समिति के कार्य में हानि होने पर उसे पूरा करने में होता है; यदि किसी देनदार से रुपया वसूल न हो अथवा किसी वस्तु के बेचने में हानि हो तो रक्षित कोष से पूरा किया जाता है। यदि समिति भंग

हो जावे तो रक्षित कोष या तो किसी अन्य सहकारी समिति को दिया जावेगा या रजिस्ट्रार की अनुमति से किसी सार्वजनिक कार्य में व्यय किया जावेगा। परिमित दायित्व वाली समितियाँ अपने रक्षित कोष को अपने व्यापार में न लगाकर, बाहर किसी बैंक में रखती हैं, किन्तु ऐसा वे ही समितियाँ करती हैं जो गैर-सदस्यों का रुपया भी जमा करती है। अपरिमित दायित्व वाली समितियाँ रक्षित कोष के धन को अपने निजी कार्य में लगाती हैं; बाहर जमा नहीं करतीं।

परिमित और अपरिमित दायित्व—पहले कहा जा चुका है कि कृषि सहकारी साख समितियाँ अपरिमित दायित्व वाली होती हैं और नगर सहकारी साख समितियाँ, तथा जिन समितियों के अधिकतर सदस्य किसान नहीं होते, वे परिमित या अपरिमित किसी भी प्रकार का दायित्व स्वीकार कर सकती हैं। किन्तु जिन सहकारी समितियों की सदस्य अन्य समितियाँ हों, उनका दायित्व परिमित ही होगा। ऐसी समितियाँ प्रान्तीय सरकार से आज्ञा लेकर ही अपरिमित दायित्व वाली बन सकती हैं। भारतवर्ष में सब सेन्ट्रल बैंक, बैङ्किंग यूनियन, तथा अधिकतर नगर सहकारी तथा वैसी साख समितियाँ, जिनमें अधिकतर सदस्य किसान नहीं होते, परिमित दायित्व वाली होती हैं। किसानों की साख समितियाँ अपरिमित दायित्व वाली होती हैं।

यदि किसी समिति को हानि हो जावे तो सर्वप्रथम उस सदस्य से रुपया वसूल किया जावेगा, जिसने ऋण लिया है। यदि उससे वसूल न हुआ तो ज़मानत देनेवाले से वसूल किया जावेगा। यदि उससे वसूल न हुआ तो रक्षित कोष से हानि भर दी जावेगी। यदि उससे भी हानि पूरी न हुई तो समिति की पूँजी का उपयोग किया जावेगा। यदि समिति की पूँजी देकर भी हानि पूरी न हो सके तो समिति के सदस्यों को समिति के देनदारों का रुपया चुकाना होगा। प्रत्येक सदस्य को कितना रुपया देना होगा, इसका हिसाब लिक्वीडेटर लगाएगा। व्यावहारिक दृष्टि से, अपरिमित दायित्व का यही अर्थ निकलता है, किन्तु

सिद्धान्त से प्रत्येक सदस्य व्यक्तिगत रूप से सारे ऋण को चुकाने को बाध्य है, यह उसी दशा में हो सकता है कि जब और सदस्यों से रुपया वसूल न हो सके।

समिति की साख—साधारण सभा अपनी मीटिंग में समिति की साख निर्धारित करती है, पंचायत उससे अधिक ऋण नहीं ले सकती। समिति की साख को निर्धारित करने के लिये यह आवश्यक है कि समिति के सदस्यों की सम्पत्ति का हिसाब लगाया जावे। भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में समिति के सब सदस्यों की सम्पत्ति की चौथाई से आधी तक साख निर्धारित की जाती है। समिति एक हैसियत-रजिस्टर रखती है, जिसमें प्रत्येक सदस्य की हैसियत का लेखा रहता है। हैसियत-रजिस्टर का प्रति वर्ष संशोधन होता है और प्रत्येक सदस्य को हैसियत का यथार्थ लेखा रखने का प्रयत्न किया जाता है।

सदस्यों का ऋण—यह भी निश्चित कर दिया जाता है कि प्रत्येक सदस्य अधिक से अधिक कितना उधार ले सकता है। किसी भी अवस्था में सदस्य की सम्पत्ति का ५० प्रतिशत से अधिक उधार नहीं दिया जा सकता। रुपया उधार देते समय, पंचायत कर्ज़ लेने का उद्देश्य तथा सदस्य की चुकाने की शक्ति का अनुमान लगाती है, तभी कर्ज देना निश्चय करती है। सहकारिता आन्दोलन का सिद्धान्त है कि ऋण अनुत्पादक या व्यर्थ के कार्यों के लिये न दिया जावे। किंतु भारतवर्ष में सहकारी साख समितियाँ विवाह, श्राद्ध, तथा अन्य सामाजिक कार्यों के लिये भी उधार देती हैं। पंचायत का यह मुख्य कर्तव्य है कि वह इस बात की जांच करे कि सदस्य कर्ज किस कार्य के लिये ले रहा है। साथ ही उसे इस बात का भी पता लगाना चाहिए कि सदस्य ने धन उसी कार्य में व्यय किया है, अथवा किसी अन्य कार्य में। यदि सदस्य ने किसी अन्य काम में रुपया लगाया है तो पंचायत को रुपया वापिस ले लेना चाहिए।

सहकारी साख समिति के सदस्यों को एक-दूसरे पर दृष्टि रखनी

चाहिये कि वे धन का दुरुपयोग तो नहीं करते; समय पर कर्ज चुकाते हैं, अथवा किस्तों को टालने का प्रयत्न करते हैं; पंचायत ऋण देते समय ही सदस्यों की स्थिति को दृष्टि में रखते हुए किस्तें बाँध देती है; उसका यह मुख्य कर्तव्य है कि वह देखे कि सदस्य समय पर किस्तें चुकाता है। यदि किसी अनिवार्य कारण वश सदस्य किस्त न चुका सके (जैसे फसल नष्ट हो जाने पर) तो उस की मियाद बढ़ा देना चाहिए।

समितियाँ अधिकतर नीचे लिखे कार्यों के लिये ऋण देती हैं:—(१) खेतीबारी के लिये, मालगुजारी तथा लगान देने के लिये। (२) भूमि का सुधार करने के लिये। (३) पुराने ऋण को चुकाने के लिये। (४) गृहस्थी के कार्यों के लिये (५) व्यापार के लिये। (६) भूमि खरीदने के लिये। यह कहना अत्यन्त कठिन है कि किन कार्यों के लिये कितना रुपया लिया जाता है। बहुधा सदस्य प्रार्थनापत्र में तो खेतीबारी के लिये रुपया लेने की बात लिखता है, परन्तु उस रुपये को व्यय करता है किसी सामाजिक कार्य पर। समितियों ने अभी तक इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है।

समय की दृष्टि से ऋण दो प्रकार के होते हैं, अर्थात् थोड़े समय के लिये तथा अधिक समय के लिये। जो ऋण थोड़े समय के लिये लिया जाता है, उसका उपयोग खेतीबारी के धंधे में (अर्थात् बीज, खाद, बैल आदि वस्तुओं के खरीदने में) तथा अन्य आवश्यक खर्चों में होता है। अधिक समय के लिये लिया हुआ ऋण भूमि खरीदने, कीमती यन्त्र लेने तथा पुराना कर्ज चुकाने के काम आता है। प्रान्तीय बैंकिंग इनक्वायरी कमेटियों की सम्मति है कि कृषि सहकारी साख समितियाँ अपने सदस्यों को तीन वर्ष से अधिक के लिए ऋण नहीं दे सकतीं; सहकारिता अन्दोलन में कार्य करनेवालों की भी यही धारणा है। लम्बे समय के लिये ऋण देने का कार्य सहकारी भूमि-बंधक बेङ्क ही कर सकते हैं।

सहकारी कृषि साख समिति की सफलता के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि सदस्य सहकारिता के सिद्धान्तों को समझें। इसलिए समिति का संगठन करते समय, उन्हें सहकारिता के सिद्धान्तों की शिक्षा देनी चाहिये। ग्रामीण सदस्य यही समझते हैं कि सहकारी साख समितियाँ सरकार द्वारा खोले हुये बैंक हैं; जो हम लोगों को ऋण देते हैं। वे कभी स्वप्न में भी यह नहीं सोचते कि समिति हमारी ही है और हम अपरिमित दायित्व के द्वारा उचित सूद पर पूँजी पा सकते हैं। जब तक सदस्यों में स्वावलंबन का भाव जाग्रत नहीं होता, तब तक सहकारिता आन्दोलन सफल नहीं हो सकता।

आय-व्यय-निरीक्षण—समितियों का आय-व्यय-निरीक्षण रजिस्ट्रार की अधीनता में होता है। रजिस्ट्रार सहकारी विभाग के आय-व्यय निरीक्षकों से जांच करता है; यदि कार्य किसी गैर-सरकारी संस्था को दे दिया गया हो तो रजिस्ट्रार को उस संस्था के आडिटरों को लायसेन्स देता है, तभी वह आय-व्यय-निरीक्षण कर सकते हैं।

आडिटर इस बात की भी जांच करता है कि कितना रुपया सदस्यों पर उधार है जिसके चुकाने की अवधि समाप्त हो गई। वह समिति की लेनी-देनी का भी हिसाब देखता है। उसको यह भी देखना चाहिये कि समिति का कार्य सहकारिता के सिद्धान्तों के अनुसार हो रहा है, अथवा नहीं। उसे समिति की आर्थिक स्थिति की पूरी जांच करनी चाहिए। उसे देखना चाहिये कि ऋण उचित समय के लिये तथा उचित कार्यों के वास्ते दिये गये हैं; आवश्यक जमानत ली है, अथवा नहीं; और सदस्य ठीक समय पर ऋण चुकाते हैं या नहीं; कहीं ऐसा तो नहीं होता कि सदस्य ठीक समय पर ऋण न चुकाते हों, किंतु हिसाब में उनका रुपया जमा कर लिया जाता हो और उतना ही ऋण फिर दे दिया जाता हो। कहने का तात्पर्य यह है कि निरीक्षक को पूरी जाँच करनी चाहिये। भारतवर्ष में यह कार्य भली भाँति नहीं हो रहा है। सहकारिता आंदोलन में कार्य करने वालों की तथा सेन्ट्रल

बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी की राय है कि आय-व्यय निरीक्षण का कार्य अत्यन्त त्रुटि-पूर्ण है।

प्रत्येक प्रांत में आय-व्यय निरीक्षण का कार्य रजिस्ट्रार की देखरेख में तो होता है परन्तु इस कार्य को भिन्न-भिन्न संस्थाएँ कर रही हैं। पंजाब में प्रांतीय सहकारी इंस्टिट्यूट के कर्मचारी, बिहार उड़ीसा में प्रांतीय फेडेरेशन के कर्मचारी, तथा कुछ प्रांतों में रजिस्ट्रार के कर्मचारी यह कार्य करते हैं। कुछ स्थानों में समितियों ने इस कार्य के लिए आय-व्यय निरीक्षक यूनियन स्थापित की है।

अप्रेल सन् १९३१ में 'आल इण्डिया कोआपरेटिव कानफ्रेंस' का अधिवेशन हैदराबाद में हुआ था। उस सम्मेलन में समस्त भारत में आय-व्यय निरीक्षण की एक ही पद्धति चलाने का निश्चय हुआ और उसके अनुसार एक योजना भी तैयार की गई थी। उस योजना के अनुसार समितियों का निरीक्षण-कार्य सेंट्रल बैंक, तथा बैंकिंग यूनियन के हाथ में, और आय व्यय निरीक्षण प्रान्तीय संस्थाओं के हाथ में, रहना चाहिये। प्रांतीय संस्था प्रत्येक ज़िले में जिला-आडिट-यूनियन स्थापित करे। उस जिले की सहकारी समितियाँ तथा सेन्ट्रल बैंक उस आडिट यूनियन से सम्बन्धित हों, तथा सब जिला-यूनियन प्रांतीय संस्था से संबन्धित हों। प्रान्तीय इंस्टिट्यूट जिला-आडिट-यूनियन के कर्मचारियों की नियुक्ति तथा अनुशासन प्रांतीय इंस्टिट्यूट करे। प्रारंभिक सहकारी समितियों का आय-व्यय-निरीक्षण जिला आडिट-यूनियन के आडिटर करें, और सेन्ट्रल बैंक तथा प्रांतीय बैंकों का आयव्यय निरीक्षण प्रांतीय इंस्टिट्यूट के आडिटर करें।

प्रांतीय इन्स्टिट्यूट तथा जिला-आडिट-यूनियन के आडिटर वही लोग नियत किये जावें, जिन्होंने इस कार्य की शिक्षा पाई है, और जिनको रजिस्ट्रार ने लायसेंस दे दिया है। यदि कोई आडिटर इस कार्य के योग्य न हो तो रजिस्ट्रार उसका लायसेंस जब्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त, रजिस्ट्रार आडिट-यूनियन तथा प्रान्तीय इन्स्टिट्यूट

नगर बैंक तथा सेंट्रल बैंकों से आडिट-फीस वसूल करेगी, किंतु कृषि सहकारी साख समितियों का आय-व्यय निरीक्षक निश्शुल्क होना चाहिए। इस कारण प्रान्तीय सरकार प्रान्तीय इन्स्टिट्यूट को आर्थिक सहायता प्रदान करे। अभी प्रारंभिक समितियों से थोड़ी आडिट फीस ली जाती है।

समितियों की देख रेख तथा उनका नियंत्रण रजिस्ट्रार तथा प्रांतीय सहकारी संस्था दोनों ही करते हैं।

उत्तर प्रदेश की समितियाँ—उत्तर प्रदेश में १०,००० कृषि सहकारी साख समितियाँ हैं। कृषि साख समितियाँ अपने अपने सदस्यों से ८ से १२ प्रतिशत सूद लेती हैं। जिन समितियों के पास अपनी पूंजी अधिक है, वे सदस्यों को ६ से ८ प्रतिशत सूद पर ही ऋण देती हैं। किंतु ऐसी समितियों की संख्या ३००० ही है। उत्तर प्रदेश में सूद की दर ऊँची है, उसको कम करने का प्रयत्न किया जा रहा है। अब उत्तर प्रदेश में कृषि सहकारी समितियों को बहु-उद्देश्य समितियों का रूप दिया जा रहा है। ये बहु-उद्देश्य समितियाँ अथवा ग्राम-बैंक जो अभी तक केवल साख देने का काम करते थे, अब सदस्यों की पैदावार की बिक्री, खेती का सुधार तथा सदस्यों के लिए आवश्यक वस्तुएँ खरीदने का भी काम करते हैं। अभी तक इस प्रान्त में ५००० ऐसे ग्राम-बैंक अथवा बहु-उद्देश्य समितियाँ स्थापित हो चुकी हैं।

भारतवर्ष में समितियों की स्थिति—भारत में कुल कृषि साख सहकारी समितियों की संख्या १,०२,००० से ऊपर है और सदस्यों की संख्या ३८ लाख के लगभग है। उनकी पूँजी इस प्रकार है:—

हिस्सा पूँजी ...	... ४,४५,२४,००० रु०
रक्षित कोष ...	... ८,८७,३६,००० "
डिपाजिट ...	... २,८४,९०,००० "
ऋण ...	... १२६५,९८,००० "
कुल कार्यशील पूँजी ...	... २६,०९,५८,००० "

इससे यह स्पष्ट है कि इन समितियों की १६ करोड़ रुपये की अपनी पूँजी है, और १३ करोड़ रुपये की उधार ली हुई पूँजी है। उनकी अपनी पूँजी कुल कार्यशील पूँजी की ५५ प्रतिशत से अधिक है, और जैसे-जैसे समय व्यतीत होता जाता है, समितियों की निजी पूँजी बढ़ती जाती है।

इन आँकड़ों से ऐसा प्रतीत होता है कि आन्दोलन की स्थिति संतोषजनक है। किंतु असल में ऐसा नहीं है। समितियों का रक्षित कोष वास्तव में 'रक्षित' नहीं है। वह अलग न रखा जाकर बहुधा उन समितियों के कारोबार में ही लगा दिया जाता है।

भारतवर्ष में साख समितियों का एक मुख्य दोष यह भी है कि वे अधिकतर बाहरी पूँजी पर अवलम्बित रहती हैं। जैसा कि हम आगे देखेंगे, अधिकतर धनी शहरी लोगों का ही रुपया सेन्ट्रल बैंकों के द्वारा गाँवों की समितियों के पास पहुँचता है, और वही रुपया निर्धन ग्रामीणों को मिलता है।

साख समितियों की आडिट-रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि लगभग ५० प्रतिशत से अधिक ऋण ऐसा है, जिसकी अदायगी की तिथि कभी की निकल गई और सदस्यों ने उस ऋण को नहीं चुकाया। वास्तव में कहीं कहीं तो स्थिति ऐसी बिगड़ गई कि सेन्ट्रल बैंकों को कुर्क अमीन रखने पड़े, जिन्होंने साख समितियों के कुर्की की, फिर भी कर्ज का बहुत सा रुपया वसूल नहीं हो पाया। जब मूल ऋण की अदायगी की यह दशा है तब उस पर जो सूद इकट्ठा हो गया है, उसका तो कहना ही क्या। बरार आदि में जब सेन्ट्रल बैंकों ने कर्ज के एवज में सदस्यों की भूमि लेली तो उसका प्रबन्ध करना कठिन हो गया और सरकारी मालगुजारी अपने पास से देनी पड़ी। इस सब का परिणाम यह हुआ कि मध्यप्रान्त बरार, बिहार, उड़ीसा और बंगाल में आन्दोलन नितान्त शक्तिहीन और निष्प्राण हो गया। लोगों को भय होने लगा कि आन्दोलन मर जावेगा। सन् १६४० में नया कर्ज सात करोड़

रुपये से भी कम दिया गया। इसके बाद नये कर्ज और भी कम कर दिये गये। निदान, साख पहले से बहुत सीमित और मर्यादित कर दी गई।

भारतवर्ष में जब कृषि सहकारी समितियों का वार्षिक आय-व्यय निरीक्षण होता है तब निरीक्षण उनकी आर्थिक स्थिति के अनुसार उनको ए, बी, सी, और ई वर्ग में रखते हैं। 'ए' वर्ग की समितियाँ बहुत अच्छी समझी जाती हैं; 'बी' वर्ग की अच्छी; 'सी' वर्ग की साधारण; 'डी' वर्ग की बुरी, और 'ई' वर्ग की समितियाँ अत्यन्त बुरी समझी जाती हैं। 'ई' वर्ग की समितियों को दिवालिया कर दिया जाता है। रिपोर्टों से ज्ञात होता है कि समितियों में से एक बहुत बड़ी संख्या 'डी' और 'ई' वर्ग में है। बम्बई, मध्यप्रान्त, उड़ीसा और आसाम में 'डी' और 'ई' वर्ग की समितियों की संख्या ४० प्रतिशत से अधिक है, और शेष प्रान्तों में २५ प्रतिशत से अधिक इन्हीं वर्गों में है। ६ प्रांतों में १० प्रतिशत से भी कम समितियाँ 'ए' और 'बी' वर्गों में है। इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि कृषि सहकारी समितियों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। पिछले वर्षों में लगभग ६ प्रतिशत समितियाँ प्रतिवर्ष दिवालिया होती रहीं। समितियों की संख्या घटी नहीं, इसका कारण यह था कि साथ-साथ नई समितियों का भी संगठन होता रहा। सर डार्लिङ्ग के अनुसार सहकारिता आंदोलन के आरम्भ से आज तक जितनी समितियाँ स्थापित हुईं, उसकी ०४ प्रतिशत दीवालिया हो गईं।

सहकारी साख समितियों से जैसी आशा थी, वे सफल नहीं हुईं। यह तो इसी से विदित हो जाता है कि पुरानी और सफल साख समितियों के सदस्यों की संख्या बढ़ नहीं रही है। ग्रामीण समिति का सदस्य बनने के लिए कोई व्यक्ति विशेष उत्साह नहीं दिखलाता। चवालीस वर्ष के उपरान्त भी आन्दोलन निर्जीव और निस्तेज क्यों है, इसके कारण अन्तिम परिच्छेद में लिखे जावेंगे।

कुछ बातों के सम्बन्ध में सहकारिता आंदोलन के कार्यकर्ताओं में पिछले वर्षों में घोर मतभेद रहा है। जैसे कृषि सहकारी साख समिति का दायित्व अपरिमित न होकर परिमित होना चाहिए। केवल सहकारी साख समिति से ग्रामीणों की आर्थिक समस्याएँ हल न होंगी, उन्हें सब कामों में सहकारी सङ्गठन की आवश्यकता है, अतएव साख समिति के स्थान पर बहु-उद्देश्य सहकारी समिति स्थापित की जानी चाहिए, जो ग्रामीणों की अधिकांश आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा कर सके, इत्यादि। इन सब प्रश्नों पर हम सहकारिता आन्दोलन के पुनर्निर्माण वाले परिच्छेद में प्रकाश डालेंगे। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि साख आन्दोलन ऐसी स्थिति में पहुँच गया है कि यदि उसमें आवश्यक सुधार नहीं हुआ तो उसका सारा ढाँचा गिर पड़ेगा और आन्दोलन नष्ट हो जायगा।

छठा परिच्छेद

नगर सहकारी साख समितियाँ

शहरी जनता और सहकारिता आन्दोलन—शहरों की जनता आर्थिक दृष्टि से तीन भागों में बाँटी जा सकती है। (१) उत्पादन कार्यों में लगे हुए मनुष्य, (२) व्यापारी अर्थात् दलाल, और (३) उपभोक्ता। वैसे तो प्रत्येक मनुष्य उपभोक्ता है किन्तु सहकारिता के द्वारा अपनी स्थिति सुधारने का प्रयत्न केवल श्रमजीवी तथा नियमित वेतन पानेवाले मध्यम श्रेणी के मनुष्य ही करते हैं। इस कारण हम इन्हें ही उपभोक्ता वर्ग में रखते हैं। उत्पादक वर्ग में अनन्त धन-राशि के स्वामी मिल-मालिकों से लेकर छोटे से छोटे जुलाहे अथवा अन्य कारीगर—सभी आ जाते हैं। पूँजीपतियों को साख देने का कार्य सहकारी साख समितियाँ नहीं कर सकतीं। इसके लिए व्यापारिक बैङ्क मौजूद हैं। सहकारिता आन्दोलन तो केवल निर्बल तथा निर्धनों के लिए है। गृह-उद्योग-धन्धों में लगे हुए कारीगरों को सहकारी साख समितियाँ अवश्य सहायता पहुँचा सकती हैं। व्यापारी वर्ग में छोटे बड़े सभी व्यापारी आ जाते हैं। बड़े व्यापारियों के लिए व्यापारिक बैङ्क खुले हुए हैं तथा वे अधिक निर्बल नहीं हैं। अस्तु, सहकारिता आन्दोलन यदि थोड़ी बहुत सहायता कर सकता है तो केवल छोटे छोटे निर्धन व्यापारियों की।

साधारणतः उपभोक्ताओं को साख की आवश्यकता न होनी चाहिये, क्योंकि वह तो अन्तिम खरीददार होता है। वह किसी भी वस्तु को बेचने के लिए नहीं खरीदता, वह तो वस्तु का उपभोग करता है, इस कारण उसको नकद दाम ही चुकाना चाहिए। यदि वह उधार माँगता है तो इसका अर्थ है कि वह आय से अधिक व्यय कर रहा

है। ऐसी अवस्था में वह कर्ज को नहीं चुका सकेगा। अस्तु, साधारणतः उपभोक्ताओं को उधार देना जोखिम का काम है। किन्तु विशेष अवस्था में उन्हें उधार की आवश्यकता पड़ जाती है। मान लीजिये किसी मनुष्य के पास यथेष्ट सम्पत्ति अथवा धन है, पर वह धन कहीं लगा हुआ है, उस समय नहीं मिल सकता, और ठीक ऐसे समय ही उस आदमी को किसी आवश्यक कार्य के लिये रुपये की आवश्यकता है। ऐसी दशा में उसे कर्ज के सिवा कोई चारा नहीं रहता। कुछ लोग ऐसे भी हो सकते हैं! जिनके पास न तो सम्पत्ति ही है, और न उन्होंने कुछ बचाया ही है, उन्हें कर्ज की आवश्यकता पड़ती है। नौकरी छूट जाने पर तथा घर में लम्बी बीमारी हो जाने के कारण उन्हें कर्ज लेना पड़ता है। इन लोगों के पास जमानत कुछ नहीं होती। व्यापारिक बैङ्क थोड़ा ऋण नहीं देते, फिर, बिना जमानत तो वे ऋण दे ही नहीं सकते। ऐसे लोगों के लिये नगर सहकारी बैङ्क आवश्यक हैं। ये बैङ्क मजदूरी या थोड़ा वेतन पानेवालों को महाजन के पंजों से बचाते हैं। इसके अतिरिक्त, ये बैङ्क साधारण स्थिति के लोगों में मितव्ययिता का भाव जाग्रत करते हैं, और उनकी थोड़ी सी बचत को जमा करते हैं। आड़े समय पर यह बैंक निर्धन मजदूरों को सहायता पहुँचा सकते हैं। मिश्रित पूँजी वाले बैङ्क इन लोगों की समस्या को हल नहीं कर सकते।

नगर सहकारी साख समितियाँ—नगर सहकारी साख समितियाँ तीन प्रकार की होती हैं।—(१) वेतन पानेवालों की समितियाँ (२) मिल मजदूरों की समितियाँ और (३) जातीय समितियाँ। भिन्न भिन्न दफ्तरों तथा कारखानों में कार्य करनेवाले वेतनभोगी कर्मचारियों की समितियाँ पृथक् होती हैं। इस प्रकार की साख समितियाँ अधिकतर सफल हो जाती हैं। उसका कारण यह होता है कि सदस्य शिक्षित होते हैं; तथा उन्हें नियमों के पालन का जो अभ्यास होता है, उसके कारण समिति का कार्य सुचारु रूप से चलता है। इसके अतिरिक्त,

यदि साख समिति को उस दफ्तर के प्रधान अफसर की भी सहानुभूति मिल जावे तो फिर कहना ही क्या है ! उससे दिये हुए ऋण को वसूल करने में बहुत सहायता मिलती है । सहकारी साख समिति को चाहिए कि प्रत्येक मास सदस्यों को वेतन मिलने पर कुछ न कुछ जमा करने के लिये उत्साहित करे, जिससे उनमें मितव्ययिता का भाव जाग्रत हो ।

मिल-मजदूरों की सहकारी साख समितियाँ भी ऊपर लिखी जैसी ही होती हैं । अन्तर इतना ही है कि इनके सदस्य अशिक्षित होते हैं तथा वे ऋण भी थोड़ा लेते हैं । ऐसी समितियों के लिये मिल-मालिकों की सहानुभूति लाभदायक सिद्ध होती है । कुछ विद्वानों का कथन है कि सदस्यों को दिया हुआ ऋण मिल मालिकों के द्वारा वसूल किया जावे, किंतु लेखक का मत इसके विरुद्ध है । यदि मिल मालिक मजदूर के वेतन में से काट कर ऋण चुकावेंगे तो मजदूर साख समिति को मिल मालिक का बैंक समझेगा, और इस प्रकार वह कभी भी सहकारिता आन्दोलन को न समझ सकेगा । अस्तु, ऋण वसूल करने में मिल-मालिकों की सहायता यथासम्भव न ली जावे; हाँ, उनकी सहानुभूति बहुत उपयोगी है । मिल-मजदूरों की सरकारी साख समितियों के निरीक्षण और देखभाल की अत्यन्त आवश्यकता है । उनके बिना उनका सफल होना कठिन है । इसलिए जो पूँजीपति अपने मजदूरों की आर्थिक स्थिति को सुधारना चाहें, वे एक सुपरवाइजर नियुक्त कर दें, जो उन मिलों के मजदूरों की साख समितियों की देखभाल करता रहे। बम्बई तथा अन्य औद्योगिक केंद्रों के कुछ विवेकशील मिल मालिकों ने अपने मजदूरों के हितार्थ साख समितियाँ स्थापित की हैं । किंतु मिल-मजदूरों को साख से भी अधिक सहकारी स्टोर की आवश्यकता है, जिससे वे अपने दैनिक जीवन की वस्तुएँ उचित मूल्य पर खरीद सकें । इसके अतिरिक्त सहकारी गृह-निर्माण तथा सहकारी श्रम-समितियाँ भी, मजदूरों के लिये, उपयोगी होंगी ।

भारतवर्ष में जातीय सहकारी साख समितियाँ भी स्थापित की गई

हैं। उनमें प्रारम्भ में बहुत जोश होता है, किन्तु पीछे वह ठंडा पड़ जाता है और कार्यकर्त्ता शिथिल हो जाते हैं। ऋण देते समय इस बात का ध्यान नहीं रखा जाता कि ऋण कितना दिया जावे, न उसके वसूल करने में ही कड़ाई की जा सकती है, क्योंकि जाति-भाई का लिहाज रहता है। यद्यपि इन समितियों में ऊपर लिखे दोष होते हैं, फिर भी कुछ समितियाँ अपनी जातियों की अच्छी सेवा कर रही हैं।

कारीगर और साख—इनके अतिरिक्त नगरों में गृह उद्योग-धन्धों में लगे हुए कारीगरों को भी साख की आवश्यकता होती है। कारीगरों को मिश्रित पूंजी वाले बैङ्क उधार नहीं देते। कारण यह है कि एक तो कारीगरों को थोड़ी पूँजी की आवश्यकता होती है, जिसे देना बैङ्कों के लिये लाभदायक नहीं होता; दूसरे, कारीगरों के पास कोई जमानत भी नहीं होती। जमानत के बिना बैंक किसी को भी ऋण नहीं देते। इसलिए बेचारे कारीगर उन थोक व्यापारियों के चंगुल में फँस जाते हैं, जो उनके तैयार माल का व्यापार करते हैं। व्यापारी कारीगरों को या तो कच्चा माल उधार दे देते हैं, अथवा उन्हें कच्चा माल लेने के लिये रुपया उधार देते हैं; शर्त यह होती है कि उन्हें तैयार माल उसी व्यापारी के हाथ बेचना होगा। फल यह होता है कि निर्धन कारीगर व्यापारी का चिर दास बन जाता है, और व्यापारी के लिये माल तैयार करता रहता है। व्यापारी उसको कम से कम मजदूरी देता है; इस प्रकार व्यापारी उसका शोषण करता है। कारीगर को इस प्रकार के शोषण से बचाने के लिये नगर सहकारी साख समितियों की अत्यन्त आवश्यकता है। इस प्रकार की साख समितियाँ प्रत्येक धंधे के लिये अलग अलग होगी, जैसे जुलाहों के लिये बुनकर साख समिति। अभी तक इस देश में उत्पादक सहकारी साख समितियाँ अधिक संख्या में नहीं खोली गई और न इस आन्दोलन को अधिक सफलता ही मिली है। इसका कारण यह है कि साख समिति केवल पूँजी का प्रबन्ध करती है। कारीगर को कच्चे माल के लिये,

उसी व्यापारी की शरण में जाना पड़ता है। कारीगर अपने धन्धों में कुशल होता है, किन्तु वह कच्चा माल खरीदने तथा तैयार माल बेचने की कला नहीं जानता। इस कारण समिति को यह सब काम अपने हाथ में लेना चाहिये।

पीपल्स बैङ्क—नगरों में व्यापारियों के लिये मिश्रित पूँजी वाले व्यापारी बैंक हैं, किन्तु वहाँ तथा कस्बों में छोटे छोटे खोमचे वाले, दुकानदार तथा छोटे व्यापारी भी होते हैं, जिन्हें साख की आवश्यकता होती है। इन दूकानदारों के लिये पीपल्स बैंक (लुज्जती प्रणाली पर) स्थापित किए जाने चाहिएं। बैङ्क गृह-उद्योग धन्धों को प्रोत्साहित करने के लिये कारीगरों को ऋण देते हैं, तथा गांव की पैदावार को मंडियों तक पहुँचाने वालों को साख देते हैं। भारतवर्ष में ये बैंक अभी तक बहुत कम खोले जा सके हैं। जो नगर सहकारी बैङ्क खोले गये हैं वे प्रायः या तो जातीय बैङ्क हैं, अथवा किसी एक पेशे में लगे हुए लोगों के बैंक हैं। बम्बई तथा बंगाल में अवश्य कुछ ऐसे बैंक सफलता-पूर्वक कार्य कर रहे हैं।

नगर सहकारी बैङ्क तथा व्यापारी बैंक में अधिक भेद नहीं है। नगर सहकारी बैङ्कों में भी सेविंग (बचत), चालू, तथा मुद्दती जमा होती है। वे केवल सदस्यों को ही ऋण देते हैं। वे बिल तथा हुन्डी को भुनाने का काम भी करते हैं। बंगाल तथा बम्बई के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रान्त में नगर सहकारी बैङ्कों ने अभी तक हुण्डी का काम प्रारम्भ नहीं किया है। नगर सहकारी बैंक शुल्ज डैलिट्ज प्रणाली पर चलाये गये हैं। इन बैंकों की कार्यशील पूँजी डिपाजिट तथा हिस्सा-पूँजी होती है, तथा दायित्व परिमित होता है। नगर सहकारी बैंक का संगठन कृषि साख समिति जैसा ही होता है: केवल यह भेद है कि नगर सहकारी बैंकों में २५ प्रतिशत लाभ रक्षित कोष में रख कर बाकी बाँट दिया जाता है।

नगर सहकारी बैंक की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि कर्मचारी बैंकिंग के कार्य में दक्ष हों, तथा बैंक के प्रबन्धकर्ता भी अनुभवी पुरुष हों। बम्बई के सहकारी नगर बैंक की सफलता का कारण यह है कि वहाँ सर लल्लूभाई साँवलदास, तथा स्वर्गीय सर विट्ठलदास थैकरसे जैसे सुयोग्य और अनुभवी व्यवसायियों ने इनको सफल बनाने में सहयोग दिया था। बम्बई तथा सिन्ध में कुछ जातीय बैंकों को भी अच्छी सफलता मिली है। इनमें 'शमरा विट्ठल सहकारी बैंक लिमिटेड' का नाम उल्लेखनीय है। इस बैंक को सारस्वत ब्राह्मणों ने १६०६ में स्थापित किया था। इस समय इस बैंक की कार्यशील पूँजी १८ लाख रुपये के लगभग है।

बम्बई में मिल-मजदूरों की भी साख समितियाँ हैं। इन्हें नगर सहकारी बैंक भी कहते हैं। इनमें एक दोष शीघ्र प्रवेश कर जाता है। ये अपने मुख्य कर्तव्य अर्थात् सदस्यों में मितव्ययिता के भाव का प्रचार न करके केवल सदस्यों को ऋण देने का कार्य करने लगते हैं। अब इस दोष की ओर ध्यान आकर्षित हुआ है और यह प्रयत्न किया जा रहा है कि सदस्य बैंक में रुपया जमा करें।

नगर सहकारी बैंक में, ऋण लेनेवाले को व्यक्तियों की जमानत देनी होती है। इस बैंक की समिति का प्रबन्ध एक प्रबन्धकारिणी समिति करती है। यह बात ध्यान में रखने की है कि मिल मजदूरों के बैंकों में यदि मिल-मालिक का कोई प्रतिनिधि होता है तो जो कुछ वह करता है, वही होता है। साधारण सदस्यों को यह विचार ही नहीं होता कि समिति उनकी है।

नगर साख सहकारी समितियाँ मदरास और बम्बई प्रान्त में विशेष रूप से हैं। इन प्रान्तों में सभी बडे कस्बों में नगर साख सहकारी बैंक स्थापित हो चुके हैं; वैसे बंगाल और पंजाब में भी उनकी संख्या बढ़ रही है। भिन्न भिन्न प्रान्तों में इन बैंकों की संख्या और पूँजी इस प्रकार है—

प्रान्त	संख्या	कार्यशील पूँजी
आसाम	१६३	२७ लाख रु० के लगभग
बंगाल	३०८	६ करोड़ रु० से अधिक
बिहार	१०६	३० लाख रु०
बम्बई	६२५	६ करोड़ रु० से अधिक
मद्रास	१३०० के लगभग	५ करोड़
पंजाब	७३०	१ करोड़ २२ लाख रु०
सिंध	१३१	६६ लाख रु०
उत्तर प्रदेश	४०० से अधिक	८० लाख रु०

मध्यप्रान्त-बरार— केवल अमरावती में एक पीपल्स बैंक है।

देशी राज्यों में, मैसूर में ३०० से अधिक और बड़ौदा तथा कश्मीर में क्रमशः ९३ और २७ नगर साख समितियाँ काम कर रही हैं। समस्त भारत में इनकी संख्या ४१०० है।

नगर साख सहकारी समितियाँ रेल डाक आदि के सरकारी कर्मचारियों, तथा अन्य वेतन-भोगी मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों, मिल मजदूरों छोटे दूकानदारों तथा कारीगरों की होती हैं। कृषि साख समितियों की अपेक्षा ये समितियाँ अधिक सफल हुई हैं। ये अधिक मजबूत और आर्थिक दृष्टि से अधिक स्वावलम्बी हैं। इनके दिये हुए ऋण की किस्तें बहुत कम बकाया रहती है। एक विशेष बात इन समितियों के सम्बन्ध में यह है कि ये अपनी हिस्सा पूँजी और डिपाजिटों से ही इतना रुपया पा जाती हैं कि इनका काम अच्छी तरह से चल जाता है, और इन्हें सेन्ट्रल बैङ्कों अथवा प्रान्तीय बैङ्कों से ऋण लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। संक्षेप में ये अधिक स्वावलम्बी हैं। भारत जैसे देश में, जहाँ बैङ्किङ्ग की सुविधा कम है, उनकी और अधिक आवश्यकता है।

मद्रास—मद्रास में लगभग १३०० गैर कृषि सहकारी साख समितियाँ अर्थात नगर सहकारी साख समितियाँ थीं। इसमें से लगभग २०० नगर बैंक थे जो छोटे व्यापारियों को थोड़े समय के लिए साख

देते हैं, मजदूरों तथा छोटे कर्मचारियों की ५६० से अधिक साख समितियां थीं लगभग ४०० अन्य प्रकार की परिमित दायित्व वाली साख समितियाँ थीं। इन गैर कृषि साख समितियों की सदस्य संख्या चार लाख से कुछ कम थी। उनकी हिस्सा पूँजी १ करोड़ २० लाख रु०, उनका रक्षित कोष ७७ लाख रुपये के लगभग था, जमा पाँच करोड़ १६ लाख रुपये के लगभग थीं। ये समितियाँ लगभग साढ़े पांच करोड़ रुपये का ऋण अपने सदस्यों को दे देती हैं। नगर साख समितियाँ मध्यम श्रेणी, निम्न मध्यम-श्रेणी, छोटे व्यापारी। कारीगरों की अच्छी सेवा कर रही हैं। अब प्रयत्न किया जा रहा है कि वे व्यापारिक बैंकों की भाँति नकद साख भी दिया करें। इन समितियों को यथेष्ट जमा मिल जाती है, अस्तु वे सेंट्रल बैंक पर इतना निर्भर नहीं रहतीं।

उत्तर प्रदेश:—उत्तर प्रदेश में ४००से कुछ अधिक गैर कृषि साख समितियाँ कार्य कर रही हैं। अधिकांश समितियाँ सरकारी विभागों के वेतन भोगी कर्मचारियों की हैं। यह समितियाँ अपने सदस्यों को उचित सूद पर ऋण देती हैं। और उनसे ही डिपाज़िट स्वीकार करती हैं। यह योजना सफल हुई हैं, क्योंकि सदस्य शिक्षित होते हैं तथा विभागीय अध्यक्ष इनमें रुचि दिखाते हैं। इन समितियों के ७७ हजार सदस्य हैं और लगभग ८० लाख रुपये कार्यशील पूँजी है। इन समितियों का दायित्व परिमित है।

इनके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश में लगभग २५० समिथियाँ कारीगरों तथा छोटे व्यापारियों के लिए हैं। कानून से यदि वे चाहें तो दायित्व परिमित हो सकता है, परन्तु वे अपरिमित दायित्व वाली हैं। जिससे ठीक आदमी ही उनके सदस्य बनें। इन समितियों का संगठन ठीक ग्राम्य-सहकारी साख समिति की भाँति होता है। हां, इनमें हिस्सा पूँजी अवश्य होती है। सदस्य अधिकतर एक ही धन्धे में लगे हुए लोग होते हैं। प्रत्येक सदस्य की हैसियत निर्धारित

करदी जाती है उससे अधिक ऋण उसको नहीं दिया जाता। ऋण किश्तों में लौटा दिया जाता है। इन समितियों के सदस्य ३५०० हैं और कार्यशील पूंजी ३॥ लाख रु० है। यह समितियों अधिक सफल नहीं हुई हैं।

ट्रावंकोर:—ट्रावंकोर में १८ नगर बैंक काम कर रहे हैं। इन बैंकों के १२ हजार से ४३ कम सदस्य हैं उनकी कार्यशील पूँजी पाँच लाख रुपये से अधिक है और लगभग डेढ़ लाख रुपये वे प्रति वर्ष ऋण देते हैं।

कोचीन:—कोचीन में लगभग ६४ नगर साख समितियाँ हैं, सदस्यों की संख्या १७ हजार से अधिक और कार्यशील पूँजी २० लाख रुपये से अधिक है। यह समितियाँ अधिकांश सरकारी विभागों के कर्मचारियों, पुलिस सेना, तथा म्युनिस्पैलटियों तथा बड़ी फर्मों के कर्मचारियों के लिए स्थापित की गई हैं। यह समितियाँ लम्बे समय के लिए ऋण नहीं देतीं।

इंदौर:—इंदौर में ३७ नगर सहकारी साख समितियाँ काम कर रही हैं। इनकी सदस्य संख्या १७,५०० से कुछ अधिक तथा कार्यशील पूँजी साढ़े सैंतीस लाख रुपये हैं।

मध्यप्रदेश:—मध्यप्रदेश और बरार में नगर साख समितियाँ चार प्रकार की हैं:—(१) वेतन पाने वाले कर्मचारियों की समितियाँ (२) हरिजनों के लिए साख समितियां (३) मिलों के मज़दूरों के लिए साख समितियां (४) नगर बैंक।

वेतन पाने वाले कर्मचारियों को समितियाँ सरकारी कर्मचारियों, म्यूनिस्पैलटियों तथा मिलों के कर्मचारियों को होती हैं। इस प्रकार की ७१ समितियाँ इस प्रान्त में हैं। उनकी सदस्य संख्या २३ हजार से कुछ अधिक है और उनकी कार्यशील पूँजी २१ लाख है। बम्बई में इस समय १२६ नगर बैंक हैं जिनकी सदस्य संख्या १०८,११० है और जिनकी हिस्सा पूँजी ८० लाख रु० से अधिक है। उनकी

कार्यशील पूँजी लगभग १० करोड़ है। उन बैंकों में केवल सदस्यों का जमा ही चार करोड़ रुपये से अधिक है। यह बैंक ४ से ६ प्रतिशत सूद पर ऋण देते हैं और अधिक से अधिक ३॥ प्रतिशत सूद पर जमा लेते हैं।

इन बैंकों ने बहुत कुछ व्यापारिक बैंकों का सा कारबार करना आरम्भ कर दिया है। यह बैंक चाहते हैं कि वे अपनी ताल्लुकों में शाखायें खोलें और नाम मात्र के सदस्य बनावें। इस प्रकार के बैंकों का स्वरूप आगे चलकर कहीं बिलकुल व्यापारिक बैंकों जैसा ही न हो जावे, केवल यही खतरा है।

वास्तव में पीपुल्स बैंक छोटे कारिगरों खोमचे वालों तथा मजदूरों तथा निम्न मध्यम वर्ग के लिए ही सहकारिता के आधार पर संगठित करना चाहिए। अन्यथा उनका रूप व्यापारिक बैंकों जैसा हो जावेगा। प्रान्त में १४२ हरिजन सहकारी साख समितियाँ हैं जिनका अपरिमित दायित्व है। उनकी सदस्य संख्या २,८८६ है और कुल कार्यशील पूँजी १ लाख ७० हजार है।

मिल मजदूरों की समितियाँ, विशेषकर नागपुर में हैं ऐम्प्रेस मिल सहकारी साख समिति सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। उसकी सदस्य संख्या ६ हजार है और उसकी कार्यशील पूँजी ८ लाख है।

प्रान्त में कारीगरों तथा छोटे कारबार करने वाले व्यापारियों की कोई भी साख समिति नहीं है।

प्रान्त में केवल तीन नगर बैंक हैं जिनमें अमरौती बैंक सफलता पूर्वक काम कर रहा है। एक सुप्त अवस्था और एक समाप्ति पर है।

बम्बई:—बम्बई में पहले सभी गैर कृषि सहकारी साख समितियों को नगर बैंक कहते थे परन्तु प्रान्तीय सरकार ने मेहता-भंसाली कमेटी १९३७ में नियुक्त की। उस कमेटी की सिफारिश के अनुसार केवल वही साख समितियाँ नगर बैंक कहलावेंगी जो कि बैंकिंग कारबार करती हैं और जिनकी चुकता पूँजी २०,००० रु० से कम न हो।

बम्बई प्रान्त में इन नगर बैंकों के अतिरिक्त स्कूल डैलिट्ज प्रणाली के पीपिल्स बैंक हैं तथा वेतन भोगी कर्मचारियों की साख समितियाँ हैं। कुछ साख समितियाँ जातियों की हैं। अमुक जाति की एक साख समिति है।

सातवाँ परिच्छेद

सेन्ट्रल बैङ्क तथा बैङ्किङ्ग यूनियन

पिछले परिच्छेद में नगर सहकारी बैङ्कों के बारे में लिखा गया है। कुछ लोगों का यह विचार था कि ये बैङ्क ग्रामीण समितियों के लिये भी रुपया इकट्ठा कर सकेंगे। इस कारण १६०४ के एक्ट के अनुसार केवल दो प्रकार की साख समितियाँ स्थापित की गईं ! किन्तु यह आशा कि ग्रामीण जनता इन समितियों में रुपया जमा करेगी, पूरी नहीं हुई; क्योंकि एक तो किसान ऋणी हैं दूसरे उसे बैङ्क में रुपया रखने का अभ्यास नहीं है। प्रारम्भ में सहकारी समितियाँ संख्या में कम थीं, इस कारण उनके लिए कार्यशील पूँजी इकट्ठी करने में अधिक कठिनाई प्रतीत नहीं हुई। रजिस्ट्रार, समितियों में जमा होनेवाले रुपये के अतिरिक्त, प्रान्तीय सरकार तथा धनी व्यक्तियों से रुपया लेकर काम चलाते थे। पर इस प्रकार अधिक दिनों तक काम नहीं चल सकता था।

सेन्ट्रल बैंक—यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि ऐसे सहकारी बैङ्क खोले जावें, जो नगरों में प्रारम्भिक सहकारी समितियों के लिये धन इकट्ठा करें। १६१२ में दूसरा एक्ट पास हुआ और उसके अनुसार सेन्ट्रल बैंक खोलने की सुविधा हो गई। १६१० और १६१५ के बीच में सब प्रकार की सहकारी समितियों की संख्या बहुत बढ़ गई तथा सेन्ट्रल बैङ्कों की भी स्थापना की गई। सन् १६१२ में दूसरा सहकारिता एक्ट पास हो जाने के उपरान्त उत्तर प्रदेश बङ्गाल, तथा मध्यप्रदेश में बहुत से सेन्ट्रल बैङ्कों की स्थापना हुई। १६१५ से १६२० तक सेन्ट्रल बैंकों का औसत ३०१ था और प्रारम्भिक सहकारी समितियों की संख्या २७,५३५ थी। १६२० से १६२५ तक सेन्ट्रल बैंकों

की संख्या ५०० थी तथा समितियों की संख्या ५५,८९६ थी। इस समय ये संख्याएँ क्रमशः ६०० और १,०४,००० हैं।

सेन्ट्रल बैंक तीन प्रकार के होते हैं। (१) ऐसे सेन्ट्रल बैंक, जिनके सदस्य केवल व्यक्ति ही होते हैं। (२) ऐसे सेन्ट्रल बैंक जिनके सदस्य केवल समितियाँ ही हो सकती हैं (३) ऐसे सेन्ट्रल बैंक, जिनके सदस्य व्यक्ति तथा समितियाँ दोनों ही होते हैं। पहले प्रकार के बैंक केवल हिस्सेदारों के बैंक होते हैं। ये सहकारिता के सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं। इस कारण अब ऐसे बैंक नहीं रहे। दूसरे प्रकार के बैङ्क, जिनके सदस्य केवल समितियां होती हैं, आदर्श सहकारी सेन्ट्रल बैंक हैं। समितियाँ इन बैंकों की नीति निर्धारित करती हैं, बैंक का प्रबन्ध भी उन्हीं के हाथ में रहता है। ऐसे बैंक को बैंकिङ्ग यूनियन कहते हैं। इन बैंकिङ्ग यूनियनों का सम्बन्ध ग्रामीण समितियों से होता है, ग्रामीण समितियाँ ही इनका प्रबन्ध करती हैं। इन बैंकिङ्ग यूनियनों की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि समितियों के सदस्य योग्य तथा प्रभावशाली व्यक्ति हों। यही कारण है कि बैंकिंग यूनियन संख्या में अधिक नहीं हैं। तीसरे प्रकार के सेन्ट्रल बैंक ही अधिक देखने में आते हैं। उत्तर भारत में बैंकिंग यूनियन संख्या में यथेष्ट हैं, और दक्षिण में बहुत कम।

सेन्ट्रल बैंक का क्षेत्र प्रत्येक प्रान्त में भिन्न-भिन्न होता है। उस क्षेत्र की सहकारी समितियाँ उसी बैंक से ऋण लेती हैं। सेन्ट्रल बैंक का क्षेत्र दक्षिण तथा पश्चिम भारत में एक जिला, परन्तु उत्तर भारत में तहसील ही होती है। इसलिए उत्तर भारत के सेन्ट्रल बैंकों से सम्बन्धित समितियों की संख्या तथा पूँजी कम होती है।

साधारण सभा—सेन्ट्रल बैंक के हिस्सेदारों की सभा को साधारण सभा कहते हैं। सभा के सदस्यों को केवल एक 'वोट' देने का अधिकार होता है। मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियों की भाँति, जिसने

अधिक हिस्से खरीदे हैं, उसको एक से अधिक 'वोट' देने का अधिकार नहीं है। साधारण सभा डायरेक्टरों का निर्वाचन करती है।

संचालक (डायरेक्टर) बोर्ड बैंक का प्रबन्ध करता है। साधारणतः सेन्ट्रल बैंक के डायरेक्टर संख्या में अधिक होते हैं, क्योंकि बहुत से स्वार्थों का प्रतिनिधित्व होना आवश्यक होता है। भिन्न भिन्न प्रांतों में डायरेक्टरों की संख्या १० से २४ तक है। इससे यह कठिनाई होती है कि पूरे बोर्ड की मीटिंग का आयोजन कठिन हो जाता है, इसलिए बोर्ड अपने सदस्यों में से कार्यकारिणी समितियों का निर्वाचन करता है, जो बैंक का कार्य चलाती है। बैंक का दैनिक कार्य अवैतनिक मन्त्री, चेयरमैन तथा कोई एक डायरेक्टर, मैनेजर की सलाह से, करता है। डायरेक्टरों को फीस अथवा वेतन कुछ नहीं मिलता। कहीं कहीं डायरेक्टर समितियों की आवश्यकता जानने के लिए उनका निरीक्षण करते हैं तथा यह रिपोर्ट करते हैं कि उनको कितना ऋण देना चाहिये। डायरेक्टर बदलते रहते हैं। चेयरमैन तथा मन्त्री व्यक्ति-सदस्यों में से चुने जाते हैं। उत्तरीय तथा पूर्वी भारत में चेयरमैन कहीं-कहीं सरकारी कर्मचारी भी होता है, अधिकतर वह गैर-सरकारी ही होता है। प्रायः डायरेक्टर समितियों के प्रतिनिधि ही होते हैं।

मैनेजर—प्रत्येक बैङ्क एक मैनेजर नियुक्त करता है। मैनेजर प्रत्येक प्रान्त में एक ही कार्य नहीं करता। कुछ प्रान्तों में वह बैङ्क को अच्छे रूप से चलाने के अतिरिक्त, सम्बन्धित साख समितियों के लिए भी जिम्मेदार होता है। इसलिए उसको सेन्ट्रल बैंक के दौरा करनेवाले कर्मचारियों की भी देखभाल करनी पड़ती है। अन्य प्रान्तों में वह केवल साख समितियों के लिए जिम्मेदार होता है, इसलिए वह दौरा करता है और साख समितियों का निरीक्षण करता है। वह बैंक का प्रबन्ध नहीं करता। यह कार्य अवैतनिक मंत्री, कर्मचारियों की सहायता से करता है। बहुत बड़े-बड़े बैंकों में दो मैनेजर नियुक्त किए जाते

हैं। बैंक में मैनेजर के अतिरिक्त क्लर्क तथा आय-व्यय-लेखक नियुक्त किये जाते हैं। अधिकतर बैंक अपने खजानची रखते हैं और रुपये का लेन-देन स्वयं करते हैं। किन्तु कुछ बैंक अवैतनिक खजानची रखते हैं अथवा सरकारी खजाने तथा किसी अन्य बैंक में अपना रुपया रखते हैं।

सेन्ट्रल बैंक की कार्यशील पूँजी हिस्सा-पूँजी और रक्षित कोष डिपाजिट तथा ऋण द्वारा प्राप्त होते हैं।

हिस्से और डिपाजिट—बैंकिंग यूनियन में केवल समितियाँ ही हिस्से खरीद सकती हैं, किन्तु मिश्रित बैंकों में व्यक्ति भी हिस्से खरीद सकते हैं। साधारणतः सेन्ट्रल बैंकों के हिस्से ५० रु० से लेकर १०० रु० तक के होते हैं, किन्तु कहीं-कहीं १० से लेकर १०० रु० तक के हिस्से हैं। समितियाँ अपने ऋण के अनुपात में हिस्से लेती हैं। बम्बई, देहली, कुर्ग, गवालियर, तथा इन्दौर में हिस्सों का मूल्य पूरा चुका दिया गया है परन्तु अन्य प्रान्तों तथा देशी राज्यों में हिस्सों का पूरा मूल्य नहीं चुकाया गया है। साधारण हिस्सेदारों का दायित्व हिस्से के मूल्य तक ही सीमित है, किन्तु कुछ प्रान्तों में हिस्सेदारों का दायित्व चार गुने से लेकर दस गुने तक है। १९१२ के एक्ट के अनुसार प्रत्येक परिमित दायित्व वाली समिति को २५ प्रतिशत लाभ रक्षित कोष में जमा करना होता है। सेन्ट्रल बैंक इस २५ प्रतिशत के अतिरिक्त, अन्य कार्य के लिये, विशेष रक्षित कोष जमा करते हैं।

हिस्सा पूँजी तथा रक्षित कोष तो बैंक की निजी पूँजी होती है, और डिपाजिट तथा ऋण उधार ली हुई पूँजी होती है। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में निजी पूँजी तथा ऋण ली हुई पूँजी का अनुपात १ : ८ है।

सदस्यों तथा गैर-सदस्यों की डिपाजिट ही कार्यशील पूँजी का बड़ा भाग होती है। सेन्ट्रल बैंक में दो प्रकार की डिपाजिट होती हैं—मुद्दती, तथा सेविंग्स। अधिकतर सेन्ट्रल बैंक चालू खाता नहीं रखते।

हां, कुछ बैंक रखते भी हैं। चालू खाता जोखिम का काम है, उसके लिये संचालकों में यथेष्ट व्यापारिक कुशलता होनी चाहिए। सेन्ट्रल बैंकों के पास पूँजी भी बहुत कम होती है, इस कारण भी ये बैंक चालू खाता सफलतापूर्वक नहीं रख सकते! कहीं कहीं सेविंग्स डिपाजिट भी नहीं ली जाती, किन्तु अधिकतर बैंक सेविंग्स डिपाजिट लेते हैं। इन बैंकों में अधिकतर मुद्दती जमा ली जाती है। सेन्ट्रल बैंक अधिकतर एक वर्ष के लिये डिपाजिट लेते हैं। केवल बिहार-उड़ीसा में यह प्रथा है कि चाहे जब रुपया जमा किया जावे, ३१ मई को रुपया वापिस दे दिया जाता है। सेन्ट्रल बैंक में अधिकतर नौकरी करनेवाले, जमींदार, तथा संस्थाएँ ही रुपया जमा करती हैं।

ऋण—डिपाजिट के अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर बैंक ऋण भी ले लेते हैं। सेन्ट्रल बैंक, इम्पीरियल बैंक आदि दूसरे बैंकों से, तथा प्रांतीय सरकार से, ऋण लेते हैं। पंजाब के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में सेन्ट्रल बैंक प्रांतीय सरकार से सीधे ऋण नहीं लेते। किन्तु देशी राज्यों में सेन्ट्रल बैंक राज्य से ही ऋण लेते हैं, केवल मैसूर में बैंक राज्य से ऋण नहीं लेते।

सेन्ट्रल बैंक सरकारी कागज तथा प्रारम्भिक सहकारी साख समितियों के प्रामिसिरी नोट की जमानत पर कर्ज लेते हैं। कुछ समय से इम्पीरियल बैंक ने प्रारम्भिक सहकारी समितियों के प्रामिसिरी नोट पर कर्ज देना बंद कर दिया है, और केवल सरकारी कागज़ पर ही ऋण देता है। इम्पीरियल बैङ्क के मेनेजिङ्ग गवर्नर ने सेन्ट्रल बैंकिङ्ग इनक्वायरी कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा था कि सहकारी समितियों की आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय है इसलिए उनके प्रामिसरी नोट पर बैंक ऋण नहीं दे सकता। सेन्ट्रल बैंक अन्य मिश्रित पूँजी वाले बैंकों से ऋण नहीं लेते, ये अधिकतर प्रांतीय सहकारी बैंकों से ही लेते हैं। इन बैङ्कों के सम्बन्ध में अगले परिच्छेद में लिखा जायगा। जहाँ प्रान्तीय बैंक स्थापित हो चुके हैं,

वहाँ सेन्ट्रल बैंक, अन्य मिश्रित पूँजीवाले व्यापारिक बैंकों तथा दूसरे सेन्ट्रल बैंकों से सीधा सम्बन्ध नहीं रख सकते। यह नियम मदरास और पंजाब में कड़ाई के साथ उपयोग में नहीं लाया जाता। संयुक्तप्रांत में एक सेन्ट्रल बैंक दूसरे सेन्ट्रल बैंकों को, रजिस्ट्रार की अनुमति लेकर, ऋण दे सकता है।

सेन्ट्रल बैंक अधिकतर सहकारी साख समितियों तथा गैर-साख समितियों को ही ऋण देते हैं। पञ्जाब, मैसूर, गवालियर, तथा मदरास में अब भी सेन्ट्रल बैंक व्यक्तियों को ऋण देते हैं, किन्तु यह रिवाज अब बन्द की जा रही है। सहकारी समितियों के पास जमा करने के लिये अधिक पूँजी तो होती नहीं, इस कारण बैंक समितियों को ऋण देने का ही कार्य अधिक करते हैं। सेन्ट्रल बैंक व्यक्तियों, विशेष प्रकार की समितियों, तथा कृषि सहकारी समितियों को, नोट अथवा बाँड पर ऋण दे देते हैं। किन्तु व्यक्तियों और विशेष प्रकार की समितियों से इसके अतिरिक्त कुछ जायदाद अथवा सम्पत्ति गिरवी रखवाई जाती है। कृषि सहकारी समितियों के अपरिमित दायित्व के कारण उनका 'प्रोनोट' ही यथेष्ट जमानत समझी जाती है। जब सहकारी साख समिति किसी सदस्य के पुराने ऋण को चुकाने के लिए लम्बा ऋण लेती है तो सेन्ट्रल बैंक 'प्रोनोट' के अतिरिक्त उन कागजों को, जो सदस्य ने समिति को लिख दिये हैं, अपने नाम करवा लेता है।

यह जानने के लिए कि प्रत्येक सहकारी साख समिति को अधिक से अधिक कितना ऋण देना उचित होगा, सेन्ट्रल बैङ्क अपने से संबन्धित साख समितियों की साख का अनुमान लगाते हैं। जो ऋण समितियों को दिया जाता है, वह निश्चित वर्षों में वसूल कर लिया जाता है। कुछ में तो ऋण बहुत समय के लिए भी दिया जाता है, किन्तु कुछ समय में केवल कम समय के लिए ही। ऋण की स्वीकृति देने में बहुत सी कानूनी कार्यवाही करनी पड़ती है, इसलिए ऋण मिलने में देर हो जाती है। इस दोष को दूर करने के लिए

कुछ सेन्ट्रल बैंक एक रकम निश्चित कर देते हैं, जिस तक समितियों को बिना किसी देरी के कर्ज दे दिया जाता है, अधिक रकम के लिए नियमित कार्यवाही करनी पड़ती है। कुछ प्रांतों में समितियों की सामान्य साख निर्धारित कर दी जाती है। ऐसा करने से पूर्व, उसके सदस्यों की सामान्य साख का लेखा तैयार किया जाता है, जिसमें सदस्यों की सम्पत्ति, उनकी आवश्यकता, उनकी आयु तथा उनकी बचाने की शक्ति का ब्योरा रहता है। इस लेखे के आधार पर बैंक यह निश्चित कर देता है कि समिति को किस रकम तक कर्ज दिया जा सकता है। सदस्यों की सामान्य साख का लेखा प्रतिवर्ष हैसियत के अनुसार तैयार किया जाता है।

सेन्ट्रल बैंक भिन्न भिन्न प्रान्तों में जुदा जुदा समय के लिए कर्ज देते हैं। फ़सल उत्पन्न करने के लिए जो कर्ज लिया जाता है वह एक दो वर्ष के लिए होता है, और जो ऋण भूमि में सुधारने के लिए, अथवा पुराने कर्जों को अदा करने के लिए लिया जाता है, वह पाँच से दस वर्ष तक के लिये दिया जाता है। प्रत्येक प्रांत में यह धारणा जोर पकड़ रही है कि सेन्ट्रल बैंक अधिक समय के लिए ऋण नहीं दे सकते। इसके लिए भूमि बन्धक बैंक स्थापित करना चाहिए।

सेन्ट्रल बैङ्क अभी तक समितियों से ८ से १२ प्रतिशत सूद लेते रहे हैं। जब बाजार में सूद की दर बहुत घट गई तब इन बैंकों ने दर घटाई, और अब प्रयत्न किया जा रहा है कि सूद की दर और घटाई जावे। भारतीय सहकारिता आन्दोलन की सबसे बड़ी कमी यह है कि समितियाँ ऋण को उचित समय पर नहीं दे पातीं और बहुत सा रुपया बाकी रह जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि सदस्य अशिक्षित हैं, उन्हें ज्ञान नहीं है; कभी-कभी फसल नष्ट हो जाने के कारण भी वे कर्ज अदा नहीं कर पाते। यदि फसल के नष्ट हो जाने से समितियाँ अपना ऋण नहीं दे पातीं तो उन्हें अधिक समय दे दिया जाता है। जब कोई समिति अपना ऋण नहीं देती तो बैंक, जहाँ तक हो

सकता है, रुपया वसूल करता है। यदि रुपया किसी भी प्रकार वसूल नहीं होता तो बैंक रजिस्ट्रार से समिति तोड़ देने के लिए कहता है, अथवा अदालत से डिगरी कराता है।

जब समितियाँ सेन्ट्रल बैंक को ऋण का रुपया चुकाती हैं, उस समय बैङ्क के पास आवश्यकता से अधिक रुपया जमा हो जाता है। यह स्थिति वर्ष में दो से चार महीने तक रहती है। इस समय बैंक प्रान्तीय बैङ्कों में रुपया जमा कर देते हैं, जहां प्रान्तीय बैंक नहीं है, वहां रुपया इम्पीरियल बैंक में जमा कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक बैंक के पास कुछ रुपया स्थाई रूप में अधिक होता है, जो समितियों को ऋण देने में नहीं लगाया जा सकता। यह कोष प्रान्तीय बैंक में अधिक समय के लिए जमा कर दिया जाता है, अथवा ट्रस्ट-सिक्यूरिटी में लगा दिया जाता है। इस समय सेन्ट्रल बैङ्कों की नीति यह है कि वे आवश्यकता से अधिक डिपाजिट नहीं लेना चाहते, इसलिए डिपाजिट पर सूद की दर बहुत घटा दी गई है।

नकदी—मैकलेगन कमेटी ने प्रत्येक सेन्ट्रल बैंक द्वारा नकदी रखे जाने की आवश्यकता बतलाई है। किसी समय ऐसा सम्भव है कि डिपाजिट निकाल ली जावें और लोग रुपया न जमा करें। ऐसे समय पर जमा करनेवालों को उनका रुपया दे सकने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक सेन्ट्रल बैङ्क कुछ न कुछ नकदी अवश्य रखे। मैकलेगन कमेटी ने इस विषय में निम्नलिखित सम्मति दी है—जिन बैङ्कों में चालू खाता तथा सेविङ्ग बैंक खाता दोनों ही हों, उनमें चालू खाते की सारी रकम तथा सेविंग बैंक खाते की ७५ प्रतिशत रकम नकदी तथा ऐसी सिक्यूरटी में रखनी चाहिए, जो तुरन्त ही नकदी में परिणत की जा सके। मुद्दती जमा के लिये कमेटी की यह राय है कि जो डिपाजिट अगले बारह महीनों में देनी हो उसकी आधी रकम नकदी में रहे। किन्तु इस नियम के अनुसार कहीं कार्य नहीं होता, प्रत्येक प्रान्त ने अपने नियम बना रखे हैं। प्रायः नकदी इससे कम ही रहती है।

लाभ—सेन्ट्रल बैङ्क प्रतिवर्ष वार्षिक लाभ का २५ प्रतिशत रक्षित कोष में जमा करते हैं और शेष हिस्सेदारों में बाँट दिया जा सकता है, किन्तु सेन्ट्रल बैंकों के उपनियमों में अधिक से अधिक लाभ की दर निश्चित कर दी जाती है, जिससे अधिक लाभ हिस्सेदारों में नहीं बाँटा जा सकता।

सेन्ट्रल बैङ्क ६ प्रतिशत से १० प्रतिशत तक लाभ बाँटते हैं; अधिकतर प्रान्तों में ६ प्रतिशत ही बाँटा जाता है। साधारण रक्षित कोष के अतिरिक्त कोई सेन्ट्रल बैंक इमारत, बट्टाखाता, तथा लाभ-हानि-सन्तुलन के लिये विशेष कोष जमा करते हैं। रक्षित कोष का रुपया सिक्यूरिटी में या प्रान्तीय बैंक में लगा दिया जाता है, अथवा वह बैंक में ही रहता है और कार्यशील पूँजी की वृद्धि करता है।

सूद की दर—सेन्ट्रल बैंकों की सूद की दर भिन्न-भिन्न प्रान्तों में जुदा-जुदा है। किन्तु डिपाजिट के सूद तथा प्रारम्भिक समितियों से लिए जाने वाले सूद में, २ से ५ प्रतिशत का अन्तर रहता है। बिहार, उड़ीसा, संयुक्तप्रांत तथा ग्वालियर में यह अन्तर ४ से ५ प्रतिशत तक होता है। अन्य प्रांतों में अन्तर केवल दो या तीन प्रतिशत है। जिन बैंको का लेनदेन कम होता है, उनका प्रबन्ध-व्यय अपेक्षाकृत अधिक होने के कारण उन्हें अन्तर अधिक रखना पड़ता है। कुछ प्रान्तों में विशेष प्रकार की 'लेंड टैन्योर' (भूमि-स्वत्व) होने के कारण रुपया अधिक मारा जाता है. इस कारण भी अन्तर अधिक रखना पड़ता है।

कर्मचारी—सेन्ट्रल बैंक अपने से संबन्धित समितियों की देखभाल रखते हैं. तथा उन पर अपना नियन्त्रण रखते हैं। इस कार्य के लिए उन्हें कुछ कर्मचारी रखने पड़ते हैं। कर्मचारी ऋण के प्रार्थनापत्रों की जाँच करते हैं और सम्पत्ति का लेखा तैयार करते हैं; जो समितियाँ अपने पुराने ऋण को चुकाने के लिए अधिक समय माँगती हैं, उनके प्रार्थनापत्रों के विषय में भी जाँच करते हैं, और समिति के सदस्यों से

रुपया वसूल करने में, सहायक होते हैं। कहीं-कहीं सेन्ट्रल बैंक के कर्मचारी ही सदस्यों से रुपया वसूल कर लेते हैं। ऐसी परिस्थिति में सदस्य समिति को कुछ नहीं समझता और समिति का कोई प्रभाव नहीं रहता। किसी किसी प्रांत में ये कर्मचारी समितियों का हिसाब रखते हैं. तथा वार्षिक सभा का आयोजन भी करते हैं। जहाँ नई समितियों की स्थापना करने के लिये सहकारी विभाग विशेष कर्मचारी नियुक्त नहीं करता, वहाँ के कर्मचारी नवीन समितियों की स्थापना भी करते हैं। इसके अतिरिक्त ये लोग सहकारिता सम्बन्धी प्रचार-कार्य भी करते हैं। किन्तु अब इनमें से कुछ कार्य प्रांतीय इंस्टिट्यूट करने लगी हैं। कुछ प्रान्तों में समितियों की देखभाल का कार्य सुपरवाइजिङ्ग यूनियन को दिया गया है।

सेन्ट्रल बैंकों की आय-व्यय की जांच सरकार द्वारा नियुक्त आय-व्यय-परीक्षक करते हैं। ये परीक्षक वसूल न हुए रुपये के विषय में भी जांच करते हैं तथा सेन्ट्रल बैंकों की आर्थिक स्थिति को भी देखते हैं। रजिस्ट्रार कुछ प्रश्न निश्चित करता है, जिनका उत्तर तथा आय-व्यय-परीक्षक की रिपोर्ट रजिस्ट्रार के पास जाती है।

सेन्ट्रल बैंक का निरीक्षण रजिस्ट्रार तथा सहकारी विभाग के कर्मचारी करते हैं। जहाँ प्रान्तीय बैंक हैं, वहाँ उनके मैनेजर डायरेक्टर भी निरीक्षण करते हैं। किन्तु यह सर्वमान्य है कि निरीक्षण उचित रूप से नहीं होता; क्योंकि रजिस्ट्रार तथा उनके कर्मचारी कुछ ही बैंकों का निरीक्षण कर पाते हैं। प्रत्येक बैंक वार्षिक बैलेंस-शीट (लेनी-देनी का लेखा) तैयार करके उसे आय-व्यय-परीक्षक की रिपोर्ट के सहित रजिस्ट्रार तथा हिस्सेदारों के पास भेजता है। बैलेंस-शीट के अतिरिक्त प्रत्येक बैंक को लाभ और हानि का, तथा आमदनी और खर्च का ब्योरा भी सरकार के पास भेजना पड़ता है। सेन्ट्रल बैंक रजिस्ट्रार को तिमाही रिपोर्ट भेजते हैं, जिसमें उनकी आर्थिक स्थिति का ब्योरा रहता है। प्रायः सेन्ट्रल बैङ्क अपनी शाखाएँ नहीं खोलते, किन्तु उन

सेन्ट्रल बैङ्कों को, जिनका क्षेत्र बहुत बड़ा है, जिनसे सम्बन्धित समितियों की संख्या अधिक है, शाखाएँ भी खोलने की आज्ञा दे दी गई है।

बैङ्कों की स्थिति—भारतवर्ष में सब मिलांकर छः सौ सेन्ट्रल बैङ्क हैं—पंजाब १२०, बङ्गाल ११७, संयुक्तप्रांत ७०, बिहार उड़ीसा ६८, मध्यप्रांत ३५, मदरास ३०, आसाम २०, बम्बई ११; शेष देशी राज्यों में हैं। सब सेन्ट्रल बैंकों के लगभग ८०,००० व्यक्ति और १,४०,००० समितियां सदस्य हैं। समस्त कार्यशील पूँजी २९ करोड़ रुपये से अधिक हैं, जिसमें हिस्सा पूँजी ९ प्रतिशत, रक्षित कोष १४ प्रतिशत, डिपाजिट ५९ प्रतिशत, प्रान्तीय बैंक से लिया हुआ ऋण १४ प्रतिशत, तथा सरकार से लिया हुआ ऋण डेढ़ प्रतिशत है। इन आंकड़ों को देखने से ज्ञात होता है कि सेन्ट्रल बैंकों के पास २३ प्रतिशत के लगभग उनकी निज की पूँजी है। परन्तु रक्षित कोष इनकी ठीक स्थिति को नहीं बतलाता; क्योंकि बहुत सी साख समितियाँ, जो इन बैंकों से रुपया उधार लेती हैं, वे अपना ऋण अदा नहीं करेंगी, और यह हानि बैंकों को उठानी पड़ेगी।

मदरास, बम्बई और मध्यप्रान्त-बरार के सेन्ट्रल बैंकों का क्षेत्र विस्तृत है। अधिकतर एक जिले में एक बैंक है। परन्तु बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा और पंजाब में एक बहुत छोटे क्षेत्र (ताल्लुका) में एक बैंक होता है। संयुक्त प्रान्त के कुछ जिलों में तो प्रत्येक तहसील में एक बैंक है, और कुछ में केवल एक-एक ही बैंक कार्य करता है।

आंकड़ों से यह भी ज्ञात होता है सेन्ट्रल बैंक उधार पूँजी (डिपाजिट और कर्ज की रकम) का ९० प्रतिशत समितियों को उधार दे देते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि सेन्ट्रल बैंक अपेक्षाकृत कम नकदी रखते हैं; यह व्यापारिक दृष्टि से ठीक नहीं है। यद्यपि वसूल न होनेवाले ऋण के आंकड़े प्राप्त नहीं हैं परन्तु यह निश्चित है कि सेन्ट्रल बैंकों का बहुत सा रुपया मारा जावेगा, क्योंकि साख समितियों की स्थिति ठीक नहीं है।

मोटे तौर पर मदरास, बम्बई और पंजाब के सेन्ट्रल बैंकों की आर्थिक स्थिति अच्छी है। बिहार, बंगाल, उड़ीसा, मध्यप्रदेश और बरार के सेन्ट्रल बैंकों की स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक हो गई थी, उनके जीर्णोद्धार का प्रयत्न किया गया। इन प्रान्तों में बहुत से बैंकों को तो अपना कारोबार इसलिए बन्द कर देना पड़ा कि वे डिपोजिट करने वालों को उनका रूपया देने में असमर्थ थे। उत्तरीय उड़ीसा के सेन्ट्रल बैंकों ने अपना प्रबन्ध ६ वर्ष के लिए रजिस्ट्रार के हाथ में सौंप दिया। इन प्रान्तों में सेन्ट्रल बैंकों की असफलता के मुख्य कारण ये हैं:—समितियों को अंधाधुन्ध ऋण देना, दोषपूर्ण निरीक्षण, बैंकिंग सिद्धान्तों की अवहेलना, और प्रारम्भिक समितियों का दोष-पूर्ण संगठन। अन्य प्रान्तों में सेंट्रल बैंकों की स्थिति साधारण है।

उत्तरप्रदेश—उत्तरप्रदेशमें ६७ जिला तथा सैंट्रल सहकारी बैंक हैं जिनके ६८५६ व्यक्ति तथा १५,०५१ सहकारी समितियां सदस्य हैं। इन बैंकों की हिस्सा पूंजी ६२ लाख और कार्यशील पूंजी २ करोड़ २० लाख रुपए थी। १६४७-४८ में इन बैंकों ने १ करोड़ ६६ लाख रु० के ऋण दिए। अधिकांश बैंक केवल मुद्दती जमा लेते हैं और एक वर्ष की जमा पर ३ से ३॥ प्रतिशत सूद देते हैं। सेन्ट्रल बैंक समितियों को ७ से ९ प्रतिशत सूद पर ऋण देते हैं।

उत्तरप्रदेश में सेंट्रल बैंक,जो हजारों बहु उद्येश्य वाली समितियां स्थापित हुई हैं उनको साख नहीं देते क्योंकि यह बहु-उद्येश्य वाली समितियां व्यापार करती हैं। सेंट्रल बैंक व्यापार की जोखिम को नहीं लेना चाहते। इसी प्रकार प्रान्तीय सरकार ने राशन सप्लाई दूकानों को व्यक्तियों के हाथ से लेकर सहकारी स्टोर को दे दिया है। यह उपभोक्ता स्टोर भी अपनी ही पूंजी से काम कर रहे हैं, सेंट्रल बैंक इन्हें साख नहीं देते

आठवाँ परिच्छेद

प्रान्तीय सहकारी बैंक या सर्वोपरि बैंक

—o—

प्रान्तीय बैङ्कों की आवश्यकता—देश में सहकारिता आन्दोलन के क्रमशः फैलने पर यह अनुभव होने लगा कि यद्यपि सेन्ट्रल बैंक सहकारी समितियों का निरीक्षण तथा देखभाल करने में रजिस्ट्रार का हाथ बँटाते हैं तथापि आंदोलन में जितनी पूँजी की आवश्यकता होती है, उसका उचित प्रबन्ध नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त सेन्ट्रल बैंकों का नियंत्रण तथा उनके द्वारा साख समितियों की यथेष्ट पूँजी का उचित प्रबंध करने की भी आवश्यकता प्रतीत हुई। मैकलेगन कमेटी ने, जो १६१५ में सहकारिता आंदोलन की जाँच के लिए बैठाई गई थी, प्रत्येक प्रांत में प्रांतीय बैङ्क स्थापित करने की आवश्यकता बतलाई। वास्तव में सेन्ट्रल बैङ्कों का आपस में सम्बंध स्थापित करने के लिए ऐसी संस्था की अत्यत आवश्यकता थी। प्रान्तीय बैङ्कों से पूर्व यह काम रजिस्ट्रार करता था। यदि किसी सेन्ट्रल बैङ्क को पूँजी की अधिक आवश्यकता होती तो रजिट्रार सूचना पाने पर प्रांत के प्रत्येक सेन्ट्रल बैङ्क को गश्ती चिट्ठी लिख देता था। पर इससे उद्देश्य सिद्ध नहीं होता था और साथ ही रजिस्ट्रार का बहुत सा समय इस कार्य में लग जाता था। कुछ सेन्ट्रल बैङ्क अपनी आवश्यकता से अधिक पूँजी आकर्षित कर लेते थे, और कुछ को यथेष्ट पूँजी नहीं मिलती थी, इसलिए ऐसी प्रांतीय बैङ्कों की बहुत आवश्यकता प्रतीत हुई जो पहले प्रकार के बैङ्कों की अतिरिक्त पूँजी जमा करें और उसे दूसरे प्रकार के बैङ्कों को दे दें। इसके अतिरिक्त द्रव्य-बाजार ('मनी-मार्केट') तथा

सहकारिता आन्दोलन के बीच में सम्बन्ध स्थापित करने के लिए भी प्रान्तीय बैङ्कों की आवश्यकता प्रतीत हुई।

भारतवर्ष में इस समय नौ प्रांतीय सहकारी बैङ्क कार्य कर रहे हैं:—मदरास, बम्बई, सिंध, पञ्जाब, बङ्गाल, बिहार, मध्यप्रदेश आसाम और उत्तरप्रदेश के। देशी राज्यों में हैदराबाद तथा मैसूर के सर्वोपरि बैङ्क प्रांतीय सहकारी बैङ्कों की श्रेणी में आते हैं। इन ग्यारह बैङ्कों की समस्त कार्यशील पूँजी १८ करोड़ रुपये से अधिक है। इन्दौर त्रावनकोर, गवालियर, बड़ौदा, कश्मीर और भोपाल में कोई सेन्ट्रल बैङ्क इस कार्य के लिए चुन लिया गया है, वह सर्वोपरि बैङ्क का काम करता है।

सदस्यता—इन बैङ्कों का संगठन एकसा नहीं है और न इन सब बैङ्कों में सदस्यता ही एकसी है। पंजाब और बङ्गाल को छोड़कर और सब प्रान्तों में व्यक्ति भी इन बैङ्कों के सदस्य होते हैं। बंगाल और पंजाब में व्यक्ति इन बैङ्कों के हिस्सेदार नहीं हो सकते; वहाँ सहकारी साख समितियाँ और सहकारी सेन्ट्रल बैङ्क ही प्रान्तीय बैङ्क के सदस्य हो सकते हैं। बम्बई, पंजाब, बिहार, मध्यप्रदेश और आसाम में प्रांतीय बैङ्कों के सदस्य व्यक्तियों के अतिरिक्त प्रारम्भिक सहकारी समितियाँ और सहकारी सेन्ट्रल बैङ्क होते हैं। मदरास प्रान्तीय सहकारी बैङ्क के सदस्य केवल सेन्ट्रल बैङ्क ही हो सकते हैं, प्रारम्भिक साख समितियाँ नहीं हो सकतीं। बङ्गाल और बिहार में यद्यपि कुछ प्रारम्भिक सहकारी साख समितियाँ सदस्य हैं, परन्तु व्यवहार में वहाँ भी सेन्ट्रल बैङ्क ही उनके सदस्य हैं। सिन्ध में कोई सेन्ट्रल बैङ्क नहीं है इसलिये वहाँ के प्रान्तीय बैङ्क के सदस्य केवल व्यक्ति तथा प्रारम्भिक सहकारी साख समितियाँ ही हैं। इस मिश्रित साख सदस्यता के कारण साधारण सभाओं की बैठक करने तथा उसमें वोट देने की पद्धति का निश्चय करने में बड़ी उलझन होती है। यही कारण है कि मदरास सहकारिता कमेटी (१९४०) ने व्यक्तियों को सदस्य न रखने की सिफारिश की।

संचालन—प्रान्तीय बैङ्कों को भली भाँति चलाने के लिये व्यापारिक बुद्धि तथा बैंकिंग की योग्यता चाहिये। इसलिये बैङ्क के डायरेक्टरों या संचालकों में इन गुणों वाले व्यक्ति भी होने चाहिए। किन्तु संचालक-बोर्ड में इन्हें प्रधानता देने से सम्भव है कि सहकारिता के हितों की रक्षा न हो। इसलिये डायरेक्टरों में प्रधानता तो सहकारितावादियों की ही रहनी चाहिए, किन्तु कुछ ऐसे व्यापारी तथा बैंकिंग की योग्यता रखनेवालों को भी ले लेना चाहिए, जिन्हें सहकारिता आन्दोलन से सहानुभूति हो। यह तो हुई सिद्धान्त की बात, अब देखना यह है कि हमारे प्रान्तीय बैंकों का संचालन कैसे होता है।

भिन्न-भिन्न बैंकों के संचालक-बोर्ड का निर्माण उनके अपने-अपने उपनियमों के द्वारा होता है। दो या तीन के अतिरिक्त और सब प्रान्तीय बैंकोंमें हिस्सेदारों के बाहर से भी डायरेक्टरोंको नियुक्त करने के परिपाटी प्रचलित है। पंजाब में सहकारिता विभाग का रजिस्ट्रार तथा सहकारिता विभाग का आर्थिक सलाहकार पदेन (अपने पद के कारण) डारेक्टर होते हैं। बङ्गाल में रजिस्ट्रार बोर्ड में तीन व्यक्तियों को मनोनीत करता है। मध्यप्रदेश के प्रान्तीय बैङ्क के बोर्ड में रजिस्ट्रार तथा प्रान्तीय सरकार का फाइनैंस-सेक्रेटरी पदेन डायरेक्टर होते हैं। बिहार में रजिस्ट्रार डायरेक्टर होता है, वहाँ सहकारिता आन्दोलन के पुनर्निर्माण में बैङ्क प्रान्तीय सरकार के नियंत्रण में दे दिया गया है। प्रान्तीय सरकार जिसे प्रान्तीय सहकारी बैंक का सलाहकार नियुक्त करेगी वही उसका (उस समय तक के लिये जब तक कि बैङ्क सरकार के नियंत्रण में रहेगा) मेनेजिंग डायरेक्टर होगा। सिन्ध प्रान्तीय बैङ्क में भी मनोनीत डायरेक्टर होते हैं। मदरास बम्बई और सम्भवतः आसाम में मनोमीत डायरेक्टर नहीं होते। मदरास में रजिस्ट्रार को पदेन प्रान्तीय बैङ्क का डायरेक्टर बनाने का प्रयत्न हो रहा है।

उत्तर प्रदेश में प्रांतीयसहकारी बैंक सन् १९४४ में, लखनऊ में

स्थापित किया गया था। सरकार ने इसे तीन वर्ष तक पंद्रह हजार रुपए की सहायता दी। बैङ्क के सदस्य व्यक्ति और सहकारी समितियाँ दोनों ही हैं। रजिस्ट्रार अपने पद के कारण इसका चेयरमेन होता है। डायरेक्टरों में से दो को सरकार नियुक्त करती है, दो व्यक्तिगत हिस्से-दारों के, और पाँच सहकारी समितियों के होते हैं। बैङ्क की कार्यशील पूँजी पचास लाख रुपए है। इसने अपनी शाखाएँ बाराबंकी, कानपुर और सीतापुर में स्थापित की हैं, भविष्य में इन्हें और बढ़ाने का विचार है।

कार्यशील पूँजी—प्रांतीय बैंकों की कार्यशील पूँजी लगभग ५३ करोड़ रुपये है. जिसमें लगभग १६ प्रतिशत उनकी निज की, और शेष उधार ली हुई है। उधार ली हुई पूँजी में सहकारी समितियों, सेन्ट्रल बैंकों तथा व्यक्तियों की डिपाजिट मुख्य हैं। प्रान्तीय बैङ्क चालू, सेविंग्स और मुद्दती तीनों तरह की डिपाजिट लेते हैं। अधिकांश डिपा-जिट एक से तीन वर्ष के लिए ली जाती है। इससे अधिक समय के लिए डिपाजिट बहुत कम ली जाती है। जो बैंक इससे अधिक समय के लिए डिपाजिट लेते थे, उन्हें अब कठिनाई का अनुभव हो रहा है, क्योंकि पिछले वर्षों में सूद की दर तेजी से घटती गई है। प्रान्तीय साख अच्छी है. वे सहकारिता आन्दोलन और बाहर से भी डिपाजिट आकर्षित करते हैं। जहाँ तक सूद देने का प्रश्न है. वे अन्य व्यापारिक बैंकों की अपेक्षा बहुत अधिक सूद नहीं देते। मद्रास प्रान्तीय बैंक चालू खाते पर पौन प्रतिशत एक वर्ष की मुद्दती जमा पर ढाई प्रतिशत तथा दो वर्ष की जमा पर पौने तीन प्रतिशत सूद देता है; उसको यथेष्ट डिपाजिट मिल जाती है। पंजाब प्रान्तीय बैंक व्यक्तियों को चालू खाते पर कोई सूद नहीं देता। द्रव्य-बाजार के अनुसार यह बैङ्क भी अपनी सूद की दर निर्धारित करते हैं।

पूँजी लगाना—रिजर्व बैंक ने प्रांतीय बैंक में यह दोष बताया है कि वे नकदी रुपया और शीघ्र भँज सकनेवाली लेनी यथेष्ट

नहीं रखते और आवश्यकता से अधिक रुपया बाहर लगा देते हैं। उसने प्रान्तीय बैंकों को राय दी थी कि वे अपनी देने की ४० प्रतिशत नकदी अन्य बैंकों में जमा के रूप में रखें। भिन्न-भिन्न प्रांतीय सरकारों ने भी कुछ नियम बना दिये हैं, जिसके अनुसार प्रान्तीय बैंकों को अपनी देनी के एक निश्चित अनुपात में नकदी तथा शीघ्र भेज सकनेवाली लेनी रखनी पड़ती है। प्रान्तीय बैंक व्यवहार में १० से ५० प्रतिशत कार्यशील पूँजी सरकारी सिक्यूरिटी में लगाते हैं, कुछ रुपया अन्य व्यापारिक बैंकों तथा प्रान्तीय बैंकों में जमा करते हैं, कुछ नकदी अपने पास रखते हैं, और शेष अपने सदस्यों को उधार देते हैं।

जहाँ तक रुपया लगाने का प्रश्न है, रिजर्व बैंकों को यह सलाह दी थी कि उन्हें अपने सदस्यों को ६ महीने से एक वर्ष तक के लिए ही ऋण देना चाहिए। यद्यपि रिजर्व बैंक की इस 'सलाह को प्रांतीय सहकारी बैंक पूरी तरह से नहीं मान सके, फिर भी वे अब प्रायः उत्पादन और खेती की पैदावार के क्रय-विक्रय के लिये ही, थोड़े समय के लिए, ऋण देते हैं। बङ्गाल प्रांतीय बैंक तो फसलों को उत्पन्न करने के लिए केवल कम समय के ही ऋण देने लगा है। परन्तु किसान को साख की जितनी आवश्यकता कम समय के लिये है, उतनी ही मध्यम समय यानी दो या तीन वर्षों के लिये भी है। अतएव प्रान्तीय सहकारी बैंकों को ये दोनों प्रकार की साख देनी होती है। यदि प्रांतीय सहकारी बैंक अपनी निजी पूँजी का ध्यान रखने के साथ, डिपाजिटों तथा ऋण के समय का ध्यान रखें तो आसानी से कम समय और मध्यम समय के लिए साख का प्रबन्ध कर सकते हैं। हाँ, लम्बे समय अर्थात् १० से २० वर्ष तक के लिये वे साख नहीं दे सकते, उसके लिये भूमि-बन्धक बैंक ही उपयुक्त संस्था है।

सदस्यों को कर्ज देने के सम्बन्ध में भी सब प्रान्तीय बैंक एकसा व्यवहार नहीं करते। बम्बई प्रांतीय बैंक मुख्यतः प्रारम्भिक सहकारी

साख समितियों को, अपनी शाखाओं के द्वारा, कर्ज देता है; केवल सेन्ट्रल बैंकों से कर्ज लेता है। जहाँ तक सेन्ट्रल बैंकों का प्रश्न है, प्रान्तीय बैंक सन्तुलन-केन्द्र है, और उन्हें समय पड़ने पर ओवरड्राफ्ट (जमा से अधिक निकालने की स्वीकृति) इत्यादि देता है। अब कुछ समय से प्रान्तीय बैंक 'बी' श्रेणी के सदस्यों को भी कर्ज देने लगा है। यह कर्ज लेनेवाले उन समितियों के सदस्यों में से होते हैं, जो प्रांतीय बैंक से सम्बन्धित हैं, और वे अपनी पैदावार की जमानत पर ऋण लेते हैं। बम्बई प्रान्तीय बैंक औद्योगिक सहकारी साख समितियों को भी उनके तैयार माल या कच्चे माल की जमानत पर कर्ज देता है। मदरास बैंक केवल सेन्ट्रल बैंकों से ही कारोबार करता है, वह प्रारम्भिक समितियों से कोई मतलब नहीं रखता। लेकिन वहाँ भी सदस्यों एवं गैर-सदस्यों को सरकारी सिक्यूरिटी, रिजर्व बैंक और इम्पीरियल बैंक के हिस्सों तथा मदरास प्रान्तीय सहकारी बैंक में उनकी डिपाजिट की जमानत पर ऋण देने की सुविधा कर दी गई है। पंजाब प्रान्तीय बैंक व्यक्तियों को केवल बैंक में जमा की हुई उनकी डिपाजिट की जमानत पर ऋण देता है। सिंध में सेन्ट्रल बैंक न होने से, प्रान्तीय बैंक सीधे सहकारी साख समितियों को ही ऋण देता है। यद्यपि पञ्जाब, बिहार, मध्यप्रांत-बरार के प्रान्तीय बैंकों के सदस्य सेन्ट्रल बैंक और प्रारम्भिक समितियाँ दोनों ही हैं, वे ऋण सेन्ट्रल बैंकों को ही देते हैं।

प्रान्तीय बैंकों की आर्थिक मजबूती उनके दिये हुये ऋण की जमानत पर निर्भर है, और उस जमानत की मजबूती अन्त में इस बात पर निर्भर है कि जो रुपया किसान को समितियों द्वारा दिया गया है वह वसूल किया जा सकता है या नहीं। प्रारम्भिक साख समितियों की अपने दिये रुपये को वसूल करने की योग्यता ऋण लेनेवाले सदस्य की ऋण अदा करने की योग्यता तथा अन्य बहुत से कारणों पर निर्भर है। इनमें से कुछ तो निश्चित हैं, कुछ का नियंत्रण हो सकता है और कुछ

का नहीं हो सकता; कुछ प्रकृति पर निर्भर हैं तो कुछ मनुष्यों की इच्छा पर। इन विविध कारणों से हमारे अधिकांश ग्रामीणों का कारबार घाटे का है। जितना व्यय होता है उससे कम आय होती है। सहकारी समितियों के कुछ सदस्य तो ऐसे हैं, जिनका काम बिना ऋण लिए चल ही नहीं सकता। बहुतसों की निर्धनता ही ऋणी होने का प्रधान कारण है। बहुत से ईमानदार सदस्य भी अपना ऋण नहीं चुका पाते, क्योंकि वे नितान्त असमर्थ हैं। यही सहकारी साख आन्दोलन की निर्बलता है।

प्रांतीय बैङ्कों की लगभग वही दशा है, जो सहकारी साख समितियों की है। ऋण बहुत समय हो गया, चुकाये नहीं गये; ऐसे कर्ज की रक़म बढ़ती जा रही है जो वसूल नहीं हो सकेंगे और जो ज़मानत कर्ज के लिये दी गई थी, प्रांतीय बैंकों को उसे जब्त करना पड़ रहा है। हर जगह कुछ कम ज्यादा यही स्थिति है। बरार में तो प्रांतीय बैंक के पास कर्ज की वसूली के एवज़ में भूमि आगई है, जिसके खरीददार नहीं मिलते। बरार, बङ्गाल और बिहार में ग्राम्य सहकारी समितियों की लेनी (जमानत) को जब्त करने का आन्दोलन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है वहाँ आन्दोलत के पुनर्निर्माण का कार्य चल रहा है। आसाम में स्थिति खराब है; वहाँ के रजिस्ट्रार ने भी आंदोलन के पुनर्निर्माण की आवश्यकता बतलाई। युद्ध से उत्पन्न हुई परिस्थिति में खेती की पैदावार का मूल्य बेहद बढ़ गया है और किसान पर कर्ज का बोझ कुछ हल्का हो गया है। ऐसी दशा में स्थिति के सँभल जाने की पूर्ण आशा है।

इस सम्बन्ध में एक बात महत्वपूर्ण है, जिसको हमें भूल न जाना चाहिए। विशेष कर बम्बई और पञ्जाब में, जिन प्रांतीय बैंकों ने लम्बे समय के लिए ऋण देने का प्रयत्न किया और इस अभिप्राय से भूमि-बन्धक बैङ्कों को ऋण देने

के लिए डिबेञ्चर * बेचे, वे कठिनाई में पड़ गये। पञ्जाब और आसाम में प्रान्तीय बैङ्क ही प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैङ्कों को कर्ज देते थे किन्तु अब वहाँ भूमि-बन्धक बैङ्क काम नहीं करते, इसलिए प्रान्तीय बैङ्कों को लम्बे समय के लिए कर्ज देने का प्रश्न ही नहीं उठता। मदरास में एक सेन्ट्रल भूमि-बन्धक बैङ्क है, जो प्रान्त भर के सभी भूमि-बन्धक बैङ्कों को कर्ज देता है, वहाँ प्रान्तीय सहकारी बैंक को इसके लिए एक पृथक् विभाग रखने की आवश्यकता नहीं पड़ी। मध्य प्रदेश का प्रान्तीय सहकारी बैंक भूमि बन्धक बैंकों को भी कर्ज देता है, इस कारण उसमें एक अलग विभाग इस कार्य के लिए स्थापित कर दिया गया है। बङ्गाल में प्रान्तीय सहकारी बैंक सरकार की गारंटी पर ही भूमि-बन्धक बैंकों को कर्ज देना चाहता है।

प्रान्तीय बैङ्क और सेन्ट्रल बैङ्क का सम्बन्ध—प्रान्तीय सहकारी बैंकों तथा सेन्ट्रल बैंकों का सम्बन्ध भिन्न-भिन्न प्रांतों में जुदा जुदा है। वे सेन्ट्रल बैंकों पर कोई नियंत्रण नहीं रखते। सेन्ट्रल बैंक अपना रुपया प्रायः प्रांतीय बैंकों में अथवा सुदृढ़ व्यापारिक बैङ्कों में जमा कर देते हैं। मदरास प्रांत में सेन्ट्रल बैंक अपना सारा रक्षित कोष प्रांतीय सहकारी बैंक में रखते हैं। बम्बई में प्रान्तीय बैंक सहकारी संस्थाओं की मुद्दती जमा पर व्यक्तियों से अधिक सूद देता है। वहाँ प्रांतीय बैंक के नेतृत्व में बम्बई सहकारी बैङ्क एसोसियेशन स्थापित है, जो सेन्ट्रल बैंकों को सम्बद्ध करता है। मदरास में प्रांतीय बैंक सेन्ट्रल बैंकों का वार्षिक सम्मेलन करता है, जिसमें उन बैंकों की नीति और उनके सम्बंध के प्रश्नों पर विचार होता है। मदरास प्रान्तीय बैंक ने संबन्धित सेंट्रल बैंकों का, अपने डायरेक्टरों द्वारा, निरीक्षण कराने की

*डिबेञ्चर वह ऋण-पत्र है जो बैंक या कम्पनी लम्बे समय के लिए साधारण जनता से ऋण लेकर उन्हें दे देती है। ऋण पर निश्चित दर से सूद दिया जाता है।

परिपाटी पहले ही स्थापित कर दी थी, किन्तु अब मदरास सहकारिता कानून के अनुसार उसके कर्मचारी उन बैंकों का निरीक्षण कर सकेंगे। मध्यप्रांत में भी प्रान्तीय बैंक अपने इस्पेक्टर द्वारा सम्बन्धित सेन्ट्रल बैंकों का निरीक्षण कराता है।

उन सभी प्रांतों में जहाँ प्रान्तीय बैंक स्थापित हैं, सेंट्रल बैंक एक-दूसरे को सीधे कर्ज नहीं दे सकते। वास्तव में प्रांतीय बैंकों का कार्य तो यह है कि वे सेन्ट्रल बैंकों के संतुलन-केन्द्र का काम करें, उन्हें बैङ्किग द्रव्य बाजार, कर्ज देने और सूद की दर निर्धारित करने के सम्बंध में परामर्श दें। यद्यपि प्रांतीय बैंकों का सेंट्रल बैंकों पर नियंत्रण वांच्छनीय नहीं है, प्रांतीय बैंकों द्वारा उनका निरीक्षण आवश्यक है।

प्रान्तीय बैङ्क और सहकारिता विभाग—पिछले दिनों इस प्रश्न को लेकर बहुत कुछ खींचातानी रही कि सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रार का प्रान्तीय बैंकों से क्या सम्बंध हो। कहीं-कहीं रजिस्ट्रार द्वारा बहुत नियंत्रण और हस्तक्षेप होता है। इससे बड़ी उलझन पैदा हो जाती है। बङ्गाल, बिहार, और मध्य प्रदेश में रुपया जमा करने वालों का अधिकांश रुपया मारा गया, क्योंकि प्रारम्भिक साख समितियों से कर्ज वसूल नहीं किया जा सकता। वहाँ यह प्रश्न उटाया गया कि यह रुपया सरकार दे, क्योंकि समितियों को वह रुपया सहकारिता विभाग की सिफारिश पर दिया गया था, जो सरकार का एजंट है। वर्मा में प्रांतीय बैंक जब (१९२८-२९) अपने डिपाजिटरों का रुपया अदा नहीं कर सका तो वहाँ की सरकार को ३० लाख रुपया देना पड़ा। इसी प्रकार की स्थिति बङ्गाल में उत्पन्न हो गई, जब सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रार ने प्रान्तीय बैंक को जूट-विक्रय समितियों को कर्ज देने की सिफारिश की और वे समितियाँ रुपया अदा न कर सकीं। सरकार को २४ लाख रुपये, प्रान्तीय बैंक की क्षति-पूर्ति के देने पड़े। परन्तु बङ्गाल, बिहार तथा मध्यप्रान्त-बरार से सेन्ट्रल बैंकों को जो भीषण हानि उठानी पड़ी, उसे देना मंजूर नहीं किया।

प्रान्तीय बैंक के कार्य में रजिस्ट्रार या सहकारिता विभाग के अधिक हस्तक्षेप करने से केवल यही उलझन नहीं उत्पन्न होती, वरन् रजिस्ट्रारों के बदलते रहने और उनकी नीति भिन्न-भिन्न होने के कारण प्रान्तीय बैंक की नीति भी बदलती रहती है। अस्तु, आवश्यकता इस बात की है कि रजिस्ट्रार और उसका विभाग प्रान्तीय बैंक को केवल अपनी राय और सलाह दे, वह बैंक का डायरेक्टर न हो। प्रान्तीय बैंक ऋण देने या न देने का निर्णय स्वयं करे।

प्रान्तीय बैङ्क और रिजर्व बैङ्क—रिजर्व बैंक प्रान्तीय बैंकों और उनसे सम्बधित बैंकों को, सरकारी सिक्यूरिटी की जमानत पर, नकद साख देता है। परन्तु जहाँ तक सरकारी कागज को भुनाने का प्रश्न है, प्रान्तीय बैङ्क और सेन्ट्रल बैंक जब रिजर्व बैंक की इच्छानुसार अपनी आर्थिक स्थिति तथा कारबार को बना लेंगे तभी वह उनके सहकारी कागज को भुनाने की सुविधा देगा। कुछ शर्तें पूरी करने पर, रिजर्व बैंक प्रान्तीय बैंकों को अपना रुपया एक प्रांत से दूसरे प्रांत में भेजने की सुविधा प्रदान करेगा। इस कार्य के लिए उसने सेन्ट्रल बैंकों को प्रांतीय बैङ्कों की शाखा मान लिया है। कुछ प्रांतीय बैंकों ने रिजर्व बैङ्क की योजना को स्वीकार कर लिया है और वे उसमें सम्मिलित हो गये हैं। रिजर्व बैङ्क ने प्रांतीय बैंकों को अपना बैलैंसशीट (लेनी-देनी का लेखा) एक निश्चित रूप में तैयार करने को कहा है और कुछ बैङ्क वैसा करने भी लगे हैं। जैसे जैसे प्रान्तीय बैङ्क अपने कारोबार में, रिजर्व बैंक की इच्छानुसार सुधार करते जावेंगे, वैसे ही वैसे उनका आपसी सम्बन्ध घनिष्ट होता जावेगा। यद्यपि रिजर्व बैंक की स्थापना से सहकारी बैङ्कों को अभी तक वे सब सुविधाएँ नहीं मिली हैं, जो वे चाहते थे, अब अखिल भारतवर्षीय सहकारी या सर्वोपरि बैङ्क की आवश्यकता नहीं रही है।

आय-व्यय परीक्षा—प्रान्तीय बैङ्कों का हिसाब सहकारिता विभाग को जाँचना चाहिए; क्योंकि सहकारिता एक्ट के अनुसार

रजिस्ट्रार का यह मुख्य कार्य है। परन्तु बहुत से प्रान्तों के रजिट्रारों ने यह हिसाब पेशेवर आडिटरों द्वारा जँचवाने की आज्ञा दे दी है। किसी-किसी प्रान्त में उनके द्वारा आडिट हो जाने पर प्रान्त का सहकारिता विभाग फिर आडिट करवाता है। आय-व्यय परीक्षा के अतिरिक्त इन बैंकों को अपनी आर्थिक स्थिति का तिमाही लेखा, रजिस्ट्रार के द्वारा, प्रान्तीय सरकार को भेजना पड़ता है। प्रान्तीय सरकार उस पर अपना मत प्रकट करती है।

उत्तर प्रदेश प्रान्तीय सहकारी बैंक का लेनी देनी लेखा ३० जून १९४९

लाख रुपयों में

देनी		लेनी	
चुकता हिस्सापूँजी	...१३	नकदी	... ३१
रक्षित कोष	...१	सरकारी सिक्युरिटी	... १९
जमा		ऋण	
चालू जमा	...१६	प्रारम्भिक सिमितियों	... २
सेविंग्स जमा	...१३	सेन्ट्रल बैंकों की	... २१
मुद्दती जमा	...२००	बिक्री फेडेरेशन इत्यादि को	...२२१
फुटकर जमा	...१	व्यक्तियों को	... ४
सरकार से प्राप्त ऋण	...५०	बिल जो भुनाये गए	... ४
बिल जो पुनः भुनाये गए	...१	डेड स्टाक	... १
फुटकर देनी	...१	बिल	... २
सूद जो देना है	...१		३०२
बिल...२			
ब्रांचों का हिसाब	...१		
	३००		
१९४८-४९ का लाभ	...२		
	३०२		

बैंक के व्यक्ति तथा समितियां दोनों ही हिस्सेदार हैं। व्यक्तियों ने ४ लाख के हिस्से लिए तथा समितियों के ८॥ लाख के हिस्से हैं। सहकारिता विभाग का रजिस्ट्रार उसका पदेन अध्यक्ष है। ६ डायरेक्टर समितियों के हैं, ३ व्यक्तियों के हैं और २ प्रान्तीय सरकार मनोनीत करती है।

बैंक एक वर्ष से अधिक की जमा नहीं लेता और एक वर्ष की मुद्दती जमा पर ३ प्रतिशत सेविंग्स पर १½ प्रतिशत तथा चालू जमा पर ½ प्रतिशत सूद देता है।

पूर्वीय पंजाब—विभाजन के उपरान्त पंजाब का प्रान्तीय बैंक (लाहौर का) पाकिस्तान में चला गया और उसने पूर्वीय पाकिस्तान की समितियों को अपना रुपया तक नहीं निकालने दिया यही नहीं कि अभी तक पूँजी रक्षित कोष का विभाजन नहीं किया गया वरन समितियों को जमा तक भी नहीं दी गई। पूर्वीय पंजाब की सहकारी समितियों के लिए आर्थिक व्यवस्था करने के लिए सरकार ने नये प्रान्तीय बैंक के स्थापित होने तक अम्बाला सेन्ट्रल बैंक को प्रान्तीय बैंक का कार्य सुपुर्द कर दिया है।

दो वर्षों में इस प्रान्तीय बैंक की प्रगति नीचे लिखे प्रकार हुई:—

हिस्सा पूँजी......६०,२०० रू०

समितियां-सदस्य......८६५

जमा.........६४२,१००

ऋण दिए गए......६,६८,६००

मैसूर—मैसूर प्रान्तीय बैंक की हिस्सा पूंजी ७००,००० रु० है। इसमें ५५०,००० के साधारण हिस्से समितियों के लिए १,५०,००० के प्रिफरेंस हिस्से व्यक्तियों के लिए हैं। १४७ व्यक्ति और १४२६ समितियां बैंक के सदस्य हैं। बैंक सभी प्रकार की जमा लेता है किन्तु अधिकांश मुद्दती जमा होती हैं, बैंक चालू जमा

सेविंग्स जमा और मितव्ययता जमा भी स्वीकार करता है। १६४६ में बैंक की मुद्दती जमा २६ लाख रुपये के लगभग थी।

हैदराबाद—हैदराबाद में भी एक प्रान्तीय बैंक है। इस बैंक के भी व्यक्ति तथा समितियां सदस्य हैं। सहकारिता विभाग का रजिस्ट्रार इसका पदेन सभापति होता है। बोर्ड आव डायरेक्टर में २१ व्यक्ति होते हैं। बैंक सभी प्रकार की जमा स्वीकार करता है। बैंक समितियों को ऋण देने के अतिरिक्त प्रायः सभी बैंकिंग कार्य करता है।

मध्यप्रदेश—मध्यप्रदेश के प्रान्तीय बैंक में केवल व्यक्ति ही हिस्सेदार होते थे किन्तु अब सेंट्रल बैंक तथा समितियाँ ही इसकी हिस्सेदार हैं। बैंक मुद्दती जमा लेता है तथा सरकारी सिक्यूरिटी की जमानत पर व्यक्तियों को ऋण देता है। प्रान्तीय बैंक प्रांत के भूमि बंधक बैंकों को ऋण देता है और उसके लिए डिबेंचर निकालता है बैंक अन्य सभी बैंकिंग कार्य करता है।

बिहार—बिहार के प्रान्तीय बैंक वास्तव में सहकारी बैंक नहीं थे। बैंक का रजिस्ट्रार पदेन डायरेक्टर था और सहकारी विभाग की सिफारिश पर ही बैंक ऋण देता था। किन्तु जब बिहार में सहकारी साख आन्दोलन की स्थिति बिगड़ी तब पुनिर्माण योजना में प्रान्तीय बैंक को सरकार ने बैंकिंग सलाहकार की आधीनता में रख दिया।

अखिल भारतीय प्रान्तीय सहकारी बैंक्ङ एशोशियेशन—इस संस्था का जन्म सन् १६२६ में हुआ। इसका मुख्य कार्य यह है कि प्रत्येक सदस्य-बैङ्क की कार्यशील पूँजी के आँकड़े संग्रह करे, और सब सदस्यों को सूचित करदे, जिससे किस बैंक को पूँजी की आवश्यकता है और कौन बैंक पूँजी दे सकता है, यह सब को ज्ञात हो जाय। सदस्य-बैंकों के आर्थिक प्रश्नों पर राय देना तथा उनकी सहायता करना, प्रान्तीय बैंकों की समय-समय पर कान्फ्रेंस बुलाना, और उसमें प्रान्तीय बैङ्कों तथा साख आन्दोलन के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण प्रश्नों

पर विचार करना भी इसी संस्था के कार्य हैं। जब कभी प्रान्तीय बैंकों को सरकार या रिजर्व बैंक का ध्यान किसी विशेष बात की ओर आकर्षित करना होता है तो यह संस्था उनसे लिखापढ़ी करती है।

प्रान्तीय बैंक सहकारी साख आन्दोलन के संतुलन-केन्द्र होने के अतिरिक्त वे सभी कार्य करते हैं, जो व्यापारिक बैङ्क करते हैं, जैसे हुँडी-पुर्जे का भुनाना इत्यादि। साधारणः प्रान्तीय बैंकों की शाखाएँ नहीं होतीं, किन्तु बम्बई प्रान्तीय बैंक ने, उन क्षेत्रों में जहाँ सेन्ट्रल बैंक नहीं हैं, अपनी शाखाएँ खोल दी हैं, जो उस क्षेत्र की प्रारम्भिक साख समितियों को ऋण देती हैं।

नवाँ परिच्छेद

सहकारी भूमि-बन्धक बैङ्क

भूमि-बन्धक बैङ्कों की आवश्यकता—पहले बताया जा चुका है कि किसान को साधारण खेतीबारी के कारबार को चलाने के लिए थोड़े समय और मध्यम समय के लिए ऋण की आवश्यकता पड़ती है; इसके अन्तर्गत वह सभी ऋण आ जाता है, जो पशु, बीज, खाद, हल तथा अन्य यंत्र खरीदने के लिये, लगान देने के लिये, तथा अपने कुटुम्ब के पालन के लिये लिया जाता है। इसके अतिरिक्त किसान को पुराने ऋण चुकाने के लिये, भूमि की चकबन्दी करने और उसको उपजाऊ बनाने के लिये, कूआँ खोदने के लिए तथा कीमती यन्त्र खरीदने के लिये अधिक समय के वास्ते भी ऋण चाहिये।

ग्राम्य सहकारी साख समितियाँ किसानों को थोड़े समय और मध्यम समय के लिये ऋण देती हैं। आरम्भ में, जब सहकारिता आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ था, लोगों की यह धारणा थी कि साख समितियाँ अधिक समय के लिये भी ऋण दे सकेंगी; साख समितियों के पास इतनी पूँजी थी कि वे सदस्यों के पुराने ऋण चुका सकें, और न ऐसा करना उनके हित में ठीक ही था। इसलिए साख समितियों ने अधिक समय के लिये ऋण देना बन्द कर दिया। अधिकतर प्रान्तीय बैंकिंग इनक्वायरी कमेटियों की यह सम्मति है कि स्थिर सम्पत्ति को बन्धक रख कर अधिक समय के लिये ऋण देना ग्रामीण साख समितियों के लिए ठीक नहीं है। एक तो साख समितियों के, स्थिर सम्पत्ति की जमानत पर; ऋण

देने से व्यक्तिगत साख का महत्व चले जाने की सम्भावना है, जो सहकारिता के सिद्धांतों के विरुद्ध है। दूसरे, सेन्ट्रल बैङ्क तथा ग्रामीण साख समितियों में डिपाजिट थोड़े समय के लिये होती हैं; और थोड़े समय के लिये जमा किये हुए रुपये से अधिक समय के लिए ऋण देना जोखिम से खाली नहीं है। वह बैंकिंग के सिद्धांत के भी विरुद्ध है। तीसरे, अधिक समय के लिये ऋण देने में सम्पत्ति की जमानत लेते समय उसके मूल्य को आंकने तथा उसके स्वामित्व के विषय में जांच करने के लिये अनुभवी कार्यकर्ताओं और कर्मचारियों का आवश्यकता होती है, जो ग्रामीण समितियों के पास नहीं होते। इसके अतिरिक्त एक कठिनाई यह भी है कि भूमि बन्धक रखने पर उसके सम्बन्ध के कागज ग्रामीण समितियों के पास रखने में जोखिम है, और, सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि सदस्यों के ऋण न चुकाने पर समिति की पूँजी फँस जावेगी और समिति को सदस्य के विरुद्ध डिगरी करा कर उस भूमि को नीलाम करवाना होगा। यह सब कानूनी समिति सफलता-पूर्वक नहीं कर सकती।

प्रान्तीय बैंकिङ्ग इनक्वायरी कमेटियों की रिपोर्टों से स्पष्ट है कि प्रान्तीय सहकारी बैङ्क सेन्ट्रल बैंक, तथा साख समितियाँ किसान के पुराने ऋण चुकाने में, या भूमि बन्धक रखकर दीर्घ काल के लिए ऋण देने में, असमर्थ हैं। सेन्ट्रल बैङ्किङ्ग इनक्वायरी कमेटी के सामने गवाही देते हुए प्रान्तीय बैंकों के प्रतिनिधियों ने यही सम्मति दी थी। सेन्ट्रल बैङ्किङ्ग इनक्वायरी कमेटी का भी यही मत है। इधर रिजर्व बैंक ने भी इस बात पर बहुत जोर दिया कि सहकारी साख समितियाँ, सेन्ट्रल बैंक तथा प्रान्तीय बैङ्क थोड़े से समय के लिए ऋण दें। इस कारण अब साख समितियाँ लम्बे समय के लिए ऋण बिलकुल नहीं देतीं। इसके लिये भूमि-बन्धक बैङ्क अधिक उपयुक्त हैं।

भूमि-बंधक बैङ्कों के भेद—भूमि-बन्धक बैङ्क तीन प्रकार

के होते हैं—(१) सहकारी, (२) गैर-सहकारी, (३) अर्ध सहकारी। भूमि-बन्धक बैंक के सदस्य ऋण लेने वाले होते हैं; बैंक की अपनी पूँजी नहीं होती। जो भूमि-बन्धक रख दी जाती है, उसकी जमानत पर बन्धक बांड ('मार्टगेज बांड')बेचे जाते हैं और उनसे पूँजी प्राप्त की जाती है। यह बैंक लाभ को लक्ष्य करके कार्य नहीं करते, वरन् सूद की दर घटाने का प्रयत्न करते हैं।

गैर-सहकारी भूमि-बन्धक बैङ्क मिश्रित पूंजी के होते हैं। जिस प्रकार अन्य व्यापारिक बैङ्क लाभ की दृष्टि से स्थापित किये जाते हैं, वैसे ही यह बैङ्क भी हिस्सेदारों की सम्पत्ति होते हैं और लाभ की दृष्टि से चलाये जाते हैं। किसान इत्यादि अपनी भूमि बन्धक रखकर उनसे ऋण लेते हैं। इस प्रकार के बैङ्क योरोपीय देशों में सर्वत्र स्थापित किये गये हैं, किन्तु राज्य उन पर नियन्त्रण रखता है, जिससे ऋण लेने वालों को तंग न करें। अर्ध सहकारी भूमिबन्धक बैङ्क वे हैं, जो न तो पूर्णरूप से सहकारी होते हैं, और न गैर-सहकारी।

भारतवर्ष में बड़े जमींदारों के लिए गैर-सहकारी तथा किसानों के लिए सहकारी भूमिबन्धक बैङ्क उपयुक्त होंगे! किन्तु यहाँ जो भी भूमिबन्धक बैङ्क स्थापित किये गये हैं, वे अर्ध सहकारी हैं, कोई भी पूर्ण सहकारी नहीं कहा जा सकता। इस समय जो भी कार्य कर रहे हैं वे परिमित दायित्व वाली संस्थाएँ हैं, उनके सदस्य अधिकतर ऋण लेनेवाले ही होते हैं। किन्तु कुछ सदस्य ऐसे भी ले लिये जाते हैं जो ऋण लेनेवाले नहीं होते। इन सदस्यों को बैङ्क के प्रबन्ध में सहायता पहुँचाने तथा पूंजी को आकर्षित करने के उद्देश्य से लिया जाता है। यह लोग प्रान्त के प्रसिद्ध व्यापारी होते हैं। इन सदस्यों को क्रमशः हटा देने की नीति है, जिससे बैङ्क पूर्ण रूप से सहकारी संस्था बन जावे। किन्तु यह बात सब को स्वीकार करनी पड़ती है कि जिस प्रकार रैफीसन सहकारी समितियों में सदस्यों का समिति के कार्य से घनिष्ट सम्बन्ध होता है, वैसा इन बैंकों में नहीं होता।

योजना—सन् १९३६ में रजिस्ट्रार सम्मेलन ने एक प्रस्ताव द्वारा भूमि-बन्धक बैंकों की एक योजना तैयार की थी, वह इस प्रकार है—

बैंक के उद्देश्य—(१) किसानों की भूमि तथा मकानों को छुड़ाना, (२) खेती की भूमि तथा खेतीबारी के धन्धे की उन्नति करना तथा किसानों के मकानों को बनवाना, (३) पुराने ऋण को चुकाना, (४) भूमि खरीदने के लिये रुपया देना।

भूमि-बन्धक बैंक का कार्यक्षेत्र छोटा होना चाहिए, किन्तु इतना छोटा भी न हो कि उसका ठीक प्रबन्ध न हो सके। यह नियम न बनाया जावे कि ऋण केवल साख-समितियों को ही दिया जावेगा; हाँ, यदि ऋण लेनेवाला साख समितियों का सदस्य हो तो उसके विषय में समिति का मत ले लिया जावे, किंतु समिति पर उस ऋण का कोई उत्तरदायित्व न रहे।

सदस्य को उसकी सम्पत्ति के मूल्य के आधे से अधिक ऋण न दिया जाय। प्रत्येक सदस्य बैंक का हिस्सा खरीदे, जिससे बैंक के पास अपनी निजी पूँजी हो जावे, उसकी जमानत पर बैंक को बाहर से पूँजी मिल सके। ऋण लेनेवाले के हिस्से का मूल्य, जितना ऋण वह लेना चाहता है, उसका बीसवाँ हिस्सा होना चाहिए। प्रत्येक बैंक अपनी आर्थिक स्थिति को देखते हुए एक रकम निश्चित कर ले, जिससे अधिक ऋण किसी भी सदस्य को न दिया जावे। प्रान्त के सब भूमि-बन्धक बैंक अपना एक संगठन करें और एक केन्द्रीय संस्था स्थापित की जावे। केवल केन्द्रीय संस्था ही डिबेञ्चर बेचे, पृथक्-पृथक् भूमि-बंधक बैंक डिबेञ्चर न बेचें।

शाही कृषि कमीशन ने भी रजिस्ट्रार सम्मेलन के प्रस्ताव का अनुमोदन किया। उसकी सम्मति में सहकारी भूमि-बन्धक बैंक अधिक उपयुक्त हैं। कृषि कमीशन के सामने यह प्रश्न उपस्थित किया गया था कि सरकार भूमि-बन्धक बैंक के डिबेञ्चरों को खरीदे, अथवा नहीं।

कमीशन का मत था कि सरकार को इन बैंकों के डिबेञ्चरों पर सूद की गारंटी देना चाहिए और उनको ट्रस्टी सिक्यूरिटी बना देना चाहिए। डिबेञ्चर केन्द्रीय संस्था बेचे। कुछ वर्षों तक बैङ्क की प्रबन्धकारिणी समिति में एक सरकारी कर्मचारी अवश्य रखा जावे।

सन् १६२८ में रजिस्ट्रार-सम्मेलन ने कृषि-कमीशन की रिपोर्ट पर विचार किया। सम्मेलन ने कृषि कमीशन की सम्मति का अनुमोदन किया, केवल एक बात पर सम्मेलन ने यह प्रस्ताव पास किया कि सरकार को इन बैङ्कों के डिबेञ्चर खरीद कर तथा इनको ऋण देकर सहायता देनी चाहिये।

विचारणीय प्रश्न—सेन्ट्रल बैङ्किंग इनक्वायरी कमेटी के सामने भूमि-बन्धक बैङ्कों के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रश्न उपस्थित हुए थे:—

(१) ऐसी कौन-कौनसी आर्थिक आवश्यकताएँ हैं; जिनके लिये किसान को अधिक लम्बे समय के लिये ऋण देना उचित है?

(२) अधिक से अधिक कितने समय के लिए ऋण देना चाहिये और उसके चुकाये जाने का ढङ्ग क्या होना चाहिये?

(३) भूमिबंधक बैङ्क अपनी कार्यशील पूँजी कैसे इकट्ठी करें, क्या हिस्से खरीदना आवश्यक माना जावे, उस दशा में ऋण तथा हिस्सों के मूल्य का क्या अनुपात हो? यदि डिबेञ्चर बेचकर कार्यशील पूंजी इकट्ठा करना अभीष्ट हो तो प्रत्येक भूमि बन्धक बैंक को यह अधिकार दिया जावे, अथवा किसी एक केन्द्रीय संस्था को; प्रत्येक भूमि बंधक बैङ्कों को यह अधिकार न दिया जावे तो प्रांतीय सहकारी बैङ्क यह कार्य करे अथवा इसके लिए कोई पृथक् सेंट्रल भूमि-बन्धक बैङ्क स्थापित किया जावे?

(४) क्या भूमिबन्धक बैङ्क साधारण बैङ्कों तथा सरकारी सेन्ट्रल बैङ्कों की भाँति डिपाजिट लें तो उसके लिए क्या शर्तें होनी चाहिये?

(५) जहाँ सहकारी साख समिति तथा भूमि-बन्धक बैङ्क एक ही स्थान पर हों वहाँ उनका क्या सम्बन्ध होना चाहिए ?

(६) क्या सरकार इन बैंकों को आर्थिक सहायता दे ? यदि दे तो किस प्रकार दे—बैंकों को ऋण देकर, बैंकों को टैक्स तथा फीस से मुक्त करके, डिबेञ्चरों के मूल तथा सूद की गारंटी देकर, उनको ट्रस्टी सिक्यूरिटी बनाकर अथवा डिबेञ्चर खरीद कर ?

(७) क्या एक विशेष कानून बनाकर इन बैंकों को यह अधिकार देना चाहिये कि बिना अदालत में गये हुए बन्धक रखी हुई भूमि को बेचदें ?

सेंट्रल बैंकिङ्ग इनकायरी कमेटी की यह सम्मति तो हम पहले ही लिख चुके हैं कि बड़े-बड़े जमीदारों के लिये मिश्रित पूँजीवाले व्यापारिक भूमि-बंधक बैङ्क स्थापित किये जाँय और किसानों के लिए सहकारी भूमि बंधक बैंक। ऊपर लिखे अन्य प्रश्नों पर कमेटी की सम्मति नीचे लिखी जाती है—

कमेटी की राय में निम्नलिखित कार्यों के लिए ऋण देना चाहिए —(क) किसान की भूमि और मकान को छुड़ाने के लिए तथा पुराने ऋण को चुकाने के लिये, (ख) भूमि तथा खेतीबारी के ढङ्ग सुधारने के लिये तथा किसानों के मकान बनवाने के लिए। (ग) विशेष अवस्थाओं में भूमि खरीदने के लिये।

ऋण कितना दिया जावे, और कितने समय के लिये यह ऋण लेनेवाले की क्षमता तथा जिस कार्य के लिये ऋण लिया जा रहा है, उस पर निर्भर होगा। रुपया पाँच वर्ष से लेकर बीस वर्ष के लिये दिया जावे। आगे चलकर तीस वर्ष के लिये भी रुपया दिया जा सकता है। कमेटी की सम्मति में ५००० रु० से अधिक एक सदस्य को न दिया जावे, सदस्य की भूमि का आधे से अधिक ऋण किसी भी दशा में न दिया जावे।

कमेटी की राय में ऋण में सूद सहित बराबर किस्तों में अदा किया जावे, जिससे कि एक निश्चित समय पर ऋण चुक जावे; इससे यह लाभ होगा कि किसान को लगभग उतनी ही किस्त देनी होगी, जितनी वह महाजन को केवल सूद में देता है। किंतु बैंकों को यह अधिकार दे दिया जावे कि यदि वे चाहें तो दूसरे ढंग के किस्तें वसूल कर सकते हैं।

भूमि-बंधक बैंकों की कार्यशील पूँजी हिस्सा-पूँजी तथा डिवेञ्चरों से प्राप्त की जानी चाहिये। हिस्सा-पूँजी दो प्रकार से प्राप्त की जा सकती है—एक तो आरम्भ में हिस्सा बेच कर, दूसरे ऋण लेते समय दी हुई रकम में से पाँच प्रतिशत काट कर हिस्से का मूल्य वसूल करने से। किन्तु आरम्भ में काम चलाने के लिये जहाँ कहीं भी आवश्यकता हो प्रान्तीय सरकार बैंकों को बिना सूद के रूपया दे दे और डिबेंचर बिकने पर जो रुपया आवे, उसमें से सरकार को रुपया दे दिया जावे। ध्यान रहे कि पूँजी की व्यवस्था बैंकों के प्रारम्भिक काल में ही उपयुक्त होगी। विशेषज्ञों का कथन है कि आगे चलकर इन बैंकों को बहुत पूँजी की आवश्यकता होगी, उस समय प्रान्तीय सरकारों को इन बैंको के हिस्से खरीद कर इनको सहायता पहुँचानी चाहिए।

अधिकतर कार्यशील पूँजी डिबेञ्चरों के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। सेंट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी के सामने गवाही देते हुए कुछ विदेशी विशेषज्ञों ने कहा था कि बैंकों की जितनी हिस्सा-पूँजी हो उससे पांच गुने डिबेंचर निकालना चाहिए, किन्तु कमेटी इससे सहमत नहीं है। कमेटी की राय में बैंक जितने मूल्य के डिबेञ्चर निकालना आवश्यक समझे, निकाले, किन्तु डिबेञ्चरों का मूल्य भूमि बन्धक रखकर दिये हुए ऋण से अधिक न होना चाहिए, क्योंकि उस भूमि की जमानत पर ही डिबेञ्चर निकाले जायँगे। डिबेञ्चरों को सफलतापूर्वक बेचने के लिए सरकार द्वारा मूलधन की गारंटी दी जाने की

आवश्यकता प्रतीत नहीं होती; हाँ, सूद की गारंटी सरकार को अवश्य दे देनी चाहिये। कमेटी की यह भी सम्मति है कि यदि सरकार को इस बात का संतोष हो जावे बैंक ने डिबेञ्चरों को चुकाने का प्रबन्ध कर लिया है तो उसे इन डिबेञ्चरों को ट्रस्टी-सिक्यूरिटी बना देना चाहिये।

कमेटी की सम्मति है कि डिबेञ्चर एक केन्द्रीय संस्था (प्रान्तीय भूमि-बन्धक बैंक) निकाले, और जिला भूमि-बन्धन बैङ्क उनको बेचे। जिला बैंक बन्धक की जमानत पर प्रान्तीय बैंक से पूँजी लेले और प्रान्तीय बैंक उस सिक्यूरिटी पर निर्भर होकर डिबेञ्चर निकाले। बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी की यह स्पष्ट सम्मति है कि सहकारी साख समितियाँ सहकारी सेन्ट्रल बैंक, तथा प्रांतीय सहकारी बैङ्क थोड़े समय के लिये किसान को साख देने का प्रबन्ध करें, और प्रान्तीय भूमि-बन्धक बैंक अधिक समय के लिए साख दें। जहाँ सहकारी साख समिति तथा भूमि बन्धक बैङ्क दोनों ही कार्य कर रहे हों, वहाँ दोनों संस्थाओं को एक दूसरे से बिलकुल स्वतन्त्र रहना चाहिये ; हाँ, दोनों में सहयोग होना आवश्यक है। यदि कोई साख समिति का सदस्य भूमि-बन्धक बैंक से ऋण लेने के लिए प्रार्थनापत्र दे तो समिति से उसके विषय में पूछ-ताछ करले, किन्तु समिति ऋण की जिम्मेदार न होगी।

कमेटी, भूमि-बन्धक बैंक के लिये, बाहर की डिपाजिट लेना उचित नहीं समझती; कारण यह है कि बैंक को अधिक लम्बे समय के लिये ऋण देना पड़ता है। अस्तु डिपाजिट रुपए से ऋण देना बैंक के लिए उचित न होगा।

भूमि बेचने का अधिकार—भूमि-बन्धक बैंकों की सफलता के लिये सहकारितावादी यह आवश्यक समझते हैं कि बैंकों को यह अधिकार दिया जावे कि वे बिना अदालत में गये अपना रुपया वसूल करने के लिए बन्धक रखी हुई भूमि जब्त करले और बेचदें। अधिकतर प्रांतीय बैंकिंग इनक्वायरी कमेटियों ने इस माँग का विरोध किया है। उनका कहना है कि जब बैंक इस अधिकार का उपयोग

करेंगे तब जनता में विरोधी वातावरण तैयार हो जायगा। उनके विरोध का दूसरा कारण यह है कि बैंकों को यह अधिकार दे दिया गया तो वे ऋण देते समय भूमि की भली भांति जाँच-पड़ताल नहीं करेगें। उनके विचार से यदि बैंक सावधानी से कार्य करे और उनका प्रबन्ध अच्छा हो तो मुकदमेबाजी की आवश्यकता न पड़ेगी। जो लोग बैङ्क को यह अधिकार देने के पक्ष में हैं, उनका कथन है कि यदि कोई विशेष कानून बनाकर यह अधिकार न दे दिया गया तो बैङ्क को अदालत की शरण लेनी पड़ेगी, अथवा रजिस्ट्रार द्वारा नियुक्त किये गये पंच के सामने मुकदमा लड़ना पड़ेगा। भारतवर्ष में सम्पत्ति का हस्तान्तर करण कानून तथा जाब्ता दीवानी इतने पेचीदे हैं कि बैंक को डिगरी कराने में बहुत समय तथा धन नष्ट करना होगा। इसका फल यह होगा कि बैङ्क को कार्य करने में बहुत सी रुकावटों का सामना करना होगा तथा डिबेञ्चरों की बिक्री पर इसका बुरा असर होगा। योरोपीय देशों में भी भूमि-बन्धक बैंकों को विशेष कानून बनाकर यह अधिकार दिया गया है कि यदि देनदार ऋण नहीं चुकाता तो बैंक बिना अदालत में गये भूमि को बेच सकता है। सेन्ट्रल बैंकिङ्ग इनक्वायरी कमेटी का मत है कि बिना यह अधिकार दिये डिबेंचर बेचकर कार्यशील पूँजी प्राप्त नहीं की जा सकती; जनता डिबेंचर को न लेगी। अस्तु, कमेटी ने इस माँग का समर्थन किया है; साथ ही यह भी कहा है कि देनदार को यह अधिकार होना चाहिये कि यदि वह समझता है कि बैंक का कार्य न्यायपूर्ण नहीं है तो वह अदालत की शरण ले सके। बैंक के हिस्सेदार तथा अन्य किसी लेनदार को भूमि के बैंक द्वारा जब्त कर लेने पर, यदि हानि होती हो तो वह भी अदालत की शरण में जा सकता है।

भारतवर्ष के कुछ प्रान्तों में भूमि हस्तान्तर कानून लागू हैं। इस कानून के अनुसार कुछ जातियाँ खेतिहार जातियाँ मान ली गई हैं उन्हीं जातियों के लोग भूमि मोल ले सकते हैं। यह कानून पूर्वी पञ्जाब

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, देहली और अजमेर-मेरवाड़े के कुछ भागों में लागू है। इन प्रांतों में भूमि-बन्धक बैंकों को अधिकार मिल जाने पर भी भूमि के बेचने में अड़चन होगी। इसके अतिरिक्त बहुत से प्रान्तों में काश्तकारी कानून के कारण भी भूमि के बेचने में रुकावटें होंगी। प्रान्तीय बैंकिंग इनक्वायरी कमेटियों का मत है कि भूमि हस्तान्तर कानून से विशेष लाभ नहीं हुआ है। अस्तु, इन कानूनों में ऐसा परिवर्तन कर देना चाहिए कि बैंकों को भूमि बेचने में कोई रुकावट न हो।

भूमि-बन्धक बैंकों की दशा

पंजाब—भारतवर्ष में सबसे पहला भूमि बन्धक बैंक पंजाब के झंग जिले में १६२० में स्थापित हुआ। उसके उपरान्त यहाँ १२ भूमिबन्धक बैंक और भी स्थापित हुए, किन्तु वे सफल नहीं हुए। १६२६ के बाद जो भयंकर आर्थिक मन्दी आरम्भ हुई, उसके कारण भूमि के मूल्य में भारी कमी हुई। भूमि हस्तान्तरित कानून के लागू होने से तथा डायरेक्टर और अवैतनिक कार्यकर्ताओं के अधिक ऋण ले लेने के कारण यह बैंक असफल हो गये। केवल दो बैंक कुछ काम कर रहे हैं। इन्हें प्रान्तीय बैंक ही ऋण देता है।

मदरास—मदरास में भूमि-बन्धक बैंकों को बहुत सफलता मिली है। इस समय यहाँ १२० बैंक कार्य कर रहे हैं, जो ४५२० गाँवों के क्षेत्र में काम करते हैं और भविष्य में १७,२५० गांवों के क्षेत्र को अपना कार्यक्षेत्र बनावेंगे। इस समय इन बैंकों ने ४ करोड़ रुपये के लगभग ऋण दिया है, प्रति वर्ष पचास लाख रुपये के लगभग ऋण दिया जाता है। किसानों को जो ऋण दिया जाता है उस पर केवल ६ प्रतिशत सूद लिया जाता है १६४० में जो मदरास सहकारिता कमेटी बैठी, उसने प्रांत में ७७ भूमि-बंधक बैंक स्थापित होने की आवश्यकता बतलाई थी, जिससे प्रत्येक सिंचाई के साधनों से युक्त ताल्लुके में

एक और सूखे प्रदेश में दो या तीन ताल्लुकों के बीच एक बैंक हो सके।

मदरास में आरम्भ में प्रत्येक भूमि-बन्धक बैंक अपने डिबेञ्चर बेचता था। सन् १९२९ में सेन्ट्रल भूमि बंधक बैङ्क स्थापित हुआ, तब से सब प्रारम्भिक भूमि-बंधक बैंकों के लिए वही डिबेञ्चर बेचता है। इससे द्रव्य-बाजार में भूमि-बंधक बैंकों में आपस में जो प्रतिस्पर्द्धा होती थी, वह बच गई, और पूँजी कम सूद पर मिल जाती है।

प्रत्येक बैंक का क्षेत्र एक ताल्लुका है। प्रत्येक भूमि-बंधक बैंक सेन्ट्रल भूमि-बंधक बैंक से ऋण लेता है, जो भूमि-बंधक बैंक की हिस्सा पूँजी और रक्षित कोष का बीस गुना तक ऋण दे देती है। प्रारम्भिक भूमि-बधक बैंक अपने सदस्यों को उनकी भूमि के मूल्य का २५ प्रतिशत से ५० प्रतिशत ऋण देते हैं। बन्धक रखी हुई भूमि की कीमत हर साल जांची जाती है, जिससे यदि वह गिर रही हो, तो सदस्य से और रुपया वसूल कर लिया जावे और बैंक को घाटा न सहना पड़े! किसी भी व्यक्ति को पांच हजार रुपये से अधिक ऋण नहीं दिया जाता। जिस सूद पर प्रारम्भिक बैङ्क सेन्ट्रल भूमि-बंधक बैंक से ऋण पाता है, उससे एक फी सदी अधिक सूद पर सदस्यों को ऋण दिया जाता है। सदस्यों को कर्ज २० वर्ष के लिये दिया जाता है। सदस्य किस्तों में रुपया अदा कर देता है।

जिन बातों के लिए ऋण दिया जा सकता है, वे निम्नलिखित हैं:— (१) खेती की भूमि को बन्धक से छुड़ाना (२) पुराने कर्ज को चुकाना, (३) खेती की भूमि में सुधार करना, तथा खेती के ढंग में सुधार करना (४) भूमि को मोल लेना, और (५) खेतों की चकबन्दी करना। किन्तु व्यवहार में अभी तक कर्ज पुराने कर्जे को चुकाने के लिए ही दिया जाता है।

बैंक का प्रबन्ध एक बोर्ड करता है; उसके ९ सदस्य होते हैं, जो अवैतनिक कार्य करते हैं। जब कोई किसान बैङ्क से कर्ज लेना चाहता

है तो बैंक के छपे हुए फार्म पर अपनी लेनी और देनी पूरा हवाला भर कर और साथ में अपनी भूमि सम्बन्धी कागजात नत्थी करके अपने क्षेत्र के बैङ्क को प्रार्थनापत्र दे देता है। तब बैंक का एक डायरेक्टर और सुपरवाइजर उस किसान के खेतों का मूल्य, उनकी पैदावार, और किसान के ऋण चुका सकने की क्षमता की पूरी जाँच करता है। तदुपरान्त इस आशय का एक सर्टिफिकट प्राप्त किया जाता है कि उस पर जमीन पर कोई कर्ज़ लिया हुआ नहीं है। इतना हो चुकने पर बैंक का कानूनी सलाहकार उन कागजों को देखकर किसान का स्वामित्व ठीक है या नहीं, उस पर अपनी रिपोर्ट देता है. और सारे कागजात सहकारिता विभाग के सब-रजिस्ट्रार के पास भेज दिये जाते हैं. जो इसी काम के लिये नियुक्त किया गया है। सब-रजिस्ट्रार उस भूमि की जाँच करके अपनी रिपोर्ट देता है। बैंक का संचालक-बोर्ड उस रिपोर्ट के आधार पर कर्ज देना स्वीकार अथवा अस्वीकार करता है। स्वीकृत प्रार्थना पत्र भूमि-बन्धक बैङ्कों के डिप्टी-रजिस्ट्रार के पास भेज दिये जाते हैं, जो उनको अपनी सिफारिश सहित सेन्ट्रल भूमि-बन्धक बैङ्क के पास भेज देते हैं। सेन्ट्रल भूमि-बन्धक बैङ्क के दफ्तरों में सब कागजों की जाँच होकर वे बैंक की कार्यकारिणी समिति के सामने रखे जाते हैं। जब सेन्ट्रल बैङ्क ऋण देना स्वीकार कर लेता है तो उसकी सूचना प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैङ्क को दे दी जाती है; प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैंक प्रार्थी से बन्धक पत्र लिखा कर उसे सेन्ट्रल बैंक के नाम करा देता है। सेन्ट्रल भूमि-बन्धक बैंक बन्धक-पत्र पाने पर प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैंक को ऋण दे देता है और प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैङ्क सदस्य को कर्ज दे देता है।

सरकार ने भूमि-बन्धक बैंकों को बहुत सी सुविधाएँ दे रखी हैं, जैसे कागजात की रजिस्ट्री करने के लिए उन्हें आधी ही फीस देनी पड़ती है। यह मालूम करने के लिए कि भूमि पर और कोई ऋण लिया हुआ है या नहीं, और उसका सर्टिफिकट प्राप्त करने के लिये

२००० रु० से कम ऋण के लिए कोई फीस नहीं ली जाती, और उससे अधिक की अर्ज़ी के लिए आधी फीस ली जाती है। गांव के नक्शे, बन्दोबस्त के रजिस्टर और ज़िले का गजट बिना मूल्य दिया जाता है।

मदरास सहकारी भूमि-बन्धक बैंक एक्ट के अनुसार भूमि बन्धकों को कुछ विशेष सुविधाएँ दी गई हैं। सदस्यों से रुपया वसूल करने में आसानी हो, इसलिए भूमि-बन्धक बैङ्कों को यह अधिकार दे दिया गया है कि यदि सदस्य रुपया न अदा करें, तो बन्धक रखी हुई भूमि पर उत्पन्न हुई फसल को रोक दें और उसे बेच दें। यही नहीं, बैंक को बन्धक रखी हुई भूमि बिना अदालत से डिगरी कराये ही, बेच देने का भी अधिकार दे दिया गया है। एक्ट से प्रान्तीय सरकार को यह अधिकार है कि सेन्ट्रल भूमि-बन्धक बैंक के डिबेञ्चरों की अदायगी की गारंटी करदे। सेन्ट्रल भूमि-बन्धक बैंक को प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैंकों की देखभाल का अधिकार प्राप्त है।

मदरास सेन्ट्रल भूमि-बन्धक बैङ्क की स्थापना १६२६ में हुई थी। इसके सदस्य व्यक्ति और प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैंक होते हैं। सेन्ट्रल भूमि बंधक बैंक का संचालन एक संचालक बोर्ड करता है, जिसमें व्यक्तियों और प्रारम्भिक भूमि-बंधक बैंकों के चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं। रजिस्ट्रार भी एक व्यक्ति को नियुक्त करता है। दैनिक कार्य की देखरेख एक कार्यकारिणी समिति करती है।

इस समय बैंक, सूद की जिस दर पर डिबेञ्चर निकालता है, उससे दो प्रतिशत अधिक पर वह प्रारम्भिक बैंकों को ऋण देता है। साधारणतः सेन्ट्रल भूमि बन्धक बैंक साढ़े तीन प्रतिशत पर डिबेञ्चर बेचता है और साढ़े पांच प्रतिशत पर प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैंकों को देता है। प्रारम्भिक भूमि बन्धक बैंक एक फी सदी बढ़ा कर साढ़े छः प्रतिशत सूद पर सदस्यों को ऋण देते हैं।

सेन्ट्रल बैंक डिबेञ्चर बेच कर भी रुपया प्राप्त करता है। डिबेञ्चर

खरीदनेवालों के हितों की रक्षा सहकारिता विभाग का रजिस्ट्रार करता है, जो उनके ट्रस्टी की हैसियत से काम करता है।

भूमि-बन्धक बैंक कानून पास हो जाने के उपरान्त प्रांतीय सरकार ने डिबेञ्चरों के मूलधन और उसके सूद की गारटी दे दी है। अभी तीन करोड़ से कुछ अधिक डिबेञ्चरों की गारंटी है; आवश्यकतानुसार उसको बढ़ाया भी जा सकता है। मूलधन और सूद की गारंटी हो जाने से डिबेञ्चर ट्रस्टी सिक्यूरिटी मान लिये गए हैं, जिनमें अर्द्ध सरकारी और सरकारी संस्थाएँ अपना रुपया जमा कर सकती हैं। रिजर्व बैंक की सलाह के अनुसार मदरास प्रान्तीय सरकार ने सेन्ट्रल भूमि-बंधक बैंक को इन डिबेञ्चरों की अदायगी के लिए एक ऋण-परिशोध कोष स्थापित करने पर विवश किया है। प्रतिवर्ष इस कोष में निश्चित रकम जमा कर दी जाती है, जिससे डिबेञ्चरों की अदायगी समय पर हो सके।

सेन्ट्रल भूमि-बन्धक बैंक का संचालन बहुत ही सतर्कतापूर्वक हो रहा है। प्रतिवर्ष लाभ का ४० प्रतिशत रक्षित कोष में जमा किया जाता है, और केवल साढ़े चार प्रतिशत लाभ बांटा जाता है। अतएव बैंक की आर्थिक स्थिति बहुत दृढ़ है।

बम्बई—बम्बई में १७ भूमि-बन्धक बैंक कार्य कर रहे हैं। ये बैंक प्रान्तीय भूमि-बन्धक बैंक से सम्बन्धित है, जो इन्हें ऋण देता है। जिन कार्यों के लिये ये बैंक अपने सदस्यों को ऋण देते हैं वे लगभग वही हैं जो मदरास में हैं। प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैंक अपना हिस्सा-पूँजी और रक्षित कोष का बीस गुना ऋण, प्रान्तीय भूमि बन्धक बैंक से पा सकता है। प्रारंभिक भूमि-बन्धक के संचालक बोर्ड में एक डायरेक्टर रजिस्ट्रार द्वारा नियुक्त, तथा एक प्रान्तीय भूमि बन्धक बैंक द्वारा और एक उस क्षेत्र के सहकारी सेन्ट्रल बैंक द्वारा मनोनीत रहता है। प्रत्येक प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैंक में एक मैनेजर और एक भूमि का

मूल्य जाँचनेवाला अफसर रहता है, जो बैङ्क के कार्य का संचालन करते हैं।

ऋण बीस वर्ष से अधिक समय के लिए और १०,००० रु० से अधिक रकम का, नहीं दिया जाता। ऋण देने में लगभग वही कार्यवाही करना पड़ती है, जो मद्रास में करनी पड़ती है।

प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैंक साढ़े छः प्रतिशत सूद पर सदस्यों को ऋण देते हैं। नियम के अनुसार प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैंक अपने लाभ का ५० प्रतिशत रक्षित कोष में रखता है, और सवा छः प्रतिशत से अधिक लाभ नहीं बाँट सकता।

प्रांतीय भूमि-बन्धक बैङ्क डिबेञ्चर बेच कर कार्यशील पूँजी प्राप्त करता है, जिनके मूलधन और सूद की अदायगी की गारंटी प्रांतीय सरकार ने दे रखी है, और जो ट्रस्टी-सिक्यूरिटी मान लिए गए हैं। यह बैंक रक्षित कोष के अलावा ऋण परिशोध कोष भी रखता है।

आसाम—आसाम में ४० भूमि बन्धक बैङ्क थे, किन्तु वे नितांत असफल रहे। अब वे सदस्यों को ऋण नहीं देते।

बंगाल—बंगाल में ५ प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैङ्क हैं, जिन्हें प्रांतीय सहकारी बैंक कुछ समय पूर्व तक ऋण देता था, किन्तु अब प्रान्तीय बैंक ने उन्हें उस समय तक ऋण देना बन्द कर दिया है, जब तक प्रान्तीय सरकार से उस सम्बन्ध में बात तय न हो जावे।

मध्यप्रदेश—मध्यप्रदेश में २१ भूमि-बन्धक बैंक है। उन्हें प्रान्तीय सहकारी बैंक ऋण देता हैं, जिसकी भूमि-बन्धक शाख इस कार्य को करती है। प्रान्तीय बैंक इस कार्य के लिए २५ वर्षों के डिबेञ्चर निकालता है। प्रान्तीय सरकार ने ५० लाख रुपये तक के डिबेञ्चरों के मूलधन और सूद की अदायगी की गारंटी दे दी है। सरकार ने टिनेंसी एक्ट में संशोधन करके मौरूसी और सीर जमीन को भी भूमि बन्धक बैंक के पास बन्धक रखने की सुविधा दे दी है।

उड़ीसा—उड़ीसा में एक प्रान्तीय भूमि-बन्धक बैंक कुछ समय से स्थापित हैं, वह अपनी शाखाओं द्वारा सदस्यों को ऋण देता है।

उत्तर प्रदेश—उत्तर प्रदेश में केवल ६ भूमि-बन्धक सहकारी समितियाँ हैं। वे मदरास के प्रारम्भिक भूमि-बन्धक बैंको की अपेक्षा बहुत छोटी हैं, और सहकारी सेन्ट्रल बैंकों से ऋण लेकर सदस्यों को देती हैं। यहाँ भूमि-बन्धक बैंको की उन्नति उस समय तक नहीं हो सकती जब तक मध्यप्रदेश की तरह कानून में यह संशोधन न कर दिया जावे कि मौरूसी काश्तकार भी अपनी जमीन बन्धक रख सकता है और जब तक प्रान्तीय भूमि-बन्धक बैंक न स्थापित किया जावे जो डिबेञ्चर निकाले। इन ६ भूमि-बंधक समितियों के केवल ८५० सदस्य है और २ लाख रुपये कार्य शील पूँजी है।

अजमेर—अजमेर-मेरवाड़ा में तीन भूमि-बंधक बैंक हैं, जिनकी स्थिति अच्छी नहीं है।

देशी राज्यों में भूमि-बन्धक बैंक मैसूर, कोचीन, और बड़ौदा में हैं। मैसूर में ५२ भूमि बन्धक बैंक है जो सफलता पूर्वक कार्य कर रहे हैं।

विशेष वक्तव्य—भारतवर्ष के भूमि-बन्धक बैंकों के कार्य का सिंहावलोकन करते हुए रिजर्व बैंक ने इस बात पर जोर दिया है कि इन बैंकों को केवल पुराने ऋण को चुकाने के लिए ही नहीं, वरन् खेती और भूमि की उन्नति के लिए भी कर्ज देना चाहिये। ये बैंक कुल मिलाकर २७१ हैं, और सदस्यों की सँख्या १,१६,७८२ है। इनकी कार्यशील पूँजी का व्योरा इस प्रकार है:—

हिस्सा पूँजी	...	४६,१६,६६७ रुपए
जनता द्वारा खरीदे हुये डिबेञ्चर	...	३,६४,०२,५५५ ,,
सरकार द्वारा खरीदे हुये डिबेञ्चर	...	७,१६,१०८ ,,
डिपाज़िट	...	१६,६६,५५६ ,,
रक्षित कोष	...	२३,०६,८६० ,,
ऋण	...	३,२३,६६,८७८ ,,
कुल कार्यशील पूंजी	...	७,५८,१७,६६४ ,,

दसवाँ परिच्छेद

सहकारिता आन्दोलन का पुनर्निर्माण

सहकारी साख आन्दोलन की दशा गिरी हुई होने, और कुछ प्रान्तों में आंदोलन लगभग नष्ट हो जाने के कारण इस बात की आवश्यकता हुई कि आंदोलन की जाँच और पुनर्निर्माण किया जाय। यद्यपि सभी प्रांतो में पुनर्निर्माण का विचार हुआ, बिहार, बङ्गाल और मध्यप्रांत की योजनाएँ मुख्य हैं।

पुनर्निर्माण की योजना—इन योजनाओं के मूल में विशेष अन्तर नहीं है। सब के पहले सहकारी साख के दिये हुए कर्जों की जाँच की जाती है और उनको इतना कम कर दिया जाता है कि सदस्य उसको चुका सकें। ऐसा करते समय सदस्य की हैसियत और उसकी सम्पत्ति का ध्यान रखा जाता है। फिर कम की हुई रकम को किस्तों में बाँट दिया जाता है, जिन्हें सदस्य धीरे-धीरे अदा करता है। किसी भी दशा में बीस वर्षों से अधिक के लिए किस्तें नहीं बांधी जातीं। सदस्यों के ऋण न चुकने के कारण जो भूमि समितियों के कब्जे में आ गयी हो, वह उनके पहले मालिकों को 'किराये पर खरीद' ('हायरपर्चेज') पद्धति से दे दी जाती है; सदस्यों के ऋण की रकम चुकाकर किस्तें बाँध दी जाती हैं, उनके अदा कर देने पर भूमि उसके पहले मलिक को दे दी जाती है।

सदस्यों के ऋण को कम करने में जो घाटा होता है, या जिन सदस्यों से ऋण वसूल ही नहीं किया जा सकता, उनकी रकम बट्टे खाते में डाल दी जाती है और समितियों के रक्षित कोष या हिस्सा-पूँजी से उस हानि को पूरा किया जाता है। यदि समितियाँ उस हानि को

सहन करने में असमर्थ होती हैं, तो सेन्ट्रल बैंक उसे, जो उसकी रकम समितियों पर उधार होती हैं, उसी अनुपात में कम कर देता है। और, जो समितियाँ अपनी देनी को चुकाने में असमर्थ होती हैं, उन्हें तोड़ दिया जाता है। सेन्ट्रल बैंकों की लेनी और देनी की भी पूरी जाँच की जाती है, और यदि इससे ज्ञात होता हैं कि सेन्ट्रल बैंक अपनी देनी को नहीं चुका सकते तो उनके लेनदारों को उसी अनुपात में अपनी रकम कम कर देने के लिए कहा जाता है। इस प्रकार मध्यप्रदेश और बङ्गाल में सेन्ट्रल बैंकों ने लेनदारों की रकम को घटा दिया था। बंगाल में लेनदारों की रकम घटा कर जो शेष रही. उसके डिबेञ्चर लेनदारों को दे दिये गये। बिहार में लेनदारों की रकम कुछ तो नकद रुपये में दे दी गई, कुछ डिपाजिट में परिणत कर दे दी गई, और कुछ डिपाजिट में परिणत कर दी गई, और कुछ बट्टे खाते में डाल दी गई (यानी खतम कर दी गई)।

पुनर्निर्माण योजना का एक विशेष बात यह है कि पुनस्संगठित समितियों के सदस्यों को ऋण अनाज के रूप में दिया जाता है, जिससे वे खेती इत्यादि कर सकें। यह ऋण किस्तों में चुकाये जाते हैं और अनाज के रूप में ही वापस दिये जाते हैं। बंगाल और बरार में इस प्रकार की फसल के लिए ऋण देने वाली बहुत सी समितियाँ स्थापित की गईं जो फसल की जमानत पर ऋण देता हैं; क्योंकि ग्राम्य सहकारी साख समितियाँ तो वहाँ प्रायः बन्द सी हो गई है।

प्रान्तीय बैङ्कों को प्रान्तीय सरकार की सहायता—बंगाल की सरकार ने प्रान्तीय सहकारी बैंक को २४ लाख रुपये की सहायता इसलिए दी कि उसकी जूट विक्रय समितियों को ऋण देने में इतनी हानि उठानी पड़ी थी। इसी तरह बिहार सरकार ने सेन्ट्रल बैंक को १२ लाख रुपये की सहायता देने के अतिरिक्त १४ लाख रुपये का ऋण प्रान्तीय बैंक द्वारा, पुनस्संगठित बैंकों के लेनदारों का भुगतान करने के लिए, दिया। इसके सिवाय पुनस्संगठन की योजना के फल-

स्वरूप प्रान्तीय बैंक को जो १८ लाख रु० की हानि उठानी पड़ी, उसकी भी बिहार सरकार ने क्षति-पूर्ति कर दी। मध्यप्रदेश की सरकार ने सेन्ट्रल बैंकों के डिपाजिटरों को घटी हुई रकम पर सूद की गारंटी दी है, कुछ सहायता सेन्ट्रल बैंकों को भी दी गई। इसी प्रकार मैसूर तथा हैदराबाद राज्यों ने भी प्रांतीय बैंकों को आर्थिक सहायता दी।

प्रारम्भिक समितियों का दायित्व; अपरिमित और परिमित—प्रारम्भिक समितियों के सम्बन्ध में कई प्रश्नों पर आजकल तर्क-वितर्क हो रहा है, जैसे समितियों का उनके दायित्व, उनका क्षेत्र, उनका और सेन्ट्रल बैंकों का सम्बन्ध आदि। पहले दायित्व का विषय लें। यहाँ सहकारिता आंदोलन में लगे हुए कार्यकर्त्ताओं का बहुत बड़ा समूह इस पक्ष में है कि कृषि साख समितियों का दायित्व अपरिमित न होकर परिमित होना चाहिए। १६४० में मदरास सहकारी कमेटी के बहुमत ने इसी पक्ष में मत दिया। उनका कहना था कि अपरिमित दायित्व से अब कोई लाभ नहीं है वरन् हानियाँ अधिक हैं। पिछले वर्षों में समितियों को दिवालिया बनाने में अपरिमित दायित्व के कारण उन सदस्यों को बहुत अधिक हानि उठानी पड़ी, जो समिति से ऋण नहीं लेते थे और जिन्होंने अपना ऋण चुका दिया था। इस कारण आंदोलन की बहुत बदनामी हुई। उनका कहना यह है कि अपरिमित दायित्व से अच्छे किसान भयभीत हो जाते हैं और सहकारी समितियों के सदस्य नहीं बनते। भविष्य में तो यह और भी अधिक होगा। वास्तव में, जब साख समिति भङ्ग की जाती है, तब अपरिमित दायित्व अपरिमित न रहकर केवल अपनी अपनी योग्यता के अनुसार समिति की देनी चुकाने का दायित्व रह जाता है। अपरिमित दायित्व के विरोधियों का यह भी कहना है कि अपरिमित दायित्व का आधार अर्थात् एक दूसरे के संबन्ध में पूर्ण जानकारी, एक दूसरे के कार्यों पर

निरीक्षण रखना तथा पारस्परिक नियन्त्रण आज के ग्रामीण जीवन में सम्भव नहीं है। व्यवहार में, व्यक्तिगत जमानत के स्थान पर हैसियत तथा सम्पत्ति की ज़मानत अधिक महत्वपूर्ण समझी जाती है।

जो लोग अपरिमित दायित्व के पक्ष में हैं, उनका कहना है कि अभी तक जितने भी कमीशन या कमेटियाँ बैठीं, उन्होंने अपरिमित दायित्व के पक्ष में ही अपना मत दिया है। अपरिमित दायित्व सहकारिता का आधारमूत सिद्धान्त है—"प्रत्येक सब के लिए, और सब प्रत्येक के लिए"। यह सिद्धान्त सामूहिक जिम्मेदारी और भाई-चारे की भावना को उदय करने के लिए अपनाया गया था। इसको छोड़ देने से पारस्परिक विश्वास तथा जानकारी नष्ट हो जावेगी और समितियाँ सहकारी न रहकर सेन्ट्रल बैंकों की शाखा मात्र रह जावेंगी। अपरिमित दायित्व की कठोरता सहकारिता विभाग के नियमों ने कम कर दी हैं। उसे पूर्णतया हटा देने से जनता का साख समितियों में विश्वास जाता रहेगा, और उन्हें डिपाजिट प्राप्त नहीं होंगी। अपरिमित दायित्व निर्धन व्यक्तियों के लिये विशेष रूप से उपयुक्त है, क्योंकि उनके पास कोई सम्पत्ति होती नहीं, उनकी जमानत तो केवल उनका अच्छा चरित्र, ईमानदारी और उनकी उत्पादन शक्ति ही हो सकती है।

रिजर्व बैंक का भी यही मत है कि कृषि साख सहकारी समितियों का दायित्व अपरिमित ही होना चाहिए। परन्तु, दिसम्बर १९३९ में देहली में सहकारिता विभागों के रजिस्ट्रारों का जो सम्मेलन हुआ था उनमें केवल सभापति के 'कास्टिंग वोट' (निर्णायक मत) से ही यह प्रस्ताव गिर सका था कि कृषि साख सहकारी समितियों का दायित्व परिमित होना चाहिए। इससे यह सिद्ध होता है कि देश में बहुत से कार्यकर्ता ऐसे हैं, जो अपरिमित दायित्व को व्यर्थ समझते हैं।

ग्राम्य समिति का क्षेत्र—मद्रास सहकारी कमेटी का मत है कि एक गाँव बहुत छोटा क्षेत्र है और उसकी समिति इतनी छोटी होती है कि वास्तव में वह आर्थिक दृष्टि से सफल नहीं हो सकती। इसलिये

बहुत छोटी समितियों को मिलाकर एक कर दिया जावे और वह एक से अधिक गाँव में कार्य करे। लेकिन ऐसा करने से वह पारस्परिक विश्वास और जानकारी, जो आन्दोलन का आधार है, नष्ट हो सकती है।

बहु-उद्देश्य समितियाँ—कुछ समय से इस विषय में बड़ा विवाद है कि साख समितियों का कार्यक्षेत्र क्या होना चाहिए। यह तो सभी मानते हैं कि किसान की आर्थिक स्थिति में तब तक सुधार नहीं हो सकता, जब तक उसके जीवन में सर्वाङ्गीण उन्नति न हो। रिज़र्व बैंक ने इसी बात को लेकर बहु-उद्देश्य समितियों का समर्थन किया था। उसका मत है कि बहु-उद्देश्य समिति सदस्य को खेती या धन्धे के लिये साख दे और अपने अच्छे सदस्यों के पुराने ऋण को भूमि-बन्धक बैंक के द्वारा अदा करवा दे; किसान-सदस्यों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए उनकी पैदावार को बेचे; उनके लिए बढ़िया बीज खरीदे और उन्हें अपनी आवश्यकता की चीजों को ठीक मूल्य पर दिलाने के लिये उनसे आर्डर लेकर उन चीजों को खरीद कर उन्हें दे, मुकदमेबाजी को कम करने के लिये पंचायत स्थापित करे; भूमि की चकबन्दी करके, अच्छे बीज और औजारों का प्रचार करके खेती की पैदावार को बढ़ावे; खेती के अतिरिक्त बेकार समय में गौण तथा सहायक धंधों के द्वारा उनकी आय को बढ़ाने का प्रयत्न करे; और, जीवन सुधार को हाथ में लेकर स्वास्थ्य, औषधि वितरण, उपचार, सामाजिक कृत्यों में अधिक धन व्यय न करने और गाँव में सफाई रखने का प्रबन्ध करे। कहने का तात्पर्य यह है कि बहु-उद्देश्य समिति गाँव की सभी मुख्य समस्याओं को हल करके गाँव वालों को सुखी और समृद्धिशाली बनाने का प्रयत्न करे। ऐसी समितियाँ गाँव के सार्वजनिक जीवन का केन्द्र बन जावेंगी। वे केवल साख ही नहीं देंगी, वरन गाँव की आर्थिक दशा सुधारने और सामाजिक उन्नति करने का प्रयत्न करेंगी।

सहकारिता आन्दोलन में लगे हुए कार्यकर्ताओं का इस विषय में काफी मतभेद है। कुछ सज्जन बहु-उद्देश्य समितियों के पक्ष में हैं, कुछ विपक्ष में हैं। विरोध करनेवालों का कहना है कि इस प्रकार की समितियों को चलाना कठिन है। ये समितियाँ कुछ शिक्षित व्यक्तियों के हाथ का खिलौना भर रह जावेंगी, जो सहकारिता के भावना के विरुद्ध है। यही नहीं भिन्न-भिन्न विभागों के हिसाब एक दूसरे से मिले रहेंगे, जिससे समिति की वास्तविक स्थिति छिपी रहेगी और एक विभाग के खराब होने से दूसरों पर बुरा असर पड़ेगा। इसका परिणाम यह होगा कि समिति के उपयोगी कार्य भी असफल हो जावेंगे। इस-लिए प्रत्येक कार्य के लिए एक समिति स्थापित की जावे।

परन्तु यह सब स्वीकार करते हैं कि सभी समस्याओं के विरुद्ध एक साथ युद्ध छेड़ने से ही गाँव की सर्वाङ्गीण उन्नति हो सकती है। सहकारिता आन्दोलन के प्रसिद्ध विद्वान् श्री० फे महोदय ने भी बहु-उद्देश्य समितियों का समर्थन किया है। सन् १९३९ में रजिस्ट्रारों के सम्मेलन ने बहु-उद्देश्य समितियों की स्थापना करके उनका प्रयोग करने की सिफारिश की थी। मदरास सहकारिता कमेटी ने भी बहु-उद्देश्य समितियों की स्थापना का समर्थन किया है। उत्तर प्रदेश, मदरास बम्बई, बड़ोदा में यह प्रयोग आरम्भ भी हो गया है, और बहु-उद्देश्य समितियाँ स्थापित की गई हैं। बंगाल के रजिस्ट्रार ने भी अपना मत बहु-उद्देश्य समिति के पक्ष में यह कह कर दिया है कि सहकारी समिति को सम्पूर्ण मनुष्य की समस्याओं को हल करना चाहिए। बम्बई और मदरास में बहु-उद्देश्य समितियों का कार्यक्षेत्र कई गाँवों में होता है, लेकिन उत्तर प्रदेश और बड़ौदा में एक समिति का कार्यक्षेत्र केवल एक गाँव होता है। अभी यह समितियाँ प्रयोग की स्थिति में हैं, इसलिए उनके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। लेकिन हमें यह न भूल जाना चाहिए कि बहु-उद्देश्य समितियाँ धीरे धीरे ही स्थापित होंगी। जब तक गाँवों में ऐसी व्यक्ति नहीं उत्पन्न होते

जो इन समितियों के बिभिन्न विभागों को सफलतापूर्वक चला सकें, तब तक इन समितियों की गति तीव्र नहीं हो सकती।

बहु उद्येशीय सहकारी समितियाँ

सहकारिता आन्दोलन में कार्य करने वाले सभी कार्यकर्ता इस बात पर एकमत है कि सहकारिता आन्दोलन का केवल साख पर विशेष बल देना तथा किसान की उत्पादन शक्ति को बढ़ा कर उसकी आर्थिक स्थिति में सुधार न करना आन्दोलन की असफलता का मुख्य कारण है। इसी उद्येश्य से बहु उद्येश्य वाली सहकारी समितियों की स्थापना पर प्रत्येक प्रान्त में पिछले दिनों विशेष बल दिया जाने लगा है। लगभग सभी प्रान्तों में अब बहु उद्येश्य वाली समितियाँ कार्य कर रही हैं और उनकी संख्या बढ़ती ही जाती है। अब हम यहाँ संक्षेप में भिन्न भिन्न प्रान्तों में इस दिशा में कितना कार्य हुआ है उसका सिंहावलोकन करेंगे।

पश्चिमीय बंगाल:—पश्चिमीय बंगाल के गवर्नर डाक्टर कैलाशनाथ काटजू के प्रोत्साहन से पश्चिमीय बंगाल में बहु-उद्येश्यीय समितियों की स्थापना हुई। उनकी प्रेरणा से एक योजना बनाई गई। इस योजना के आधीन दो वर्षों में ५००० समितियों की स्थापना का आयोजन है। इस योजना का उद्येश्य नीचे लिखा है:—

इस योजना का पहला उद्येश्य प्रान्त में रहने वाले सभी ग्रामवासियों में सहकारिता की भावना को जाग्रत करना है। अपनी तथा अन्य ग्रामवासियों की आर्थिक मानसिक तथा शारीरिक उन्नति के लिए सहकारिता का उपयोग किया जा सके यही इस योजना का मुख्य उद्येश्य है।

यह समितियाँ नीचे लिखे कार्य करती हैं:—

(१) अपने सदस्यों के लिए साख का प्रबन्ध करना, (२) अधिक

अनाज उपजाने के लिए अच्छे बीज औजार, तथा खाद का प्रबन्ध करना तथा खेती की उन्नति करना। (३) सिंचाई के लिए साधनों को उपलब्ध करना, तालाब तथा कुयें खुदवाना। (४) मुर्गी पालने के धन्धों की उन्नति करना, (५) पशुओं की नस्ल की उन्नति करना, (६) गृह-उद्योग धन्धों की उन्नति करना, (७) स्वास्थ्य तथा सफाई का प्रबन्ध करना, (८) लड़कों तथा प्रौढ़ों की शिक्षा का प्रबन्ध करना, (९) सहकारी ढंग से सामूहिक रूप से अपनी पैदावार की बिक्री करना, ग्रामवासियों के लिए जीवन की आवश्यक वस्तुओं को खरीद कर उन्हें देना, (१०) झगड़ों को तय करना। संक्षेप में गाँव का सारा जीवन इस समिति का कार्य क्षेत्र होगा।

१९४८ के अन्त तक प्रान्त में ११६२ बहु उद्येश्य वाली समितियाँ कार्य कर रही थी।

बम्बई:—बम्बई में बहु उद्येश्य वाली समितियाँ दो प्रकार की होती हैं: —

(१) ग्राम्य बहु उद्येश्य वाली समितियाँ जो कि एक गाँव एक समिति के सिद्धान्त पर होंगी और जिनका दायित्व सदस्यों की इच्छा पर परिमित अथवा अपरिमित हो सकता है।

(२) पाँच या अधिक ग्रामों की (पाँच मील के घेरे में) ग्रूप बहु उद्येश्य वाली समिति जिसका दायित्व परिमित होगा। यह बड़ी समितियाँ वहीं स्थापित की जावेंगी जहाँ बिक्री की सुविधायें हैं।

इन समितियों का उद्येश्य ग्रामवासियों को खेती के लिए साख तथा अन्य आवश्यक साधन उपलब्ध करना, उनकी पैदावार की बिक्री करना और उनके लिए आवश्यक चीजें खरीदना है। इस समय बम्बई प्रान्त में ६५५ बहु उद्येश्य वाली समितियां कार्य कर रही हैं जो ४६२० गांवों की सेवा करती हैं।

इन नवीन बहु उद्येश्य वाली समितियों के अतिरिक्त जो कि नई स्थापित की गई हैं जो पुरानी साख समितियां हैं उनको भी बहु

उद्देश्य वाली समितियों में बदलने की नीति है। जो साख समितियों के सदस्य चाहेंगे उनको बहु उद्येश्य वाली समितियों में परिणित कर दिया जावेगा।

उत्तर प्रदेशः—उत्तर प्रदेश में बहुउद्येश्व वाली समितियों की संख्या २० हजार है। इससे यह न सोचना चाहिए कि वे सब समितियां एक पूर्ण बहुउद्येश्य वाली समिति के कर्तव्यों को निबाह रही हैं। उत्तरप्रदेश में यह आन्दोलन अभी प्रारम्भिक अवस्था में है। यह २० हजार बहु-उद्येश्य वाली समितियां यहाँ हैं। समितियां ६०० बीज भंडारों के चारों ओर संगठित की गई हैं जिनको अभी कुछ समय हुआ कृषिविभाग के नियंत्रण से हटाकर सहकारिता विभाग के नियंत्रण में रख दिया गया है। प्रत्येक बीज भंडार से १५ या २० समितियां सम्बंधित रहती हैं। जब किसी गांव के ७० या ८० प्रतिशत परिवार समिति के सदस्य बन जाते हैं तब गांव की समिति को स्वीकृत प्रदान की जाती है। यह १५ या २० समितियां एक यूनियन बना लेती हैं। बीज भंडार इन्हीं यूनियनों की आधीनता में काम करेंगे। यह यूनियनें सदस्य समितियों के सदस्यों की पैदावार समूहिक रुप से बेचने का प्रबंध करती हैं तथा गृह-उद्योग धंधो की उन्नति करती है। सदस्यों के लिए दैनिक व्यवहार की वस्तुओं का स्टोर रखती हैं तथा पशुओं की नस्ल को सुधारती हैं। किन्तु अभी यह नहीं कहा जा सकता कि यह समितियां कहाँ तक सफल हुई हैं। इनके बारे में अधिक जानकारी नहीं मिल पाई है।

मध्यप्रदेशः—मध्यप्रदेश में ६५८ बहु-उद्येश्य वाली समितियां है तथा ४७६ स्टोर हैं।

उड़ीसाः—उड़ीसा में ६८ बहु उद्येश्य वाली समितयां हैं।

मैसूर—मैसूर में तेजी से बहु उद्येश्य वाली समितियां कार्य कर रही हैं। वहाँ लगभग ७५० बहु-उद्येश्य वाली समितियां कार्य

कर रही हैं। ८२ ताल्लुका समितियां हैं और जिला समितियां स्थापित की जा रही हैं।

नियन्त्रित साख और फसली-ऋण-समितियाँ— सहकारिता आन्दोलन के अत्यन्त कठिन परिस्थिति में से गुजरने के कारण आन्दोलन में एक नई प्रवृत्ति चल पड़ी है। मदरास में यह विशेष रूप से दृष्टिगोचर हुई। वहाँ साख पर नियन्त्रण रखा जाता है। सदस्य को जिस कार्य के लिए ऋण दिया जाता है, वह उस में ही उसे व्यय कर सकता है इसके लिये समिति उसे पूरी रकम एक-साथ न देकर जैसे-जैसे आवश्यकता पड़ती है किस्तों में देती है। सदस्य को एक इकरारनामा लिखना पड़ता है कि वह अपनी फसल को साख-समिति या विक्रय-समिति के द्वारा ही बेचेगा। विक्रय-समिति फसल बेच देने पर साख समिति का ऋण तथा भूमि बंधक बैंक की किस्त (यदि वह सदस्य भूमि बंधक बैंक का भी सदस्य है) चुका देने के उपरान्त शेष रकम सदस्य को दे देती है। इस प्रकार वहाँ साख का नियंत्रण किया जाता है। यद्यपि बहुत से लोग इसका विरोध इस आधार पर करते हैं कि इससे प्रारम्भिक साख समिति की जिम्मेदारी, महत्व और स्वतन्त्रता नष्ट हो जायगी।

बंगाल में फसली-ऋण-समितियों की बहुत बड़ी संख्या (१३८००) है। बरार में भी समितियाँ बहुत बड़ी संख्या में स्थापित हैं। इनकी आवश्यकता इस कारण पड़ी कि वहाँ सहकारी साख समितियाँ ठप्प हो गईं। उस कमी को पूरा करने के लिए इनकी स्थापना की गई। मूलतः ये समितियाँ भी मदरास की तरह ही कार्य कर रही हैं। बंगाल में तो यह नियम है कि फसली-ऋण-समिति के सदस्य को बहु-उद्देश्य समिति का भी सदस्य बनना पड़ता है, और उसे अपनी पैदावार को बहु-उद्देश्य समिति के द्वारा ही बेचना पड़ता है।

रिज़र्व बैंक और सहकारी साख आन्दोलन—रिज़र्व बैंक के स्थापित हो जाने के उपरान्त उसकी कृषि-साख शाखा १९३५ में स्था-

पित की गई। इस शाखा के निम्नलिखित कार्य हैं:—कृषि-साख के विशेषज्ञों को नियुक्त करना, जो कृषि-साख के सम्बन्ध में भारत सरकार, प्रान्तीय सरकारों और सहकारी बैङ्कों को सलाह दें; और रिज़र्व बैंक तथा सहकारी बैङ्कों के आपसी सम्बन्ध तथा कृषि-साख के सम्बन्ध में जो नीति रिज़र्व बैंक निर्धारित करे, उसका स्पष्टीकरण करना। रिज़र्व बैङ्क एक्ट के अनुसार, कृषि-साख विभाग ने सहकारिता साख आन्दोलन के सम्बन्ध में एक रिपोर्ट भारत सरकार को १६३६ में भेजी। रिज़र्व बैंक ने इस बात पर जोर दिया कि साख आंदोलन उसके बतलाये अनुसार पुनः संगठित होना आवश्यक है, तभी वह बलशाली बन सकता है। रिपोर्ट की सिफारिशें इस प्रकार थीं:—

(१) जहाँ ऋण इतना अधिक बढ़ गया हो कि कर्जदार की सामर्थ्य के बाहर हो; उसको घटा देना चाहिए।

(२) भविष्य में एक सीमा निर्धारित कर देनी चाहिए, जिससे अधिक ऋण न दिया जावे।

(३) सदस्य किसान को एक से अधिक स्थानों से ऋण न लेने दिया जावे।

(४) सहकारी गोदाम और विक्रय-समितियों की स्थापना की जावे।

(५) प्रान्तीय बैङ्क को कृषि-साख का नियंत्रण करना चाहिए।

(६) अधिक लम्बे समय के लिए दी जानेवाली साख, थोड़े समय के लिए दी जानेवाली साख से, अलहदा कर दी जानी चाहिए।

(७) सहकारी सेन्ट्रल बैंकों को अपने कर्जे की रक़म इतनी घटा देनी चाहिए कि सदस्य खेती के लाभ में से उसे २० वर्षों में चुका सके। जो रक़म वसूल न हो सके, उसे बट्टे-खाते में डाल देना चाहिए।

(८) साख समितियों को सूद की दर कुछ बढ़ानी चाहिए, जिससे वे अधिक रक्षित कोष इकट्ठा कर सकें।

(९) बैंकों की संचालक समिति में बैंकिंग के अनुभव वाले आदमी अधिक होने चाहिएँ ।

(१०) आवश्यकता से अधिक कर्ज़ लेने और सदस्यों से कर्ज़ की रकम वसूल करने में ढिलाई को दूर करने के लिए डिपाजिटरों के प्रतिनिधि भी सेन्ट्रल तथा प्रान्तीय सहकारी बैंकों के बोर्ड में रहने चाहिएँ ।

(११) यदि (बैल आदि खरीदने के लिये एक वर्ष से अधिक समय के लिए ऋण देना ही पड़े तो भी दो वर्ष से अधिक के लिए न दिया जावे । इस प्रकार के ऋण को वार्षिक ऋण से अलहदा रक्खा जावे, और, साख-समिति ऐसे ऋण अधिक न दे ।

(१२) किसान को जो ऋण दिये जावें; जैसे-जैसे आवश्यकता हो, किस्तों में दिये जावें, एकमुश्त रकम न दी जावे ।

(१३) यदि ऋण की अदायगी ठीक समय पर न हो तो उसे तुरन्त वसूल करने का प्रयत्न किया जाय, अथवा समिति को तोड़ दिया जावे (यदि फसल नष्ट हो गई हो तो बात दूसरी है) ।

(१४) अदायगी के समय को, फसल नष्ट हो जाने की दशा में ही, बढ़ाया जावे ।

(१५) प्रारम्भिक समिति का, जो आन्दोलन की आधारशिला है, पुनः संगठन होना चाहिए; और, उसका कार्यक्षेत्र किसान का सारा जीवन हो ।

(१६) ये समितियाँ छोटी बैङ्किग यूनियन से सम्बन्धित कर दी जावें ।

(१७) प्रान्तीय बैङ्क को आन्दोलन की देखभाल करना चाहिए और उसका नेतृत्व करना चाहिए ।

रिजर्व बैङ्क सीधे किसानों को ऋण नहीं देता और न खेती के वास्ते लम्बे समय के लिए ही ऋण दे सकता है । वह फसलों के लिए लिखे गए बिलों को डिस्काउंट करके प्रान्तीय बैंकों की सहायता कर

सकता है। किन्तु ये बिल ६ महीने से अधिक के लिए नहीं हो सकते। थोड़े समय के लिए आवश्यकता पड़ने पर रिजर्व बैंक प्रांतीय बैंकों को ऋण दे सकता है। रिज़र्व बैंक से आर्थिक सहायता पाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रान्तीय बैंक अपनी चालू खाते की जमा की ढाई प्रतिशत, और मुद्दती जमा की एक प्रतिशत नकदी रिज़र्व बैंक में जमा करे।

रिजर्व बैंक ने प्रान्तीय बैंकों को अपना रुपया एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के लिये कुछ सुविधाएँ दी हैं। एक प्रकार से प्रांतीय बैंक भी प्रामाणिक ('शिड्यूल') बैंक मान लिये गए हैं। रिजर्व बैंक ने सेन्ट्रल बैंकों को प्रान्तीय बैंक की शाख मान लिया है।

—•—

ग्यारहवाँ परिच्छेद

दूध सहकारी समितियाँ

घने आबाद देश के लिये मांस विलास की वस्तु है। जितनी भूमि पर एक गाय का निर्वाह होता है उतनी भूमि पर अनाज उत्पन्न करके आठ मनुष्यों का भोजन उत्पन्न किया जा सकता है। इसलिए. मांसाहारी केवल वही देश हो सकते हैं, जहाँ भूमि तो बहुत है किन्तु जनसंख्या कम है. जैसे संयुक्तराज्य—अमरीका, कनाडा, अरजैनटाइन. इत्यादि। अथवा, वे घने आबाद देश मांसाहारी हो सकते हैं. जो धनवान होने के कारण विदेशों से मांस मंगाकर खा सकते हैं. जैसे इङ्गलैण्ड इत्यादि। भारतवर्ष में अधिकांश जनता शाकाहारी है जो लोग मांस खाते हैं, उन्हें वह यथेष्ट परिमाण में नहीं मिलता; वे स्वाद के लिये कभी-कभी मांस खा लेते हैं।

अस्तु. भारतीयों के स्वाद के लिये फल और दूध की बड़ी आवश्यकता है। यदि देश में दूध की उत्पत्ति का हिसाब लगाया जावे तो ज्ञात होगा कि यहाँ प्रति मनुष्य प्रति दिन पाव भर से कम दूध होता है। ऐसी परिस्थिति में मनुष्यों का स्वास्थ्य कैसे अच्छा रह सकता है। विशेषकर नगरों में तो दूध की समस्या ने विकट रूप धारण कर लिया है। वहाँ दूध का अकाल है; छोटे कस्बों में भी दूध उचित मूल्य पर नहीं मिलता।

गाँव से आया हुआ दूध— शहरों में दूध समीपवर्ती गाँवों से आता है, अथवा शहरों में रहनेवाले घोसी और ग्वाले बेचते हैं। अधिकतर, नगर में किसान वहाँ के पाँच या छः मील की दूरी से दूध बेचने आता है। जो किसान भैंस रखता है, वह शहर के किसी हलवाई से बातचीत कर लेता है हलवाई खोए के हिसाब से दूध का

दाम देता है। यदि हलवाई किसान से चार सेर का दूध लेता है तो ग्राहक को दो-ढाई सेर का ही देता है। किसान हलवाई को शुद्ध दूध देता है। किन्तु वह सायंकाल शहर में नहीं आ सकता, इस लिए सायंकाल का दूध प्रातःकाल के दूध के साथ मिला कर लाता है। इसलिए नगर-निवासियों को बासी दूध मिलता है। दूध बेचेनेवाले को भी हानि उठानी पड़ती है, क्योंकि किसान को अपना दूध सस्ते दामों पर देना होता है।

शहरों के ग्वालों का दूध—शहरों से घोसी अपनी गाय भैंसों को लेकर शहरों में ही रहते हैं। शहरों में स्थान की कमी होने के कारण इन ग्वालों के स्थान बहुत-गन्दे रहते हैं, वहाँ एक प्रकार के कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं जो दूध को दूषित कर देते हैं। विशेषज्ञों का कथन है कि शहरों के दूषित दूध को पीने के ही कारण बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते हैं। दूध बहुत शीघ्र बिगड़नेवाली वस्तु है, इस कारण ग्वालों का दूध स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है। ग्वाला भी उसी कीमत पर दूध बेचता है जिसपर हलवाई। शहरों में दूध पहुँचाने की समस्या अत्यन्त महत्वपूर्ण है और वह सहकारी समितियों के द्वारा ही हल हो सकती है।

भारत में दूध की उत्पत्ति—श्री० नारमन राइट के अनुसार भारतवर्ष में प्रतिवर्ष लगभग ७० करोड़ मन दूध उत्पन्न होता है। उसका मूल्य महायुद्ध के पूर्व, साढ़े तीन सौ करोड़ रुपये कूता गया था। प्रति व्यक्ति यहाँ दूध दैनिक औसत साढ़े तीन छटांक है। भोजन-विशेषज्ञों का कथन हैं कि स्वास्थ्य के लिए हर रोज १५ छटांक दूध आवश्यक है। अधिकांश योरोपीय देशों में मनुष्य पीछे दूध की खपत का औसत इससे अधिक पड़ता है।

भारतवर्ष में जितनी भी दूध की उत्पत्ति है, उसका लगभग ३० प्रतिशत पीने के काम आता है; ५२.७ प्रतिशत घी बनाने में, और शेष खोआ, दही, रबड़ी, मक्खन, आइसक्रीम इत्यादि के बनाने में

व्यय होता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतवर्ष में दूध की सब से अधिक खपत घी बनाने में होती है और उसके बाद दूध का मुख्य उपयोग उसको पीना है। यद्यपि भारतवर्ष में १६४० में गाय बैलों की संख्या लगभग २१ करोड़ थी जो पृथ्वी भर के गाय बैलों की संख्या के लगभग एक तिहाई थी, फिर भी भारतवर्ष में दूध की उत्पत्ति बहुत कम है। इसका एकमात्र कारण यहाँ गाय की नस्ल का कल्पनातीत ह्रास होना ही है।

भारतवर्ष में गाय बैल की नस्ल के ह्रास होने के मुख्य तीन कारण है:—(१) चारे की कमी (२) अच्छे सांडों की कमी (३) पशुओं के रोग। जब तक यह तीनों बातें दूर नहीं होतीं, तब तक गोवंश की उन्नति नहीं हो सकती। महात्मा गांधी के नेतृत्व में गौ-सेवा संघ ने इस दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया; वह अब भी अच्छा काम कर रहा है। यदि सरकार, गौशालाएँ तथा अन्य संस्थाएँ उस ओर ध्यान दें तो देश में दूध की यथेष्ट उत्पत्ति हो सकती है।

दूध सहकारी समितियाँ—पास-पास के चार पाँच गाँवों के लिये दूध सहकारी समिति का संगठन किया जावे। जितने किसान गाय या भैंस रखते हैं उनको सदस्य बनाया जावे। प्रत्येक सदस्य को अपना सब दूध समिति के दफ्तर में निश्चित समय पर पहुँचाने पर बाध्य किया जावे। जर्मनी के बवेरिया प्रान्त में समितियों ने किसानों का दूध इकट्ठा करने का एक अच्छा ढंग निकाला है। प्रत्येक सदस्य को बारीबारी से अपने गाँव भर का दूध इकट्ठा करके अपनी गाड़ी में समिति के कार्यालय में लाना पड़ता है, इससे दूध इकट्ठा करने में सुविधा होती है।

डेनमार्क की दूध सहकारी समितियों की योजना यह है—जिन प्रदेशों में पक्की सड़कें हैं, वहां की समितियां मोटर के द्वारा सदस्यों का दूध इकट्ठा करती हैं। प्रत्येक गांव के सदस्य निश्चित समय पर अपना दूध लेकर गांव के बाहर सड़क के किनारे आजाते हैं, और मोटर

आकर उनका दूध ले जाती है। जहां सड़कें अच्छी नहीं हैं वहां यह काम घोड़ागाड़ियों से लिया जाता है। समिति प्रत्येक सदस्य को एक बर्तन देती है, जो प्रति दिन भाप द्वारा साफ़ किया जाता है। सदस्य दूध इसी बर्तन में भर कर समिति को देता है।

समिति का मन्त्री वैतनिक कर्मचारी होता है, उसे दूध के धंधे का जानकार होना आवश्यक है। डेनमार्क तथा जर्मनी में दूध के धंधे की शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी मन्त्री बनाये जाते हैं। मन्त्री दूध की जांच करता है; यदि दूध में मिलावट होती है तो सदस्य पर जुर्माना किया जाता है। दूध नापकर सदस्य के हिसाब में जमा कर लिया जाता है। कहीं-कहीं दूध का मूल्य मक्खन के औसत से दिया जाता है। दूध आजाने पर समिति का मन्त्री उसे समिति की गाड़ी में नगर को भेज देता है। समिति मक्खन बनाने की मशीन तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ अपनी पूँजी से ख़रीदती हैं। मन्त्री उन यन्त्रों के उपयोग से उत्तम मक्खन तैयार करता है। समिति मक्खन बड़ी राशि में बनाती है और उसे डिब्बों में भर कर विदेशों में बेचती है।

एक ज़िले की सहकारी दूध समितियां मिल कर एक दूध सहकारी यूनियन बनाती हैं। यूनियन का मुख्य कर्तव्य यह है कि वह समितियों द्वारा बनाये हुए मक्खन के लिये विदेशों में बाज़ार तैयार करे, और अपने से सम्बंधित समितियों की देखभाल करे। यूनियन विदेशों में विज्ञापन देती है, और समितियों को उचित परामर्श देती है। यही कारण है कि संसार के प्रत्येक देश में डेन्मार्क का मक्खन बिकता है।

संगठन—समिति के जितने सदस्य होते हैं, उनकी सम्मिलित सभा को साधारण सभा कहते हैं। यह सभा अपनी बैठक में प्रबन्धकारिणी समिति का चुनाव करती है, दूध का भाव निर्धारित करती है, तथा दूध में पानी मिलानेवालों के लिये दण्ड निश्चित करती है। यही सभा मन्त्री को नियुक्त करती है। मन्त्री का

केवल यह काम नहीं होता कि वह दूध का प्रबन्ध करे, वह प्रति सप्ताह सदस्यों के पशुओं की जाँच करता है और पशु-पालन के विषय में उन्हें यह परामर्श देता रहता है कि पशुओं को किस प्रकार चारा खिलाना चाहिए तथा उन्हें किस प्रकार स्वस्थ रखा जा सकता है। यदि किसी सदस्य का पशु बीमार हो जावे तो मन्त्री उसका उपचार करता है।

प्रत्येक सदस्य का एक ही 'वोट' (मत) होता है, चाहे वह कितने ही हिस्से खरीदे। हिस्सों का मूल्य किस्तों में चुकाया जा सकता है। समिति सहकारी बैंकों से क़र्ज लेती है, और उचित सूद पर सदस्यों को पशु खरीदने के लिये रुपया उधार देती है। समिति उत्तम जाति के सांड़ पालती है और सदस्यों के पशुओं की नस्ल को उत्तम तथा अधिक दूध देनेवाली बनाती है। समिति चारे का भी प्रबन्ध रखती है, जो आवश्यकता पड़ने पर सदस्यों को उधार दिया जाता है।

भारतवर्ष में दूध का धन्धा—भारतवर्ष में पशुओं की दशा इतनी शोचनीय है, जितनी संसार के किसी भी देश में नहीं है। अभी तक भारतवर्ष में इस महत्वपूर्ण विषय की ओर जनता का ध्यान नहीं गया है; हाँ कुछ स्थानों पर सहकारी दूध समितियाँ स्थापित हुई हैं, जिनमें कलकत्ते के समीप पास के गाँवों की समितियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इस विशाल जनसंख्या वाले नगर को प्रति दिन बहुत दूध की आवश्यकता रहती है। दूध आस-पास के गाँवों से ही मिलता है। जिन गाँवों में समितियाँ स्थापित नहीं हुई हैं, वहाँ से दूध कलकत्ते तक लाने का धन्धा ग्वाले करते हैं। ग्वाले गाय नहीं रखते, उनका काम केवल गाँव से दूध लाकर बेचना भर है।

ग्वाले हर छःमाही गाय वालों को कुछ पेशगी रुपया दे देते हैं, और उनसे यह तय कर लेते हैं कि वे उसी ग्वाले को दूध दें। ग्वाला प्रातःकाल ही अपने दूध दुहनेवालों को गाय वालों के मकानों पर भेज देता है और वे आसामी की गायों को दुह लेते हैं। ग्वाला उस दूध

को कलकत्ते ले जाता है अथवा दही या छाना बनाता है। ग्वाला कलकत्ते बिना पानी मिलाये दूध नहीं ले जाता, पानी मिलाते समय वह इस बात का भी ध्यान नहीं रखता कि गंदा तो नहीं है। यह पानी मिला हुआ दूध बड़े बड़े पीतल के कलसों में भर लिया जाता है और उनके मुँह में पत्तियां ठूँस दी जाती हैं, जिससे दूध न छलके ये कलसे भी साफ नहीं रहते। ग्वाला माहवारी टिकट ले लेता है और प्रातः-काल रेल में दूध कलकत्ते तक लाता है। रेल गाड़ियां में ग्वालों के लिये एक तीसरे दर्जे का डिब्बा रहता है, जो प्रायः बहुत गंदा होता है।

तीस वर्ष व्यतीत हुए, श्री० डोनोवन तथा श्री० जे. एम. मित्रा का इस ओर ध्यान आकर्षित हुआ और उन्होंने प्रयत्न करके एक दूध सहकारी समिति की स्थापना की। आरम्भ में गांव वाले तैयार नहीं हुए, किन्तु पीछे एक गांव के किसान, जिनका ग्वाले से झगड़ा हो चुका था और जो इस चिन्ता में थे कि वे अपना दूध कल-कत्ते में किस प्रकार बेचें, तैयार हो गये। इस तरह पहली समिति की स्थापना हो गई।

समिति ने किसानों को ग्वाले से एक रुपया फी मन अधिक मूल्य दिया और उनके हिसाब की पासबुक हर किसान को दे दी। समिति भी दुहनेवालों को नौकर रखती थी। आरम्भ में समिति को बहुत थोड़ा लाभ हुआ, किन्तु समिति ने दो बातों से सफलता प्राप्त की, एक तो किसानों को दूध की कीमत अधिक दी, दूसरे ग्राहकों को शुद्ध दूध दिया। क्रमशः समितियों की संख्या बढ़ने लगी। समितियों के सदस्यों को दूध का अधिक मूल्य मिलते देख, अन्य गांवों में भी किसान समितियों के सदस्य बनने को लालायित होने लगे और कलकत्ते में समिति के दूध की मांग बढ़ने लगी। सन् १९१९ में समितियों ने एक दूध की सहकारी यूनियन संगठित की, तबसे समितियों की संख्या बड़ी तेजी से बढ़ती गई। सन् १९४४ में १२६ समितियां यूनियन से

सम्बधित थी जिनके लगभग ६५०० सदस्य थे। केवल कलकत्ते में ही यूनियन लगभग १५० मन दूध प्रति दिन बेचती थी, जिसका मूल्य वर्ष में चार लाख रुपये से अधिक होता था।

दूध की उत्पत्ति का केन्द्र ग्राम्य दूध समितियां हैं। ये समितियां ही यूनियन की सदस्य हो सकती हैं। दूध-यूनियन इन समितियों को पूँजी देती है, उनका निरीक्षण तथा नियन्त्रण करती है, और कलकत्ते में दूध बेचती है।

समितियों के प्रतिनिधि यूनियन के डायरेक्टरों का चुनाव करते हैं प्रत्येक समिति की एक वोट होती है। केवल सभापति और उपसभापति नहीं चुने जाते। डायरेक्टर ही यूनियन के कार्य की देखभाल करते हैं।

यूनियन ने कुछ भण्डार स्थापित किये हैं, जिसमें कर्मचारी नियुक्त किये गये हैं। भंडार पर समितियों का दूध लिया जाता है। जिन समितियों के समीप कोई भंडार नहीं है, वे समीपवर्ती रेलवे स्टेशन पर दूध भेज देती हैं। भंडारों के मेनेजर रेलवे के द्वारा दूध कलकत्ते भेज देते हैं। कलकत्ते में यूनियन का एक कर्मचारी दूध ले लेता है तथा ग्राहकों के यहाँ भेज दिया जाता है।

भंडार में जब दूध आता है तो भंडार का मेनेजर यन्त्र से उसकी जांच करता है तथा शुद्ध बर्तनों में भरे हुए दूध को कलकत्ते भेजता है। यूनियन एक पशु-चिकित्सक रखती है, जो समितियों के पशुओं की जांच करता है और उनके रहने के स्थानों को देखता है कि वे गन्दे तो नहीं हैं। इन सब कर्मचारियों के ऊपर एक सरकारी कर्मचारी है, जो यूनियन का चेयरमेन है। सरकार ने इस कर्मचारी की सेवाएँ सहकारिता विभाग को दे दी हैं। दूध को वैज्ञानिक ढंग से सुरक्षित तथा शुद्ध रखने के लिये यूनियन ने एक फेक्टरी स्थापित की है। यूनियन मोटर, बैलगाड़ी, तथा ठेलों के द्वारा ग्राहकों के पास दूध पहुँचाती है, और अपने कर्मचारियों तथा एजंटों के द्वारा दूध बेचती है।

आरम्भ में यूनियन के पास बहुत थोड़ी पूंजी थी, किन्तु अब यूनियन की कार्यशील पूँजी एक लाख और निजी पूँजी अस्सी हजार रुपये से कुछ अधिक है। यूनियन का वार्षिक लाभ लगभग २०,००० रु० हैं। यूनियन ने बहुत से प्रायमरी स्कूल खोले हैं, जिससे सहकारी समितियों के सदस्यों के लड़के शिक्षा पासकें। यूनियन ने गांवों में कुएं भी खुदवाये हैं, तथा बढ़िया सांड़ खरीद कर रखे हैं, जिससे सदस्यों के पशुओं की जाति अच्छी बने। बङ्गाल में कलकत्ते के अतिरिक्त ढाका, दार्जलिंग, तथा अन्य स्थानों में भी सहकारी समितियाँ स्थापित हो गई हैं, जिनकी सख्या दो सौ से कुछ अधिक है। प्रान्त में यह आन्दोलन अत्यन्त सफल हुआ है, और भविष्य में अधिकाधिक उन्नति की आशा है।

कलकत्ते की भांति मदरास में भी दूध सहकारी समितियाँ स्थापित की गई हैं।

उत्तर प्रदेश में लखनऊ और इलाहाबाद की सहकारी दूध यूनियनें वर्ष में कुल मिलाकर २०,००० मन दूध लगभग ८॥ लाख रुपये का बेच लेती हैं और अपने पास के गाँवों में अपने सदस्यों को, प्रतिवर्ष २ लाख रुपये के लगभग दूध के मूल्य के रूप में बाँटती हैं। लखनऊ यूनियन प्रति दिन ५० मन दूध और प्रयाग की यूनियन ३० मन दूध बेचती हैं। संयुक्तप्रांत में लखनऊ और इलाहाबाद दूध यूनियनों को मिला कर ४५ दूध समितियाँ हैं। लखनऊ की समितियों के सदस्य अपनी गायों का दूध पञ्चों के सामने दुहते हैं, और उन बर्तनों को, जिनमें भरकर दूध लखनऊ भेजा जाता है, वहीं ताला लगा दिया जाता है। समितियों से दूध उन भण्डारों पर ले जाया जाता है, जहाँ वह इकट्ठा होता है वहाँ दूध की परीक्षा होती है। फिर उसे गरम किया जाता है। गरम दूध बड़े-बड़े बर्तनों में भर कर उन पर मुहर लगा दी जाती है और मोटर-लारी द्वारा उन्हें लखनऊ भेज दिया जाता है। लखनऊ यूनियन में पहुँचने पर दूध जाँचा जाता है, फिर उसे ठंडा किया

जाता है और शीतभंडार ('कोल्ड स्टोरेज') में रखा जाता है। पीछे उसे वर्तनों में बन्द करके ग्राहकों के पास भेज दिया जाता है। यह यूनियन आर्थिक दृष्टि से बहुत सफल हुआ है। संयुक्तप्रान्त में उन्नाव और बनारस में भी एक एक दूध समिति स्थापित हुई है।

आसाम में भी कुछ दूध समितियाँ स्थापित की गई हैं, किन्तु वहाँ कुछ को छोड़ कर शेष असफल रहीं।

पंजाब में कुछ ऐसी समितियाँ स्थापित की गई हैं, जो प्रति सप्ताह अपने सदस्यों की गायों का दूध नापती हैं. और उसका लेखा रखती हैं। समिति का निरीक्षक सदस्यों को बतलाता है कि किस गाय का रखना व्यापारिक दृष्टि से लाभदायक है और किस गाय का हानिकारक। जब तक भारतवर्ष में दूध का धंधा उन्नत नहीं हो जाता, यह आशा करना कि इस प्रकार की समितियाँ अधिक स्थापित होंगी, स्वप्न मात्र हैं।

घी समितियाँ—उत्तरप्रदेश में घी का धंधा बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह धंधा व्यापारियों के हाथ में है, जो प्रायः किसान को घी का कम मूल्य देकर उसमें चर्बी, या तेल, बनस्पति-घी मिला कर ऊँचे दामों पर ग्राहकों को बेचते हैं होता यह है कि व्यापारी किसानों को भैंस लेने के लिए कुछ रुपया पेशगी उधार दे देते हैं। वे किसान उस व्यापारी के आर्थिक दास बन जाते हैं व्यापारी प्रत्येक पखवारे जाकर घी सस्ते दामों पर गांवों से इकट्ठा कर लेता है। ऋणी किसान उसे कम दामों पर अपना घी बेंचता है व्यापारी मंडियों में घी लाकर थोक व्यापारियों को बेंचते हैं। वहाँ घी में मिलावट होती है। घी समितियों की स्थापना की आवश्यकता इस कारण हुई क्योंकि उससे दो बड़े लाभ हैं। एक तो किसान को घी का उचित मूल्य मिलता है दूसरे उपभोक्ताओं को शुद्ध घी प्राप्त हो जाता है। घी समिति का उद्देश्य - सदस्यों का घी

कमीशन पर बेचना, दुधारु पशुओं की नस्ल को सुधारना, तथा दुधारु पशुओं को मोल लेने के लिए ऋण देना है।

घी समिति का कार्य क्षेत्र एक गाँव होता है। प्रत्येक व्यक्ति जो कि गांव में रहता है और उसके पास कमसे कम एक दुधारु गाय या भैंस है, समिति का सदस्य हो सकता है। यदि किसी सदस्य के पास स्थायी रूप से गाय या भैंस नहीं रहती है तो वह सदस्य नहीं रहता। प्रत्येक सदस्य को समिति में एक हिस्सा लेना पड़ता है।

समिति की कार्यशील पूँजी:—समिति की कार्यशील पूँजी इस प्रकार इकट्ठी की जाती है। (अ) हिस्सा पूंजी (आ) सदस्यों की जमा (इ) गैर सदस्यों की जमा (ई) रक्षित कोष (उ) लाभ। हिस्से का मूल्य १० रु है। कोई सदस्य एक हिस्से से अधिक नहीं खरीद सकता। हिस्से उन्हीं लोगों को हस्तांतरित किए जा सकते हैं जो कि सदस्य बनने की योग्यता रखते हैं और जिन्हें कमेटी स्वीकार कर ले।

यदि समिति को ऋण की आवश्यकता हो तो सेन्ट्रल सहकारी बैंक से ले लेती है। एक चौथियाई लाभ रक्षित कोष में जमा किया जाता है।

प्रबंध:—साधारण सभा को मत अधिक प्राप्त होते हैं जो कि साख समिति की साधारण सभा को प्राप्त होते हैं। सदस्यों को केवल एक मत प्राप्त होता है और पांच सदस्यों की पंचायत साधारण सभा द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार समिति का प्रबंध करती है।

प्रबंध कारिणी समिति किन शर्तों पर तथा कितने समय के लिए सदस्यों को ऋण दिया जाना चाहिए तथा जमा लेनी चाहिए यह तय करती है, प्रबंधकारिणी समिति ही कमीशन की दर तय करती है तथा किस कीमत पर घी खरीदा और बेंचा जावे यह तय करती है। घी की जांच, उसकी ग्रेड निर्धारित करना, उसको साफ कराना, उसको रखना तथा उसकी बिक्री का प्रबंध भी पंचायत ही करती है।

प्रत्येक सदस्य जो कि समिति से भैंस या गाय मोल लेने के लिए ऋण लेता है उसे एक बोंड लिखना पड़ता है और एक जामिन देना पडता है। ऋण लिया हुआ रुपया गाय या भैंस खरीदने में ही काम में लाया जा सकता है अन्यथा ऋण वापस करना पड़ता है।

यदि कोई सदस्य चाहता है तो घी के मूल्य का ७५ प्रतिशत सदस्य को पेशगी दे दिया जाता है परन्तु उस पर सूद लिया जाता है।

समिति घी को नगद मूल्य लेकर ही बेंचती है। केवल सरकारी विभागों को साखदी जाती है।

जैसे ही किसी सदस्य की गाय या भैंस बियाई कि समिति उस सदस्य से एक निश्चित राशि घी खरीदने का इकरारनामा कर लेती है। सदस्य को घी समिति के द्वारा ही बेंचने का इकरार करना पड़ता है। प्रत्येक पखवारे पंचायत के सामने घी लाया जाता है और तौला जाता है। पंचायत शुद्ध घी ही स्वीकार करती है।

लाभः—समिति के लाभ का बटवारा इस प्रकार होता है। ७५ प्रतिशत रक्षित कोष में जमा किया जाता है। ७ प्रतिशत हिस्सा पूँजी पर लाभ बांट दिया जाता है। सदस्यों को उनके घी के मूल्य के अनुपात में बोनस दिया जाता है। बोनस और लाभ कुल लाभ का २५ प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता। शेष रक्षित कोष को बढ़ाने तथा अगले वर्ष के उपयोग के लिए शेष लाभ रख दिया जाता है। ७½ प्रतिशत शिक्षा, चिकित्सा, निर्धनों की सहायता जैसे सार्वजनिक हित के कार्यों में व्यय किया जासकता है।

प्रान्त में लगभग एकइ बार समितियां हैं। वे घी यूनियनों से सम्बंधित हैं और इन्हीं यूनियनों के द्वारा यह समितियां अपना घी बेंचती हैं। प्रान्तीय मारकेटिंग बोर्ड ने शिकोहाबाद में एक घी टैस्टिंग स्टेशन स्थापित कर दिया तबसे सहकारी समितियों के घी प्रसिद्धि अधिक हो गई और बाजार में उसकी मांग बढ़ गई।

घी यूनियनः—घी यूनियन अपने से सम्बंधित समितियों के घी की बिक्री का प्रबंध करती है, उनके घी की शुद्धता की जांच करती है। घी की बिक्री होने तक अच्छी तरह रखती है, घी को साफ करती और उनकी ग्रेड निर्धारित करती है। वह घी भंडार स्थापित करती है और घी एजेंट नियुक्त करती है। वह अपने क्षेत्र के दुधारु पशुओं की नस्ल को उन्नत करने का उपाय करती है। वह उस क्षेत्र में अच्छे सांड रखती है और चारे दाने का प्रबन्ध करती है।

इस प्रकार घी यूनियनें घी समितियों की देख भाल तथा उनकी सहायता करती हैं तथा उनके घी की बिक्री का प्रबंध करतीं हैं।

खोया समितियां—उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले में तथा हरदोई जिले के संडीला तहसील में ३० खोया समितियां स्थापित की गई हैं जो सफलता पूर्वक काम कर रही हैं। सदस्य अपना दूध समितियों के केन्द्रों में लाते हैं और वहां उनके दूध का खोया बना लिया जाता है। यह खोया लखनऊ, कानपुर तथा देहरादून के बाजार में बेंचा जाता है। यह समितियां लाभ दे रही हैं और सफलता पूर्वक कार्य कर रही हैं।

यह समितियां भी अपने सदस्यों को पशु खरीदने के लिए क़र्ज देती हैं। और उनके चारे दाने का प्रबन्ध करती हैं तथा पशुओं की नस्ल को सुधारने का उपाय करती हैं; तथा अच्छे सांड रखती हैं। इन समितियों का प्रबन्ध लगभग वैसा ही है जैसा घी समितियों का है। अतएव ग्राहकों को शुद्ध घी देने और किसानों को अच्छा मूल्य दिलाने के लिए सहकारी घी समितियाँ स्थापित की गयी हैं। इस समय प्रान्त में आगरा, एटा, बांदा, जालौन, मैनपुरी, इटावा, मेरठ, बुलन्दशहर इत्यादि जिलों में लगभग १००० घी समितियाँ हैं, जो १२ घी विक्रय यूनियनों से सम्बन्धित हैं। इन समितियों के दस हजार से ऊपर सदस्य हैं और लाखों रुपये का माल बेचा जाता है।

एक गांव में घी समिति स्थापित की जाती है, जिस किसान के पास गाय या भैंस होती है, वह उसका सदस्य बन सकता है। जब गाय भैंस ब्याती है, तभी समिति उससे एक निश्चित राशि में घी के लिये वादा करा लेती है। समिति उस घी का रुपया किसान को पेशगी दे देती है। प्रति पखवारा घी पञ्चायत के सामने, गरम किया जाता है और तोला जाता है। केवल शुद्ध घी ही लिया जाता है और उस सदस्य के हिसाब में जमा कर दिया जाता है। प्रत्येक जिले में एक घी यूनियन है, जो घी को इकट्ठा करके बाहर भेजती है।

बारहवाँ परिच्छेद

चकबन्दी समितियाँ

खेतों का छोटे और बिखरे हुए होना—भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है, लगभग ७० प्रतिशत जनता खेतीबारी में लगी है। गृह-उद्योग-धंधों के नष्ट हो जाने के कारण उनमें लगी हुई जनता भी खेतीबारी में घुस गई; साथ ही बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण-पोषण के लिये भी खेती के अतिरिक्त और कोई साधन नहीं रहा। इन सब कारणों से खेती में लगी हुई जनसंख्या बराबर बढ़ती गई। फल यह हुआ कि प्रति किसान भूमि कम होती गई। बम्बई, पञ्जाब तथा अन्य प्रान्तों में तो कहीं कहीं खेत केवल तीन या चार वर्ग गज के रह गये हैं। देश में खेतीबारी के योग्य जितनी भूमि थी, वह सब जोत ली गई, यहाँ तक कि चरागाह भी खेतों में परिणत कर दिये गये; फिर भी भूमि की कमी रही।

किसानों के पास भूमि थोड़ी तो है ही, साथ ही वह छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित है. और ये टुकड़े एक-दूसरे के पास न होकर बिखरे हुए हैं। खेतों के बिखरे हुए होने से किसान का समय, परिश्रम तथा पूँजी का इतना अधिक अपव्यय होता है कि वैज्ञानिक ढंग से खेती का उन्नति नहीं हो सकेगी।

खेती के बिखरने का कारण यह है कि भारतवर्ष में हिन्दू तथा मुसलमानों में यह रीति है कि बाप के मरने पर भूमि बराबर बराबर सब लड़कों में बाँट दी जावे। फल यह होता है कि प्रत्येक लड़का बाप के हर एक खेत में से बराबर हिस्सा लेना चाहता है। मिसाल के तौर पर यदि किसी के पास चार भूमि के टुकड़े हैं और उसके चार बेटे हैं,

तो चारों बेटे प्रत्येक टुकड़े में से एक-चौथाई हिस्सा लेंगे। बात यह है कि प्रत्येक टुकड़े की उत्पादन शक्ति भिन्न-भिन्न होती है, इसलिए अच्छी तथा बुरी सारी ही भूमि के बराबर टुकड़े करके बाँट दिये जायँगे। फल यह होगा कि वे चार टुकड़े सोलह टुकड़ों में विभाजित हो जावेंगे। क्रमशः खेत बँटते बँटते एक दूसरे से दूर पड़ जाते हैं और क्षेत्रफल में बहुत छोटे हो जाते हैं।

बिखरे हुए खेतों का खेतीबारी पर बहुत बुरा प्रभाव होता है। कुछ खेत तो इतने छोटे हो जाते हैं कि उन पर खेती-बारी हो ही नहीं सकती, वह भूमि बेकार पड़ी रहती है। फिर, बहुत सी भूमि खेतों की मेड़ों में नष्ट हो जाती है। किसान को एक खेत से दूसरे खेत पर जाने में बहुत समय खर्च करना पड़ता है। वह न तो उन बिखरे हुए खेतों की ठीक तरह से देखभाल ही कर सकता है, और न वैज्ञानिक ढंग से खेती ही कर सकता है। यदि किसान के सब खेत एक ही स्थान पर हों तो एक कुआँ खोद कर सिंचाई कर सकता है, किन्तु प्रत्येक बिखरे हुए खेती की रखवाली भी नहीं कर सकता। छोटे-छोटे खेतों की मेड़ों के कारण किसानों में आपस में झगड़ा होता है, इस प्रकार खेतों के बिखरे हुए होने की दशा में खेतीबारी की उन्नति नहीं हो सकती। जब तक हिन्दू तथा मुस्लिम कानूनों में परिवर्तन न किया जावे, तब तक यह समस्या हल नहीं हो सकती। बम्बई प्रान्त में दो बार इस बात का प्रयत्न किया गया, किन्तु दोनों बार वह असफल रहा। हाँ, बड़ौदा राज्य में एक ऐसा कानून अवश्य बना दिया गया है, जिससे कोई खेत एक निश्चित सीमा के बाद बांटा नहीं जा सकता।

पंजाब में चकबन्दी—भारतवर्ष में सर्व-प्रथम पंजाब में सहकारिता के द्वारा खेतों की चकबन्दी का काम प्रारम्भ किय गया, और वहाँ आशाजनक सफलता प्राप्त हुई। १९२० में वहाँ भूमि चकबन्दी करनेवाली समितियाँ इस उद्देश्य से स्थापित की गई कि छोटे बिखरे हुए खेतों को इस प्रकार बांटा जाय कि किसानों को अपनी सारी भूमि के

बराबर एक ही स्थान पर, अथवा दो या तीन बड़े टुकड़ों में, भूमि मिल जावे। पंजाब प्रान्तीय सहकारिता विभाग ने इस कार्य के लिये रेवेन्यू विभाग के कर्मचारियों को नियुक्त किया। वहाँ सब-इंस्पेक्टर गाँवों में जाकर किसानों को बिखरे हुए खेतों के होने वाली हानियाँ, चकबन्दी के लाभ और चकबन्दी करने के उपाय समझाता है। जब किसान चकबन्दी समिति के सदस्य बनने को तैयार हो जाते है तो समिति की स्थापना की जाती है, और एक पञ्चायत चुन ली जाती है। समिति का सदस्य या तो जमींदार हो सकता है, अथवा मौरूसी किसान।

समिति को सदस्यों की निम्नलिखित बातें स्वीकार करनी पड़ती हैं (१) चकबन्दी के लिए बिखरे हुए खेतों का नया बटवारा आवश्यक है। (२) यदि किसी योजना को दो तिहाई सदस्य स्वीकार कर लेंगे तो वह योजना प्रत्येक सदस्य को स्वीकार करनी होगी। (३) स्वीकृत योजना के अनुसार वह अपने खेतों को सदा के लिये छोड़ देगा। (४) यदि किसी प्रकार का झगड़ा उपस्थित हो जाय तो पंच नियुक्त किये जावेंगे और जो फैसला वे देंगे वह सबको मान्य होगा। यद्यपि समिति के नियमों के अनुसार दो-तिहाई सदस्यों से स्वीकृत योजना हर एक सदस्य को मान्य होगी, किन्तु यह नियम अभी काम में नहीं लाया जाता, और जब तक सदस्य अपने टुकड़ों को दे कर नये खेत लेना स्वीकार नहीं कर लेते तब तक योजना सफल नहीं होती।

सब-इंस्पेक्टर, गाँव में कितने प्रकार की जमीन है, यह निश्चित करता है, और नवीन बँटवारे में इसका ध्यान रखा जाता है। वह थोड़ी सी भूमि सार्वजनिक उपयोग के लिये सुरक्षित रखता है, जैसे सड़क इत्यादि। कुओं तथा सिंचाई के अन्य साधनों में किसानों का हिस्सा निर्धारित किया जाता है। जब यह निश्चय हो जाता है तो पंचायत कर्मचारी की सहायता से एक नकशा तैयार करती है, जिसमें नवीन बँटवारा दिखाया जाता है। यह नक्शा साधारण सभा के सामने रखा

जाता है। यदि सब सदस्य उनको स्वीकार कर लेते हैं तो वह लागू होता है, नहीं तो फिर से नया बँटवारा होता है और नया नक्शा तैयार किया जाता है। इस प्रकार कभी-कभी नक्शे तीन-चार बार तैयार करने पड़ते हैं, और महीनों का परिश्रम केवल एक किसान के हठ से नष्ट हो जाता है। जब नये बँटवारे को सब लोग स्वीकार कर लेते हैं, तब उन्हें नये खेत दे दिये जाते हैं और उन खेतों की रजिस्ट्री करा दी जाती है।

इस योजना में किसी को हानि नहीं होती, किसी को भी पहले से कम भूमि नहीं मिलती। कोई जबरदस्ती नहीं की जाती, और छोटे तथा बड़े सभी किसान इससे लाभ उठा सकते हैं। चकबन्दी समितियाँ इन बिखरे हुए खेतों की केवल चकबन्दी करती हैं, भूमि का लड़कों में बटना नहीं रोक सकतीं।

पंजाब में चकबन्दी का कार्य आरम्भ होने पर पहले आठ वर्षों में केवल १,६८,००० एकड़ भूमि की चकबन्दी हुई, किन्तु सन् १९२९ में ४६,०७९ एकड़ की, १९३० में ५०,२०० एकड़ से अधिक की, और १९३१ में ७२,८२१ एकड़ भूमि की चकबन्दी हुई। १९३५ तक चकबन्दी की गति कुछ धीमी रही, क्योंकि वह समय आर्थिक मंदी का था। १९३५ के उपरान्त चकबन्दी बहुत तेजी से बढ़ी। अब प्रतिवर्ष डेढ़ लाख एकड़ भूमि की चकबन्दी हो रही है। अब तक बीस लाख एकड़ से अधिक भूमि की चकबन्दी हो चुकी है और प्रति एकड़ पीछे दो रुपये से कम खर्च होता है। चकबंदी के फल-स्वरूप उन गांवों में ७००० नये कुँए और ३० झालरें खोदी गईं, १००० से अधिक कुओं की मरम्मत की गई और वे सिंचाई के योग्य बनाये गये।

पंजाब में चकबन्दी-कानून सन् १९३६ में पास किया गया। वहाँ रेवन्यू विभाग को चकबन्दी के काम में अच्छी सफलता मिली है। जिन गाँवों में चकबन्दी हो चुकी है, वहाँ कुएँ अधिक संख्या में खोदे

गये हैं, तथा जो भूमि पहिले जोती नहीं जाती थी, उस पर खेतीबारी होने लगी है। साथ ही उन गाँवों में खेतीबारी की विशेष उन्नति हुई है। खेतों के बिखरे होने से जो हानियाँ थीं, क्रमशः दूर हो रही हैं। गाँवों में एक प्रकार से नया जीवन आ गया है। यही नहीं कहीं-कहीं, किसानों ने अपने खेत पर ही मकान बना कर रहना प्रारम्भ कर दिया है।

किन्तु इस प्रकार चकबन्दी करने में बहुत सी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। जिस योजना में प्रत्येक किसान को राजी करना आवश्यक हो उसका सफल होना संदेहजनक ही होता है। प्रत्येक भूमि का स्वामी अपनी पैतृक भूमि को अच्छा समझता है, पुराने विचारों के बुड्ढे किसान कोई परिवर्तन नहीं चाहते, छोटे किसानों को चकबन्दी में अधिक लाभ नहीं दिखाई देता, क्योंकि उनके पास एक या दो ही खेत हैं; तथा मौरूसी काश्तकार समझता है कि यदि उसने अपनी भूमि को बदल लिया तो उसके अधिकार जाते रहेंगे। यह कठिनाइयाँ तो हैं ही; गाँव का पटवारी भी चकबंदी नहीं चाहता। वह समझता है कि चकबन्दी हो जाने से उसकी आमदनी कम हो जावेगी। अस्तु, इस कार्य के करनेवालों को अत्यन्त धैर्य तथा सहानुभूति से काम करना चाहिए।

जब किसी किसान के हठ से योजना असफल होती दिखाई दे तो उस किसान की भूमि को छोड़ देने से काम चल सकता है। परन्तु ऐसे बहुत से उदाहरण हैं, जिनमें बहुत समय तक रुपया खर्च करके योजना तैयार करने पर भी कतिपय किसानों के राजी न होने से सब किया-धरा व्यर्थ हो गया। सन् १९२८ में यह नियम बनाया गया कि यदि ६० प्रतिशत सदस्य किसी योजना को स्वीकार करें तो उस योजना को लागू किया जावे।

कुछ विद्वानों का कथन है कि बिना कानून बनाये चकबन्दी का कार्य सफलता-पूर्वक नहीं किया जा सकता। कुछ लोगों का तो यहाँ

तक कहना है कि सहकारिता आन्दोलन इस कार्य के लिए उपयुक्त नहीं है, इसलिये कानून के द्वारा चकबन्दी होना चाहिए। किन्तु यह सब मानते हैं कि सहकारिता के इतने अधिक लाभ हैं कि जब तक इसके द्वारा सफलता मिल रही है तब तक इसको न छोड़ना चाहिए। जहाँ-जहाँ चकबन्दी का कार्य सफलता-पूर्वक हो चुका है. वहाँ जनता इसके लाभों को समझ गई है. और लोगों की राय कानून बनाने के पक्ष में है। परन्तु अभी वह समय नहीं आया. जब कानून के द्वारा चकबन्दी का कार्य किया जावे; क्योंकि यदि कोई ऐसा कानून बनाया गया तो यह कार्य रेवन्यू विभाग के कर्मचारी करेंगे; फल यह होगा कि जनता का विश्वास हट जावेगा और बड़ी कठिनाइयां उपस्थित होंगी।

१६२८ में रजिस्ट्रार सम्मेलन ने इस आशय का प्रस्ताव पास किया था कि जहाँ तक स्थानीय परिस्थिति सहकारी समितियों के द्वारा चकबन्दी के लिए अनुकूल हो वहाँ तक समितियां यह कार्य करे।

मध्यप्रदेश में—मध्यप्रदेश की छत्तीसगढ़ कमिश्नरी में खेत बहुत छोटे तथा बिखरे हुए हैं। प्रान्तीय सरकार ने कई बार इस समस्या को हल करने का विचार किया। रेवन्यू तथा बन्दोबस्त विभाग के कर्मचारियों ने चकबन्दी करने का प्रयत्न भी किया किन्तु सफलता न मिली। ज़मींदारों तथा मालगुजारों ने भी चकबन्दी का प्रयत्न किया, किन्तु किसानों ने इस कार्य से सहयोग नहीं किया, क्योंकि मालगुजार यह प्रयत्न करते थे कि अच्छी भूमि उन्हें मिल जावे। इस कमिश्नरी में एक तो भूमि बहुत प्रकार की है दूसरे कानूनी अड़चनें भी हैं। इस कारण प्रान्तीय सरकार ने सन् १६१८ में चकबन्दी-कानून बनाया, जो अभी केवल छत्तीसगढ़ कमिश्नरी में ही लागू है।

इस कानून के अनुसार दो या अधिक गाँवों की भूमि के स्वामी, अथवा स्थाई रूप से जोतनेवाले, चकबन्दी के लिए प्रार्थनापत्र दे सकते हैं। किन्तु शर्त यह है कि उनके पास गाँव की भूमि का एक निश्चित

भाग होना चाहिए। गाँव के कम से-कम आधे भूमि जोतनेवाले जिनके पास गाँव की दो-तिहाई भूमि हो, यदि चकबन्दी की योजना को मानलें और अधिकारियों से उसकी स्वीकृति मिल जावे तो वह योजना अन्य लोगों पर लागू हो जावेगी। इस कार्य को करने के लिये एक अफ़सर रहता है। उसे उच्च अधिकारियों से योजना की स्वीकृति लेनी पड़ती है। यदि उस योजना में किसी को कुछ भी आपत्ति हो तो डिप्टीकमिश्नर अथवा सेटलमेन्ट-अफ़सर स्वीकृति दे सकता है, नहीं तो सेटलमेन्ट-कमिश्नर स्वीकृति देता है। उसकी कोई अपील नहीं हो सकती, केवल प्रान्तीय सरकार इस बँटवारे को पलट सकती है।

मध्यप्रान्त में चकबन्दी कानून के द्वारा बहुत कुछ काम हुआ है। सन् १९३६ तक १६८५ गाँव में चकबन्दी हुई और ३३ करोड़ ४० लाख भूमि के टुकड़ों को घटाकर उन्हें केवल पाँच लाख सत्तर हजार कर दिया गया। प्रति वर्ष अधिकाधिक भूमि की चकबन्दी हो रही है। चकबन्दी रेवन्यू विभाग करता है।

उत्तर प्रदेश—उत्तर प्रदेशमें २६१ सहकारी भूमि-चकबन्दी समितियाँ स्थापित हो चुकी हैं। ये समितियाँ पंजाब की समितियों को ही आदर्श मानकर कार्य कर रही हैं। किन्तु यहाँ कठिनाइयाँ अधिक हैं। एक तो यहाँ गाँवों में भूमि बहुत प्रकार की होती है दूसरे जमींदार तथा किसान भी बहुत प्रकार के हैं, उनके अधिकारों में बहुत भिन्नता है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि यह आंदोलन कहाँ तक सफल होगा। फिर भी लगभग एक लाख बीघा भूमि की चकबन्दी हो चुकी है, और १ लाख खेत, ६ हजार खेतों में परिणत कर दिये गये हैं। १६३९ में चकबन्दी-कानून पास हो गया, तब से रेवन्यू विभाग भी यह काम कर रहा है।

कुछ समय से मदरास प्रान्त में भी चकबन्दी समितियाँ स्थापित हो रही हैं। वहाँ प्रयोग अभी नया ही होने से उसके बारे में विशेष नहीं कहा जा सकता।

देशी राज्यों में बड़ौदा तथा कश्मीर में चकबन्दी समितियाँ सफलतापूर्वक काम कर रही हैं; इन दोनों राज्यों में चकबन्दी का काम क्रमशः बढ़ता जा रहा है।

भारतवर्ष के प्रत्येक प्रांत तथा देशी राज्य में बिखरे हुए छोटे-छोटे खेतों की समस्या ने विकट रूप धारण कर रखा है। जगह-जगह इस पर विचार हो रहा है, किन्तु क्या उपाय काम में लाया जावे, इसका निश्चय नहीं हो पाया है। पंजाब ने इस आंदोलन में पथ-प्रदर्शक का कार्य किया है।

तेरहवाँ परिच्छेद

सफ़ाई तथा स्वास्थ्य समितियाँ

गाँवों की सफाई और स्वास्थ्य का प्रश्न—भारतवर्ष के गाँवों में गन्दगी का तो मानो साम्राज्य है। जिधर देखिये, उधर कूड़ा तथा गंदगी के ढेर दिखलाई देंगे। गांव की गलियाँ कभी साफ नहीं की जातीं, घरों के समीप ही अथवा कुछ ही दूरी पर, खाद के ढेर लगा दिये जाते हैं, जिनसे गन्दगी तो बढ़ती ही है; साथ ही मक्खियाँ इतनी अधिक उत्पन्न हो जाती हैं कि वे सारे गाँव में फैल जाती हैं। ये मक्खियाँ गन्दे पदार्थ पर बैठ कर अपने परों तथा पैरों से गन्दगी को भोजन, वस्त्र, जल तथा बच्चों के चेहरे, तथा पशुओं के मुँह नाक तथ आँख में डालती रहती हैं। फिर, गाँवों में घरों में शौचगृह नहीं होते। स्त्री पुरुष शौच के लिए बाहर खेतों में जाते हैं। यदि कोई नदी,ताल, अथवा पोखरा हो तब तो कुछ कहना ही नहीं, वह गाँव भर के लिए शौच स्थान का काम देता है।

भारतीय ग्रामीण जनता निर्धन होने के कारण जूते कम पहिनती है। अधिकतर किसान नंगे पैर रहते हैं। फल यह होता है कि खेतों तथा मैदान में पड़े हुए मल से पैरों का सम्पर्क होने से एक प्रकार का कीड़ा मनुष्य की खाल पर असर करता है और मनुष्य को 'हुकवर्म नामक' रोग हो जाता है। यह रोग भारतीय ग्रामों में, विशेषकर बंगाल में, बहुत होता है। जब मल सूख जाता है तो वह हवा के द्वारा इधर-उधर फैल जाता है। मल के कण हवा में उड़ते रहते हैं; भोजन और जल को दूषित करते हैं तथा बच्चों की आँखों में पड़ कर उन्हें खराब करते हैं। गाँवों में धूल भी बेहद होती है। इससे स्वास्थ्य को बहुत हानि पहुँचती है।

गाँव वाले अपने मकान बनाने के लिये मिट्टी खोदते हैं, इससे गाँव के आसपास बहुत से गड्ढे हो जाते हैं। वर्षा का जल इन गड्ढों में भर जाता है और रुक जाने के कारण सड़ने लगता है। मलेरिया ज्वर के कीड़ों का तो वह उद्गम स्थान बन जाता है, और गाँव के निवासी ज्वर से पीड़ित होते हैं। गाँव के घरों में गन्दे जल को बहा लेजाने के लिये नाली नहीं होती। गन्दा पानी घरों के पास ही सड़ता रहता है। घर अधिकतर कच्चे होते हैं, और उनमें हवा के लिये कोई खिड़की आदि नहीं लगाई जाती। साधारण किसान अपने पशुओं को उसी मकान में रखता है, जिसमें वह स्वयं रहता है; इस कारण वह मकान गन्दे रहते हैं।

इसके अतिरिक्त निर्धन अशिक्षित किसान स्वच्छता से रहना नहीं जानता। इससे हमारे गाँव भयंकर रोगों के स्थाई अड्डे बन गये हैं। वर्षा के दिनों में तथा वर्षा के बाद तनिक गाँवों में जाकर देखिये, वहाँ सर्वत्र लोगों को ज्वर से पीड़ित पाइयेगा। प्लेग, हैजा, चेचक, तथा ज्वर तो मानों हमारे गाँवों में स्थायी रूप से जम गये। तिस पर भी औषधियों का कोई प्रबन्ध नहीं है। सरकार या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड जो अस्पताल स्थापित करती है, उसका लाभ अधिकतर शहर वालों को ही मिलता है।

कुछ वर्ष हुए अखिल भारतवर्षीय मेडिकल कानफ्रेंस (डाक्टरों की सभा) ने अपने अधिवेशन में इस आशय का एक प्रस्ताव स्वीकार किया था कि भारतवर्ष में प्रतिवर्ष लगभग एक करोड़ मनुष्य दो सप्ताह से लेकर चार सप्ताह तक उन रोगों से पीड़ित रहते हैं, जो रोके जा सकते हैं। रोगग्रस्त मनुष्यों के केवल वे ही दिन नष्ट नहीं होते, जिनमें वह बीमार रहते हैं, वरन् उनकी कार्य-शक्ति कुछ महीनों के लिये कम हो जाती है। यही नहीं, लाखों की संख्या में मनुष्य, स्त्रियाँ तथा बच्चे मर भी जाते हैं। यदि इन रोगों द्वारा होने वाली आर्थिक हानि का हिसाब लगाया जावे तो वह प्रति वर्ष करोड़ों की

होती है। यह बहुत जरूरी है कि मेडिकल (चिकित्सा-) विभाग पर अधिक रुपया खर्च करके; इन रोके जा सकनेवाले रोगों को रोका जावे, जिससे सम्पत्ति की उत्पत्ति करनेवालों की कार्य शक्ति नष्ट न हो और देश में अधिक से अधिक सम्पत्ति उत्पन्न की जा सके। अस्तु; स्वास्थ्य-रक्षा का प्रश्न आर्थिक प्रश्न है। आगे हम यह बतलाएँगे कि सहकारिता के द्वारा यह प्रश्न कहाँ तक हल किया जा सकता है।

बंगाल की मलेरिया-निवारक समितियाँ—बंगाल में हर साल बहुत से मनुष्य मलेरिया के कारण मरते हैं। इसका प्रकोप बढ़ता ही जाता है। कहीं-कहीं तो गाँव के गाँव उजड़ गये हैं। यद्यपि इस भयंकर रोग ने प्रान्त के जीवन को तहस-नहस कर रखा है, किन्तु सरकार इसको रोकने के उपाय न कर सकी। उसका विश्वास था कि इस रोग को तभी रोका जा सकता है कि जब कोई बड़ी योजना तैयार की जावे और उसे प्रान्त भर में लागू किया जावे। विशेषज्ञों की यह सम्मति थी कि मलेरिया ज्वर का कीड़ा रुके हुए पानी में उत्पन्न होता है, और वह उत्पन्न होने के स्थान से आठ मील तक जा सकता है। अस्तु; जब तक किसी गांव के चारों ओर आठ मील तक जितने गड्ढे हैं. वे भर न दिये जावें, अथवा रुके हुए पानी में मिट्टी का तेल न डाल दिया जावे; मलेरिया नहीं रोका जा सकता। यह समझकर कि यह कार्य गाँवों में रहनेवालों की सामर्थ्य के बाहर है, कोई प्रयत्न नहीं किया गया।

डाक्टर गोपालचन्द्र चटर्जी ने खोज करके यह पता लगाया कि मलेरिया का कीड़ा अपने जन्म-स्थान से आध मील से अधिक दूर जा ही नहीं सकता। अब तो संसार के प्रायः सभी विशेषज्ञों ने इस बात को ठीक मान लिया है। डाक्टर चटर्जी ने सोचा कि इस भयंकर रोग से छुटकारा पाने का सबसे सस्ता और अच्छा उपाय यही है कि गाँवों में सहकारी समितियाँ स्थापति की जावें। इसी उद्देश्य को लेकर उन्होंने १९१२ में ऐन्टी-मलेरिया (मलेरिया निवारक) लीग स्थापित

की, और इसके द्वारा प्रचार करना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम पानीहाटी में मलेरिया निवारक समिति की स्थापना की गयी। इसमें आशाजनक सफलता प्राप्त हुई। क्रमशः समितियों की संख्या बढ़ने लगी। इस आन्दोलन को गाँव गाँव में फैलाने के लिए डाक्टर चटर्जी ने एक केन्द्रीय संस्था की स्थापना की, जिसका नाम "सेन्ट्रल कोआपरेटिव ऐन्टी-मलेरिया सोसायटी, लिमिटेड" है।

व्यक्ति-विशेष तथा मलेरिया निवारक सोसायटी, दोनों ही सेन्ट्रल सोसायटी के सदस्य होते हैं। व्यक्ति-विशेष सदस्य अधिकतर डाक्टर अथवा वे लोग होते हैं, जिन्हें इस आन्दोलन से सहानुभूति होती है। इस समय सेन्ट्रल सोसायटी की ६०० से अधिक मलेरिया-निवारक समितियाँ सदस्य हैं। व्यक्ति विशेष छः रुपया वार्षिक चन्दा देते हैं। बहुत से सदस्यों ने सोसायटी को यथेष्ट दान भी दिया है। ग्रामीण समितियाँ सेन्ट्रल सोसायटी के हिस्से नहीं खरीदतीं। प्रान्तीय सरकार सेन्ट्रल सोसायटी को ग्रांट (सहायता) देती है। सेन्ट्रल सोसायटी इस रुपये से ग्रामीण समितियों को सहायता करती है तथा प्रचार-कार्य में व्यय करती है।

सेन्ट्रल सोसायटी के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:—

(१) प्रान्त भर में मलेरिया-निवारक तथा स्वास्थ्य-समितियों की स्थापना करना जिससे प्रान्त में रोगों को रोका जा सके। (२) ग्राम समितियों को मलेरिया, कालाजार, प्लेग, हैजा चेचक, कोढ़ और क्षय रोग को रोकने के तरीके बताना, तथा उन तरीकों को काम में लाने के लिए उत्साहित करना। (३) प्रान्त में इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रचार करना। (४) ग्राम्य समितियों की देखभाल करना तथा सेन्ट्रल सोसायटी की शाखा स्थापित करना।

आरम्भ में सेन्ट्रल सोसायटी से सम्बन्धित ग्राम-समितियों की संख्या कम थी, इसलिये सोसायटी उनकी देखभाल भी करती थी। किन्तु अब ग्राम-समितियों की संख्या अधिक है तथा प्रान्तीय सरकार इन समितियों

को डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के द्वारा सहायता देती है। समितियों की देखभाल का कार्य डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ही करते हैं; सेन्ट्रल सोसायटी केवल नई समितियों को स्थापित करती है।

ग्राम-समिति अपने गाँव में मलेरिया तथा अन्य रोगों को रोकने का कार्य करती है। समितियों के सदस्यों को चार आने से एक रुपया तक प्रति मास चन्दा देना पड़ता है। प्रत्येक समिति एक वैद्य अथवा डाक्टर को कुछ मासिक देकर रखती हैं, जो सदस्यों के घरों पर बिना फीस लिये जाता है और उनकी चिकित्सा करता है। सेन्ट्रल सोसायटी समितियों को भी आर्थिक सहायता देती है। इन समितियों ने बहुत से अस्पताल तथा स्कूल खोल रखे हैं। इनमें से कुछ अस्पताल तो ऐसे हैं जिनसे सर्वसाधारण को दवा मिलती है; और कुछ ऐसे हैं, जो केवल हिस्सेदारों को ही दवा देते हैं।

जब किसी क्षेत्र में कुछ समितियाँ स्थापित हो जाती हैं तो सेन्ट्रल सोसायटी उनको दृढ़ करने के लिए एक 'ग्रूप' (समूह) कमेटी स्थापित कर देती है। इस कमेटी में प्रत्येक समिति का एक प्रतिनिधि रहता है। ग्रुप कमेटी किसी भी समिति के कार्य में दखल नहीं देती, वह केवल प्रत्येक समिति से कुछ चन्दा लेकर उन समितियों के लिये एक चिकित्सक रखती है। चिकित्सक को उस क्षेत्र में निजी प्रेक्टिस करने की स्वतन्त्रता होती है, परन्तु समितियों के सदस्यों के घरों से वह नाममात्र ही फीस लेता है। यदि कालाजाररोग फैल जाता है तो एक स्थान पर एक औषधालय खोला जाता है, चिकित्सक वहाँ पर सब रोगियों की मुफ्त चिकित्सा करता है; औषधियाँ सेन्ट्रल सोसायटी देती है। यही चिकित्सक मलेरिया, चेचक, हैजे का प्रकोप बढ़ने पर, उनको रोकने का उपाय करते हैं।

ग्राम-समितियाँ मलेरिया को रोकने के लिये वर्षा से पूर्व गाँव के समीपवर्ती सब गड्ढों खाइयों तथा पोखरों को भर देती हैं। नाले और नालियों को ऐसा खोद दिया जाता है कि वर्षा का पानी बह

जावे। यह कार्य प्रति वर्ष, वर्षा के आने से पूर्व समाप्त कर दिया जाता है। वर्षा के उपरांत तीन महीने तक गांव के समीप जहाँ जहाँ पानी इकट्ठा हो जाता है, वहाँ वहाँ समिति मिट्टी का तेल छुड़वाती है, जिससे मलेरिया के कीटाणु उत्पन्न ही न हो सकें। समिति के प्रत्येक सदस्य को एक छपी हुई पुस्तक दी जाती है, जिसमें वह प्रति सप्ताह, उसके घर के लोग कितने दिन मलेरिया से बीमार पड़े यह लिख देता है। समिति का मंत्री इन पुस्तकों के द्वारा, गाँव में मलेरिया का प्रकोप कैसा रहा, इसका लेखा तैयार करता है। इससे सदस्यों को यह ज्ञात हो जाता है कि गांव में मलेरिया घट रहा है या नहीं।

ग्राम मलेरिया-निवारक सहकारी समितियाँ अपने सदस्यों से थोड़ा सा चन्दा लेती हैं, यदि कोई बड़ा काम करना हुआ तो वे सरकार तथा सेन्ट्रल सोसायटी से सहायता की प्रार्थना करती हैं। इन समितियों की यही एक कमजोरी है कि यह आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी नहीं हैं। इस कमी को दूर करने के लिए १९२७ में सेन्ट्रल मलेरिया सोसायटी ने एक एसोसियेशन स्थापित की, जो ग्राम-समितियों के सदस्यों को बंजर भूमि पर (जिस पर वे खेती न करते हों) तरकारी तथा फलों के छोटे-छोटे बाग लगवाती है, और इन बागों की पैदावार की बिकवाने का प्रबन्ध करती है। इस एसोसियेशन की संरक्षकता में एक कमेटी स्थापित की गई है जिसके सदस्य कृषि-शास्त्र के विशेषज्ञ हैं, जो भूमि खाद तथा बीज सम्बन्धी खोज करते हैं, गाँव में समितियों के बागों को देखते हैं और उन्हें सलाह देते रहते हैं इन बागों में सदस्य अधिकतर अपनी आवश्यकताओं के लिये तरकारियाँ उत्पन्न करते हैं। इस समय बंगाल में लगभग ७०० समितियाँ मलेरिया को रोकने का कार्य रही हैं।

उत्तर प्रदेश आदि में—उत्तर प्रदेश में सहकारी साख समितियाँ ने कहीं-कहीं स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारियों की सहायता से स्वस्थ्य-रक्षा का कार्य करना आरम्भ किया है। सदस्यों को खाद गड्ढों में रखने का

आदेश दिया जाता है, वे गांव में सफाई रखने और अस्पताल खोलने के लिए उत्साहित किये जाते हैं, और ट्रेंड दाइयां रखने का प्रयत्न किया जाता है। रहन-सहन सुधार समितियां भी गांवों में सफाई करती है; इसके बारे में आगे लिखा जायगा।

पंजाब में ६८ चिकित्सा-समितियाँ हैं, जो सदस्यों को दवाई देने का प्रबन्ध करती हैं। बिहार-उड़ीसा कुछ सेन्ट्रल बैंक तथा सहकारी साख समितियाँ गांवों में सफाई तथा चिकित्सा का प्रबन्ध करती हैं। यह समितियाँ गांवों को साफ करती हैं, कुओं में दवाई डलवाकर उनके जल को शुद्ध करती हैं, बिना मूल्य औषधियाँ बाँटती है, तथा आयुर्वेदिक और यूनानी अस्पताल स्थापित करती हैं। बम्बई में कुछ समितियाँ अस्पतालों को ग्रान्ट देती हैं जो औषधियाँ मुफ्त बाँटते हैं।

लेखक की योजना—हम पहले बता चुके हैं कि भारतवर्ष में रोगों के कारण मनुष्यों की आयु तथा शक्ति का भयङ्कर ह्रास हो रहा है हमारे गाँवों की गन्दगी, और वहाँ चिकित्सा का प्रबन्ध न होने के कारण यह ह्रास निरन्तर बढ़ रहा है। इसे रोकने के लिए प्रत्येक गाँव में एक स्वास्थ्य-समिति की स्थापना की जावे। गाँव वालों को समिति के लाभ समझाकर उसके सदस्य बना लिया जावे। प्रयत्न यह होना चाहिए कि प्रत्येक घर से एक सदस्य बनाया जावे। सदस्य चार आना प्रति मास चन्दा दे। जो लोग बहुत ही निर्धन हों, और चार आना प्रति मास चन्दा न दे सकें, उनसे चन्दा न लिया जावे; उसके बदले में वे सदस्य मास में एक दिन समिति का कार्य कर दिया करें। यदि कोई सदस्य चाहे तो अपना चन्दा अनाज में भी दे सकता है, किन्तु चन्दा देनेवाले तथा कार्य करनेवालों में कोई अन्तर न होना चाहिए; सब प्रकार के सदस्यों के अधिकार बराबर हों।

साधारण सभा वर्ष का बजट पास करे और समिति का वार्षिक प्रोग्राम निर्धारित करे। वह एक पंचायत, उसका सरपंच, दो मन्त्री तथा एक कोषाध्यक्ष का निर्वाचन करे। पंचायत साधारण सभा द्वारा

निश्चित की हुई नीति के अनुसार कार्य करे। दोनों मन्त्री समिति के कार्य का संचालन करें। जो सदस्य चन्दा न दें, उनसे मन्त्री समिति निम्नलिखित काम करनेवाले—समीपवर्ती सब गड्ढो को पाट देना नालों को ऐसा खोद देना कि उनमें पानी कहीं न रुके. वर्षा समाप्त होने पर जहाँ-जहाँ पानी रुक जावे, वहाँ-समय पर मिट्टी का तेल डलवाना। इसके अतिरिक्त ऐसे सदस्यों से औषधालय में दवाई तैयार कराने का काम लिया जावे; आवश्यकता पड़ने पर वे लोग दूसरे स्थानों पर भेजे जा सकते हैं।

समिति चिकित्सक की सलाह से कुछ औषधियों का संग्रह करे, जो साधारण रोगों में काम आ सके। औषधियों को सदस्यों में बाँटने का कार्य दूसरे मन्त्री के हाथ में रहे। समिति गांव की आवश्यकता के अनुसार गांव से कुछ दूरी पर गड्ढे खुदवाये। ये गड्ढे ६ या ७ फीट गहरे हों; गड्ढों के चारों ओर अरहर अथवा फूस की आड़ खड़ी कर दी जावे. तथा गड्ढे के मुँह पर दो लकड़ी के तख्ते रखदिये जावें। यही गड्ढे गाँव के शौचगृह हों। सदस्यों को मैदानों में शौच जाने की हानिया बता कर, वहां शौच जाने से रोका जावे कुछ शौचगृह स्त्रियों के लिये पृथक् कर दिये जावें। समिति एक मेहतर को नौकर रखे जो गांव के घरों का कूड़ा प्रतिदिन इन शौचगृहों में डाल आया करे. और गांव की गलियों को सफाई रखे। समिति प्रत्येक सदस्य को गड्ढों में खाद बनाने के लाभ समझावे और उन्हें गड्ढों में खाद तैयार करने के लिये उत्साहित करे। प्रत्येक किसान दो गड्ढे तैयार करे; जब एक में से खाद निकाल ली जावे तब दूसरे में गोबर इत्यादि भर जावे। प्रति दिन गोबर, पशुओं के पास बचा रहनेवाला भूसा तथा चारा और घरों का कूड़ा इन गड्ढों में डाला जाया करे। इससे दो लाभ होंगे—एक तो गंदगी दूर हो जावेगी. दूसरे अच्छी खाद उत्पन्न होगी। समिति शौचगृहों में बनी हुई खाद को बेच दे।

समीपवर्ती गांवों की स्वास्थ्य-समितियां मिल कर एक बड़ी या

सामूहिक समिति बनावें। बड़ी समिति एक चिकित्सक तथा एक ट्रेंड दाई नियुक्त करे। इन कर्मचारियों को निजी प्रेक्टिस करने की इजाजत न होनी चाहिए। दाई का यह कार्य हो कि वह बड़ी समिति से सम्बन्धित गांवों में बच्चा जनाने का काम करे। प्रत्येक सदस्य से बच्चा जनाने की फीस आठ आना से एक रुपया तक ली जावे। डाक्टर बीच के गांव में रहे और तीसरे दिन प्रत्येक गांव में जाकर रोगियों की दवा दिया करे। बीच में सभा का मन्त्री रोगियों को डाक्टर की बतलाई दवा देता रहे। यदि किसी रोगी को देखने के लिए डाक्टर को उसके घर जाना पड़े तो उस सदस्य से समिति आठ आना या चार आना, जैसा भी निश्चित किया जावे, फीस ले। गांव का जो आदमी समिति का सदस्य न बने, उससे डाक्टर तथा नर्स की दुगनी फीस ली जावे, वह रुपया उसी समिति में जमा किया जावे।

चिकित्सक का मुख्य कार्य केवल चिकित्सा करना ही न होकर लोगों को रोगों से बचने के उपाय का बतलाना भी होगा। सप्ताह में एक दिन नियत किया जावे, जब डाक्टर मैजिक लालटेन, चित्रों तथा चार्टों की सहायता से व्याख्यान देकर बतलावे कि रोग क्यों उत्पन्न होते हैं, और उनसे बचने के क्या उपाय हैं। बड़ी समिति के कार्यकर्त्ता चिकित्सक की सलाह से प्रचार-कार्य करें। जब कभी समीपवर्ती स्थान में मेला अथवा पैंठ लगे, तब बड़ी समिति के पदाधिकारियों को वहां विशेषकर स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रचार करना चाहिए।

ये बड़ी समितियां अथवा सामूहिक समितियां मिलकर तहसील समिति का संगठन करें। तहसील-समितियों का कार्य केवल ग्राम-समितियों की देखभाल करना, स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी प्रचार करना, तथा जिले के स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारियों से लिखापढ़ी करके, जब कभी उस तहसील के किसी क्षेत्र में कोई बीमारी फैल रही हो, उसको रुकवाने का प्रयत्न करना होगा। बड़ी समितियों के प्रतिनिधि तहसील-समिति में जावेंगे। इस प्रकार संगठन हो जाने से जिले के मेडिकल

अफसर तथा जिला-बोर्ड के अधिकारियों को गाँवों में बीमारी फैलने के समय सफलता-पूर्वक चेतावनी दी जा सकती है, और उनसे सहायता ली जा सकती है।

प्रत्येक प्रान्त में एक प्रान्तीय स्वास्थ्य-समिति का संगठन होना चाहिए, जो ग्रामों में कार्य करने के लिये दाइयों तथा चिकित्सकों को तैयार करे, आंदोलन का नेतृत्व ग्रहण करे, तथा प्रचार कार्य के लिए साहित्य प्रकाशित करे। प्रान्तीय समिति को उन दाइयों में से जो इस समय गांवों में कार्य करती है, साफ, चतुर, तथा कम आयु वाली दाइयों को छांट लेना चाहिए और उन्हें छात्रवृत्ति देकर दाई के काम की वैज्ञानिक शिक्षा दिलवाकर अपने-अपने गाँवों में भेज देना चाहिए। सामूहिक समितियां इन्हीं दाइयों को नौकर रक्खें। बच्चा जनाने के अतिरिक्त इन दाइयों का यह भी कर्तव्य होना चाहिये कि ये माताओं को बतावें कि बच्चों का लालन-पालन किस प्रकार होना चाहिये। चिकित्सक भी ऐसे होने चाहिएँ, जो गाँवों के रहनेवाले हों और गांवों में रहना पसन्द करें। प्रारम्भ में तो आयुर्वेदिक विद्यालयों में से निकले हुये युवक छाँट लिये जावें तथा उनको कुछ दिन आवश्यक शिक्षा देकर गाँवों में रहनेवाले शिक्षित नवयुवकों को आयुर्वेदिक विद्यालयों में भेजकर इस कार्य के लिये तैयार करावें। प्रान्तीय समिति एक पत्रिका प्रकाशित करे, ट्रैक्ट छपवावे, चित्र तैयार करावे, तथा मेजिक लालटेन के लिये स्लाइड तैयार कराकर प्रचार के लिए गाँवों में भेजे।

प्रान्तीय सरकार प्रान्तीय समिति को आवश्यकतानुसार ग्रांट (सहायता) दे। जिला-बोर्ड सामूहिक समिति को चिकित्सक तथा दाई का आधा वेतन दें।

इस प्रकार यदि सहकारिता आन्दोलन का उपयोग स्वास्थ्य-रक्षा के लिए संगठित ढंग पर किया जावे तो ग्रामों में स्वास्थ्य-रक्षा की समस्या हल हो सकती है।

चौदहवाँ परिच्छेद

क्रय-विक्रय समितियां

—o—

योरोपीय देशों में खेतीबारी की उन्नति के लिये सहकारिता का खूब उपयोग किया गया है। वहाँ खेतों की पैदावार को बेचने में किसानों के लिये आवश्यक वस्तुएँ खरीदने में, पशुओं की जा'त को उन्नत करने में, पैदावार को अच्छे मूल्य पर बेचने के लिए रोक रखने में, तथा अन्य कार्यों में सहकारिता का सफलता-पूर्वक उपयोग किया गया है। किसी-किसी देश में तो किसानों ने खेती के यन्त्रों को बनाने का काम भी सम्मिलत रूप में आरम्भ कर दिया है। इस प्रकार खेती-बारी सम्बन्धी सभी कार्य सहकारिता के द्वारा हो सकते हैं। परन्तु क्या प्रत्येक कार्य के लिए भिन्न-भिन्न समितियाँ स्थापित की जावें? डेनमार्क के अतिरिक्त जर्मनी, इटली तथा स्विटजरलैंड में साख-समितियाँ ही ये कार्य करती हैं। लेखक का मत है कि भारतवर्ष में भी ग्रामीण साख समितियों को ही यह सब कार्य करने चाहिएँ; क्योंकि इनके लिए पृथक्-पृथक् समितियाँ स्थापित करना असम्भव है।

किसानों के लिये साख के बाद, खेती की पैदावार को बेचना, आवश्यक वस्तुओं को खरीदना तथा ग्रामीण उद्योग धंधों के द्वारा सम्पत्ति उत्पन्न करना ही मुख्य कार्य है। किसान साधन सम्पन्न नहीं होता, इसलिए उसको बीज, यन्त्र, खाद, तथा दैनिक व्यवहार की वस्तुएँ गाँव के बनिये अथवा दूकानदार से खरीदनी होती है, और उन वस्तुओं के लिए बहुत मूल्य देना पड़ता है। किसान बेचने की कला नहीं जानता, इसलिये वह गाँव के बनिये, तथा मंडियों के

दलालों और व्यापारियों से लुटता है; उसे अपनी पैदावार का मूल्य कम मिलता है।

इससे स्पष्ट है कि किसान के लिये केवल साख का प्रबन्ध कर देने से ही काम नहीं चलेगा; उसके लिये क्रय-विक्रय समितियों की स्थापना करना आवश्यक होगा। नहीं तो महाजन किसान को आवश्यक वस्तुएँ वेचने में तथा उसकी पैदावार खरीदने में लूटता रहेगा। इस कारण, क्रय-विक्रय समितियों के स्थापित किये बिना. किसान की आर्थिक स्थिति नहीं सुधर सकती।

क्रय-समितियाँ—सहकारी साख समितियों के द्वारा यह कार्य सफलता पूर्वक किया जा सकता है। जब साख समिति का कोई सदस्य किसी वस्तु को खरीदने के लिये ऋण लेना चाहे. तब उसे रुपया न देकर वह वस्तु खरीद दी जावे। जहाँ क्रय-समितियाँ स्थापित हो जाती हैं, वहाँ समिति का मेनेजर सदस्यों के आडर इकट्ठे कर लेता है. फिर एक साथ चीजें मंगाकर सदस्यों में बाँट दी जाती है; कमीशन केवल नाममात्र का लिया जाता है। इस प्रकार समिति चीजें थोक मूल्य पर खरीद सकती हैं; सदस्यों को अधिक मूल्य नहीं देना पड़ता। क्रय सहकारी समितियों की सफलता के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि बाजार अध्ययन किया जावे। इससे यह लाभ होगा कि समिति मन्दी के समय खरीद करेगी। उसके कार्यकर्त्ताओं को यह देखना चाहिए कि बिना मांग के कोई वस्तु न खरीदी जावे; आरम्भ में केवल उन्हीं वस्तुओं को खरीदा जावे, जिनकी सदस्यों में अधिक मांग हो।

क्रय-समितियाँ भारतवर्ष में बहुत कम पाई जाती हैं। बम्बई प्रांत में कुछ समितियाँ खाद तथा खेतीबारी के यन्त्रों को खरीदने के लिए स्थापित की गई थीं; किन्तु उनकी दशा ठीक नहीं है। इन समितियों की असफलता का मुख्य कारण दोषपूर्ण प्रबन्ध तथा सदस्यों की उदासीनता है। जो समितियाँ, क्रय-विक्रय दोनों ही कार्य कर रही हैं, वे कुछ सफल अवश्य हुई हैं।

खेतिहरों के लिये उत्तम बीज की समस्या सदा उपस्थित रहती है। किसानों को उत्तम बीज सहकारी समितियों के द्वारा उचित मूल्य पर मिल सकता है। समिति सदस्यों से ही फसल के समय बीज मोल लेकर अपने भण्डार में रख सकती है, अथवा बीज कृषि-विभाग से मिल सकता है। बम्बई प्रान्त में कपास बेचनेवाली समितियाँ बीज रखती हैं। किन्तु भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में इस प्रकार की समितियाँ बहुत हैं।

विक्रय-समितियाँ—पहिले कहा जा चुका है कि अधिकतर किसान ऋणी है; इस कारण वे अपनी फसल बेचने में स्वतंत्र नहीं होते। जो गाँव का बनिया लेनदेन करता है, वही फसल को खरीदता है। छोटे किसानों को अपनी फसल उसी के हाथ बेचनी पड़ती है। एक तो फसल कटने के कुछ दिन बाद तक बाजार भाव वैसे ही गिरा रहता है; दूसरे, बनिया गाँव में अकेला खरीददार होता है; इसलिए वह बाजार-भाव से कम कीमत पर फसल खरीद लेता है। किसान बाजार-भाव से अनभिज्ञ होने के कारण जो मूल्य बनिया देता है, ले लेता है। कपास, तम्बाकू, जूट तथा अन्य कच्चा औद्योगिक माल खरीदने के लिए व्यापारी, (जो बड़े-बड़े व्यापारियों के एजेन्ट होते हैं) गांवों में जाकर फसल को खरीदते हैं। यह व्यापारी विदेशों के भाव को भली भांति जानते हैं; ये लोग गांव के सीधे-सादे किसानों को जो मूल्य देते हैं, वही उन्हें स्वीकार करना पड़ता है।

जिन किसानों के पास भूमि अधिक होती है और जिनकी पैदावार भी अधिक होती है, वे यदि समीप में कोई मंडी होती है तो पैदावार वहाँ लेजाकर बेचते हैं। किन्तु इन मंडियों में किसान को खूब ही लूटा जाता है। नियमानुसार टेक्स तो उसे देना ही पड़ता है, मंडी में गाड़ी खड़ी करने का किराया तथा दलालों को दलाली भी उसे देनी पड़ती है। दलाल व्यापारियों से मिला रहता है और किसान को उस मूल्य

पर, जो दलाल तय करता है, पैदावार बेचनी पड़ती है। जब कीमत निश्चित हो जाती है तो व्यापारी के गोदाम पर तुलाई शुरू होती है। कहीं-कहीं बाट जाली होते हैं। कभी-कभी जब गाड़ी आधी तुल जाती है तब व्यापारी यह कह कर, कि अन्दर वस्तु खराब निकली, लेने से इनकार करता है। बेचारे किसान को विवश होकर कम मूल्य स्वीकार पड़ता है, क्योंकि उसे अकेले गाड़ी भरना असम्भव दिखाई देता है। किसान को कहीं-कहीं तुलाई भी देनी पड़ती है। अन्त में मूल्य चुकाते समय व्यापारी धर्मशाला, गौशाला, मन्दिर, प्याऊ, पाठशाला तथा ऐसे ही अन्य धार्मिक कार्यों के लिए प्रति रुपया कुछ पैसे काट लेता है। शाही कृषि कमीशन का विचार है कि इस प्रकार किसान की पैदावार के मूल्य का १० या १२ प्रतिशत कट जाता है, और सेठ जी दानवीर कहलाते हैं। जब तक किसान को इस भयंकर लूट से नहीं बचाया जावेगा, तब तक उसकी आर्थिक स्थिति सुधर नहीं सकती। इस विचार से बम्बई में कपास तथा गुड़, और बंगाल में धान तथा जूट बेचने के लिये सहकारी समितियाँ स्थापित की गई हैं।

विक्रय-समितियों के लिए पूँजी की समस्या अत्यन्त कठिन है। जब किसान अपनी पैदावार समिति के पास लाता है, उसी समय वह रुपया चाहता है। समिति को यथेष्ट धन पेशगी दे देना पड़ता है। उसकी अपनी निजी पूँजी बहुत कम होती है। सेन्ट्रल बैङ्क समितियों को केवल उतनी ही साख देते हैं, जितनी उनकी पूँजी होती है। आवश्यकता इस बात की है कि समितियाँ अपने सदस्यों का दायित्व के मूल्य से दुगुना या तिगुना रखें जिससे कि सेन्ट्रल बैंक पूँजी से उतने गुनी साख दे सकें। सहकारी विक्रय समितियों से किसान को यह लाभ है कि जब किसान अपनी पैदावार लगाता है तो समिति उसे तोल कर रसीद दे देती है। पैदावार लेकर, कुछ रुपया पेशगी दे दिया जाता है; पीछे पैदावार को अधिक-से अधिक मूल्य पर बेचा जाता है।

बम्बई— बम्बई प्रान्त में २०० विक्रय-समितियाँ काम कर रही हैं। इन में अधिकांश तो केवल कपास बेचती हैं। ये प्रति वर्ष कई करोड़ रुपये की कपास बेच देती हैं। इनके अतिरिक्त गुड़, फल, तमाखू, मिर्च, धान तथा प्याज बेचने के लिए ५८ समितियाँ स्थापित हैं। गुजरात तथा कर्नाटक में कपास बेचनेवाली समितियों को विशेष सफलता मिली है। गुजरात के सूरत तथा भड़ौंच जिलों में ये समितियाँ अधिक संख्या में हैं। एक समिति चार या पाँच गाँवों की पैदावार बेचती है। विक्रय-समिति के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रबन्ध ठीक हो। इसलिये यह आवश्यक होती है कि प्रबन्धकारिणी समिति में व्यापार से परिचित लोग रखे जावें। इसी उद्देश्य से गुजरात की सब समितियों ने एक संघ स्थापित किया है, जो इन समितियों की देख-भाल करता है।

कर्नाटक प्रान्त की कपास बेचनेवाली समितियों ने आशातीत सफलता प्राप्त की है। इस प्रान्त की अधिकतर कपास इन्हीं समितियों के द्वारा बेची जाती है। स्थानीय व्यापारियों ने इस समितियों का बहुत विरोध किया, किंतु अब ये समितियाँ बलवान हो गई हैं। १९४० में इन समितियों ने लगभग ७ लाख मन कपास बेची थी।

कुछ कपास-विक्रय समितियों ने अपनी यूनियन बना ली है, जो सामूहिक रूप से समितियों की कपास को बेचने का प्रबन्ध करती हैं। उन्होंने कपास के पेच भी खोले हैं, जिनमें सहकारी समितियों की कपास ओटी जाती है। बात यह है कि सहकारी समितियां अपने सदस्यों को उत्तम बीज देती है, जिससे अच्छी जाति की कपास उत्पन्न हो। यदि समितियां अपनी कपास अन्य पेचों को दें तो उनका बीज दूसरे घटिया बीज में मिल जावे और वे अपनी कपास के लिए बाजार में जो प्रसिद्धि प्राप्त करना चाहती हैं, वह न हो सके, और उसके अच्छे दाम न मिलें।

सहकारी विक्रय-समितियों को प्रोत्साहन देने के लिए और प्रान्तीय मार्केटिंग विभाग की सलाह से विक्रय समितियों का संगठन करने के लिए सहकारिता विभाग से १९४१ में बम्बई में प्रान्तीय विक्रयसमिति स्थापित की। इसके संचालक-बोर्ड में ४ समितियों के प्रतिनिधियों के अतिरिक्त, सहकारी विभाग का रजिस्ट्रार, चीफ मार्केटिंग अफसर और प्रान्तीय सहकारी बैंक का प्रतिनिधि रहता है।

बङ्गाल—बङ्गाल में पहले लगभग ६० विक्रय समितियां थीं। इनमें से अधिकतर जूट बेचनेवाली थीं। ये असफल रहीं। अब वहां ७३ विक्रय-समितियां हैं, जिनमें से अधिकांश धान सहकारी समितियां हैं, कुछ समितियां गन्ने और मछली की भी हैं। इन समितियों की यूनियन स्थापित हो गयी है। बङ्गाल की विक्रय समितियों में प्रमुख है—राजशाही जिले की 'नौगाँव गांजा-उत्पादकों की समिति।' इसके सदस्य ४,००० से ऊपर, और कार्यशील पूंजी लगभग छः लाख रुपये है। इस समिति के पास गांजा और भांग उत्पन्न करने का एकाधिकार है। समिति को लाखों रुपया वार्षिक लाभ होता है, जिससे तीन अस्पताल तथा एक पशु-चिकित्सालय चलते हैं; और तीन हाई स्कूलों तथा ८७ ग्राम-पाठशालाओं को सहायता दी जाती है। समिति ने बङ्गाल में ३६ एजंसियां स्थापित की हैं, जो गांजा बेचती हैं। आसाम, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, राजपूताना, कूचबिहार, तथा उड़ीसा की रियासतों में भी गांजा भेजा जाता है। समिति की प्रबंधकारिणी में २६ सदस्य होते हैं। समिति हर साल लगभग डेढ़ लाख रुपये शिक्षा पर, सवा लाख रुपये चिकित्सालय पर खर्च करती है। वह अपने क्षेत्र में सड़कों और पुलों की मरम्मत भी कराती है।

पंजाब—दोनों पंजाबों में २० कमीशन-शाप (दूकान) हैं। वे अपने सदस्यों के लिये बीज और हल इत्यादि औजार खरीदती हैं, और उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करती हैं, अच्छे बीजों का प्रचार करती हैं, और सदस्यों में मितव्ययिता बढ़ाती हैं। वे अपने सदस्यों की पैदावार को

बेचती है। जो सदस्य अपनी पैदावार दूकान को देता है, उसे ७५ प्रतिशत पेशगी दे दिया जाता है। इन दूकानों ने १६४० में लगभग ३४ लाख रुपये की पैदावार बेची।

मद्रास—मद्रास में इस समय १६० समितियाँ हैं जो सदस्यों को पैदावार की जमानत पर ऋण देती हैं और पैदावार को कमीशन पर बेचती हैं। यह प्रयत्न किया जा रहा है कि ये समितियाँ पूर्ण रूप से विक्रय-समितियों की भांति कार्य करें। यह समितियाँ सदस्यों की पैदावार रखने के लिए गोदाम बनवाती हैं। मद्रास में दक्षिणी कनारा कृषि सहकारी होलसेल (थोक) समिति उल्लेखनीय है, जो जिले की मुख्य पैदावार को ४६ शाखाओं में इकट्ठी करती है और अपनी बम्बई शाखा के द्वारा बम्बई के बाजार में बेच देती है। १६ ० समिति ने २० लाख रुपये से अधिक का माल बेचा।

मद्रास प्रान्तीय सहकारी विक्रय समिति की स्थापना १६३६ में हुई थी इसका मुख्य कार्य प्रान्त की विक्रय समितियों की देखभाल और उनका संगठन करना है। प्रान्तीय समिति एक साप्ताहिक पत्रिका भी निकालती है, जिसमें वस्तुओं के भाव और अन्य ज्ञातव्य बातें रहती हैं।

उत्तरप्रदेश—यहाँ सहकारी विक्रय-समितियां बहुत बड़ी संख्या में हैं, और आन्दोलन तेजी से बढ़ रहा है। १६३६ में प्रांतीय सरकार ने खेती की पैदावार को बेचने के सम्बन्ध में एक योजना स्वीकृत की। इसके अनुसार प्रत्येक मंडी में एक विक्रय-यूनियन स्थापित की जाती है, और उस मण्डी के समीपवर्ती गाँवों की समितियां उस यूनियन की सदस्य बन जाती हैं। अधिकतर अनाज और तिलहन की बिक्री का काम किया जाता है। प्रांत के प्रत्येक जिले में यह योजना अमल में लाई जा रही है और लगभग २०० केन्द्रों में यह काम हो रहा है। कहीं-कहीं तो यूनियन सदस्यों की पैदावार स्वयं खरीद लेती है और कहीं कहीं वह उसे कमीशन पर बेचती है। पश्चिमी जिलों में तो यूनियन

आढ़त का कमीशन लेकर सदस्यों की पैदावार बेच देती है और पूर्वी ज़िलों में वह सदस्यों की पैदावार मोल लेती है। इस समय १८३ विक्रय-यूनियन यह कार्य कर रही हैं, और वर्ष में ५० लाख रुपये से अधिक की पैदावार बेच देती हैं।

अनाज की बिक्री के अतिरिक्त, प्रांत में घी आलू फल और अंडों की बिक्री के लिए भी समितियों का संगठन किया गया है। उत्तरप्रदेश में इस आशय का एक मारकेटिंग एक्ट पास हो गया है कि सदस्यों को अपनी पैदावार विक्रय-समिति के ही द्वारा, बेचना पड़ेगा। इससे यह आन्दोलन और भी तेजी से बढ़ रहा है। प्रांतीय सरकार ने इन समितियों को आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहित किया है। अभी कुछ समय हुआ लखनऊ में प्रान्तीय मार्केटिंग फेडरेशन भी स्थपित हो गई है। जिससे ये समितियाँ सम्बन्धित हैं।

सबसे अधिक महत्वपूर्ण विक्रय-समितियाँ गन्ने की समितियां हैं। इनकी संख्या लगभग चार हजार है, और वे ६४ यूनियनों से सम्बन्धित हैं। इन समितियों से किसानों को अपने गन्ने का ठीक दाम मिलता है और तुलाई में कोई धोखेबाजी नहीं होती। इसके अतिरिक्त ये समितियां अपने सदस्यों को अच्छा बीज, खाद और हल आदि औजार देकर गन्ने की खेती के लिए प्रोत्साहित करती हैं। पिछले वर्ष समितियों ने सदस्यों में ३० लाख मन बीज बांटा और उन्हें दो लाख मन खाद और ५० हजार भिन्न भिन्न प्रकार के खेती के औजार दिये। यही नहीं इन समितियों ने गाँव के रास्तों को ठीक करने, कुंओं को बनाने तथा अन्य ग्राम सुधार कार्य किए।

अब प्रान्त में इन गन्ना-समितियों का एक जाल सा बिछा हुआ है और ये लगभग १३ करोड़ मन गन्ना प्रतिवर्ष कारखानों को बेचती हैं। यह ध्यान में रखने की बात है कि उत्तर प्रदेश के कारखानों में जितना गन्ना खपता है, उसका लगभग ८० प्रतिशत ये समितियां देती हैं। सरकार ने एक विभाग स्थापित किया है, जो इन समितियों की सहायता

से गन्ने की खेती की उन्नति करने का प्रयत्न करता है। ये समितियां गन्ने की बिक्री के सिवाय ग्राम-सुधार का कार्य भी करती हैं, जैसे सड़कों की मरम्मत, चिकित्सा की सुविधा, शिक्षा का प्रबन्ध तथा सदस्यों में मितव्ययिता का प्रचार करना इत्यादि।

राब और गुड़ समितियां:—उन किसानों की सहायता के लिए जो कारखानों को अपना गन्ना नहीं बेंच सकते राब और गुड़ समितियां स्थापित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। लगभग १२ गुड़ राब तथा खांड़सारी शक्कर बनाने की समितियां प्रांत में काम कर रही हैं।

देहरादून बासमती चावल विक्रय सहकारी समिति—यह समिति उल्लेखनीय है। देहरादून के प्रसिद्ध बासमती चावल को बेंचने के लिए इस समिति की स्थापना हुई थी। चावल के व्यापारी एक ओर तो किसानों को बासमती चावल का पूरा मूल्य नहीं देते थे। दूसरे ग्राहकों को असली बासमती चावल नहीं मिलता था। इस कमी को दूर करने के उद्देश्य से इस समिति की स्थापना की गई। देहरादून के समीप शियोला गाँव में इस समिति का प्रधान कार्यालय है और इसका कार्य क्षेत्र समस्त देहरादून तहसील है। जो भी किसान बासमती चावल उत्पन्न करते हैं और देहरादून तहसील में रहते हैं इसके सदस्य बन सकते हैं।

समिति सदस्यों को बासमती चावल की खेती के लिए ऋण देती है। समिति ने शियोला तथा अन्य गाँवों में गोदाम स्थापित किए हैं जहां चावल भरा जाता है। सरकारी विक्रय विभाग से सहकारी समिति चावल का ग्रेडिंग करवाती है और ग्रेड का प्रमाण पत्र प्राप्त करती है इसका परिणाम यह होता है कि समिति अपने चावल को अच्छे मूल्य पर बेंच सकती है।

समिति ने प्रान्त की बड़ी मंडियों में अपने एजेंट रक्खे हैं जिनके द्वारा वह अपना चावल बेंचती है। समिति बड़े बड़े ग्राहकों को

चावल सीधा भी बेंचती है। समिति चावल के मूल्य पर ३॥ प्रतिशत बिक्री कमीशन लेती है इसके अतिरिक्त और खर्चा कुछ भी नहीं लिया जाता। अभी तक समिति लगभग १५ गांवों से चावल प्राप्त करती है और उसके १०० के लगभग सदस्य हैं।

मारकेटिंग फेडरेशनः—उत्तरप्रदेश में बिक्री समितियों का नेतृत्व तथा नियंत्रण करने के लिए एक प्रान्तीय मारकेटिंग फेडरेशन स्थापित किया गया है। यह फेडरेशन कपड़ा, अनाज, बीज, खाद, हल तथा अन्य औजार तथा अन्य आवश्यक पदार्थों को खरीदती और बेंचती है।

इसका अध्यक्ष सहकारिता विभाग का रजिस्ट्रार पदेन होता है तथा सहकारिता विभाग का एक कर्मचारी पदेन मन्त्री होता है। इस फेडरेशन का उद्देश्य यह है कि वह ग्रामों और नगरों के उपभोक्ताओं तथा खेती की पैदावार करने वाले तथा अन्य उत्पादकों का सीधा सम्बन्ध स्थापित करदे।

फेडरेशन ने ३० जून १९४९ तक एक वर्ष में ६ करोड़ रु० का कारबार किया। फेडरेशन का रक्षित कोष ७ लाख रुपये हैं अन्य कोष ६ लाख रुपये हैं तथा फेडरेशन मुद्दती जमा भी स्वीकार करती है।

बिहार—बिहार में भी गन्ना सहकारी समितियां लगभग ३८०८ हैं; ये २८ यूनियनों में संगठित हैं, और प्रति वर्ष लगभग १ करोड़ मन गन्ना कारखानों को देती हैं। समितियां गन्ने की उन्नति करने का प्रयत्न कर रही हैं। इन समितियों का संगठन उत्तरप्रदेश की समितियों के समान ही है।

मध्यप्रदेश—मध्यप्रदेश में क्रय-विक्रय समितियों का स्वरूप भिन्न है। कृषि एसोसियेशन, उत्पादकों की एसोसियेशन, आढ़त की दूकान और बहुउद्देश्य समितियां ही क्रय-विक्रय का काम करती हैं। कृषि एसोसियेशन अभी तक अधिकतर किसानों को अच्छा

बीज, खाद और औजार देने का ही काम करती हैं। प्रान्त में उत्पादकों की तीन एसोसियेशन हैं, ये रायपुर बिलासपुर और द्रुग में है। ये समितियां अपने सदस्यों की पैदावार को अपने गोदामों में रखती हैं और उसका ७५ प्रतिशत मूल्य उन्हें पेशगी; तथा उसके बिकने पर देती हैं। १६३६ में नागपूर में एक संतरा बिक्री सहकारी समिति स्थापित की गई; यह कलकत्ता, देहली और लखनऊ संतरे भेजती है। प्रान्त में सहकारी आढ़त की पाँच दूकानें हैं परन्तु वे विशेष सफल नहीं हुई। प्रान्त में कुछ बहुउद्देश्य समितियाँ भी हैं, जो सदस्य के लिए आवश्यक वस्तुएँ खरीदती और उनको पैदावार को कमीशन पर बेचती हैं। किन्तु अभी तक क्रय-विक्रय आन्दोलन प्रान्त में बलशाली नहीं हुआ है।

देशी राज्यों में बड़ौदा में ४५ विक्रय समितियाँ हैं, जिनमें से अधिकांश कपास-बिक्री-समितियाँ हैं। हैदराबाद में ५१ विक्रय-समितियाँ हैं, जिनमें १० कपास की और ६ अन्य खेती की उपज की हैं। शेष बढ़ई, चमार, सुनार, कागज बनानेवालों इत्यादि की समितियां है। इनके अतिरिक्त कोचीन, मैसूर त्रावंकोर में भी कुछ विक्रय-समितियां हैं।

सच तो यह है कि भारतीय किसान को साख समितियों से भी अधिक आवश्यकता विक्रय-समितियाँ की है। इधर कुछ वर्षों से भिन्न-भिन्न प्रांतों में इस ओर विशेष रूप से प्रयत्न हो रहा है, यह एक अच्छा चिह्न है।

क्रय-विक्रय समितियाँ—ऊपर केवल खरीदने या केवल बेचने का काम करनेवाली समितियों के बारे में लिखा गया है। अब ऐसी समितियों के बारे में विचार किया जाता है, जो क्रय और विक्रय दोनों काम करती है। ये समितियां परिमित दायित्व वाली होती हैं। ये बड़े क्षेत्र में कार्य करके ही सफल हो सकती हैं, क्योंकि इन समितियों को अधिक राशि में वस्तुओं को खरीदने तथा पैदावार को बेचने से

ही लाभ हो सकता है। क्रय-विक्रय समितियों के सदस्य केवल वे ही लोग बनाये जाते हैं, जो फसल उत्पन्न करते हैं। जो लोग कुछ बेचना या खरीदना नहीं चाहते, वे इन समितियों के सदस्य नहीं बनाये जाते। समिति का लाभ सदस्यों में खरीद फरोख्त के हिसाब से बांट दिया जाता है। यदि किसी किसान ने समिति के द्वारा १०० मन कपास बेची और दूसरे ने केवल ५० मन ही बेची है तो दूसरे को पहले से आधा लाभ मिलेगा। कुछ लोगों का मत है कि पैदावार बेचने का कार्य साख से बिलकुल भिन्न और कठिन भी है। इस कारण क्रय-विक्रय का काम एक समिति करे, तथा साख देने का काम दूसरी समिति करे। किन्तु यह बात ध्यान में रखने की है कि सदस्यों के लिये आवश्यक वस्तुओं को खरीदने का कार्य साख समितियां भली प्रकार कर सकती हैं। आयर्लैंड में सब कार्य एक ही समिति करती है।

गुजरात की समितियां समीपवर्ती गाँवों की सहकारी साख समितियों का एक सामूहिक संगठन मात्र होती है। तीन चार गांवों की साख समितियों के सदस्य उसके सदस्य बन जाते हैं। सदस्य एक ही प्रकार की कपास उत्पन्न करते हैं। सब कपास इकट्ठा कर ली जाती है और बेच दी जाती है। कर्नाटक प्रांत की समितियां सदस्यों की कपास को इकट्ठा नहीं करती, वरन् उसे पृथक् पृथक् नीलाम कर देती हैं।

क्रय-विक्रय समितियों के कार्य में कुछ कठिनाइयां उपस्थित होती हैं, जिन पर यहाँ विचार कर लेना उचित है। क्रय-विक्रय समिति यदि बड़ी नहीं होगी तो वह व्यापारियों की प्रतिद्वन्दिता में टिक न सकेगी। आवश्यकता इस बात की है कि बहुत से गाँवों के लिये एक समिति स्थापित की जावे। इन समितियों में व्यक्तियों को सदस्य बनाना खतरे से खाली नहीं है, क्योंकि संभव है कि बनिये तथा व्यापारी, जिनसे समिति प्रतिद्वन्दिता करने जा रही है, अपने आदमियों को समिति का सदस्य बना कर समिति को नष्ट करने का

प्रयत्न करें। अस्तु, केवल साख समितियाँ ही सदस्य बनाई जावें। किन्तु, यह नियम अवश्य रखा जावे कि जो लोग साख समितियों के सदस्य नहीं हैं, उनकी पैदावार भी समिति बेच सकेगी। इसके अतिरिक्त जो लोग व्यापारी नहीं हैं, और जो समिति से प्रतिद्वन्दिता नहीं करते, उनको सदस्य बना लिया जाय।

—:०:—

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

कृषि सम्बन्धी समितियाँ

—o—

हम पहले कह चुके हैं कि भारतवर्ष में प्रति किसान भूमि बहुत कम है। साथ ही वह थोड़ी सी भूमि छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटी हुई है इसलिए खेतीबारी की अत्यन्त हीन दशा है। बिखरे हुए छोटे-छोटे खेतों पर खेती बारी करने से किसान अपना समय, श्रम, पशु-शक्ति तथा पूँजी का अपव्यय करता है, और उत्पत्ति बहुत कम होती है। चकबन्दी समितियां चकबन्दी का प्रयत्न कर रही हैं किन्तु इस कार्य में बहुत कठिनाइयाँ हैं। समस्या को हल करने का अत्यन्त सरल उपाय सामूहिक खेती है।

सामूहिक कृषि समितियाँ—सामूहिक कृषि समितियों को जन्म देने का श्रेय इटली को है। वहाँ पहले बड़े-बड़े जमींदार अपनी जमींदारी पर न रह कर नगरों में विलासिता का जीवन व्यतीत करते थे और अपनी भूमि दूसरे लोगों को उठा देते थे। ये लोग गाँव वालों को मजदूर रख कर उस भूमि पर खेती करवाते थे। इससे किसान मजदूरों की अत्यन्त शोचनीय दशा थी! सम्मिलित कृषि सहकारी समितियों ने इस प्रथा को नष्ट करने का प्रयत्न किया। सन् १८८६ में क्रिमोना के किसान मजदूरों ने एक समिति का संगठन करके एक जमींदार से एक बड़ी स्टेट लगान पर ले ली, और उसको अपने सदस्यों में बाँट लिया। किन्तु जमींदार से झगड़ा हो जाने के कारण यह प्रयत्न असफल रहा। सर्व-प्रथम सन् १८९४ में यह प्रयोग मिलन में सफल हुआ। पीछे आन्दोलन बढ़ता गया, किन्तु पूँजी की कमी होने के

कारण आरम्भ में यह धीरे-धीरे ही फैल सका। योरोपीय महायुद्ध के समाप्त होने पर इटली सरकार को यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि बेकार सैनिकों को खेती बारी में लगावे। उसने बहुत सी सरकारी भूमि तथा पूँजी देकर इस प्रकार की समितियों को प्रोत्साहन देना आरम्भ किया। इसके उपरान्त समितियों की संख्या क्रमशः बढ़ती गई। इस समय इटली में लगभग ५०० समितियां सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं।

सामूहिक सहकारी कृषि-समितियाँ दो प्रकार की होती हैं—(१) जिनमें भूमि को सदस्यों में बांट दिया जाता है और प्रत्येक सदस्य अपने खेत पर खेती करता है तथा समिति को लगान देता है, (२) जिनमें भूमि बांटी नहीं जाती, वरन् समिति एक मेनेजर रख-कर सदस्यों के द्वारा समस्त भूमि पर खेती करवाती है और पैदावार इकट्ठी करती है। समिति सदस्यों को निश्चित मजदूरी देती है। पहले प्रकार की समितियाँ कैथोलिक लोगों की हैं और दूसरे प्रकार की समितियां साम्यवादियों की हैं। समिति का रूप क्या होगा, यह बहुत-कुछ भूमि के ऊपर निर्भर है। जिस प्रकार की समिति के लिये भूमि उपयुक्त होगी, उसी प्रकार की समिति का संगठन किया जावेगा। पहिले प्रकार की समितियों में सदस्य मजदूरों की भांति न रह कर किसानों की तरह रहते हैं, किन्तु दूसरी प्रकार की समितियों में सदस्य मजदूरों की भांति रहते हैं।

पहिले प्रकार की समितियाँ जमींदारों से पट्टे ले लेती हैं; पट्टे ६ के १२ वर्ष तक के लिए होते हैं। प्रत्येक सदस्य को उसकी आवश्यकता के अनुसार भूमि उतने समय के लिए दी जाती है, जितने समय के लिये समिति को पट्टा मिलता है। भूमि सदस्यों को इस शर्त पर दी जाती है कि वे उसे लगान पर किसी दूसरे को नहीं उठावेंगे, समिति को नियमित रूप से लगान देंगे, तथा भूमि का दुरुपयोग नहीं करेंगे। जब पट्टा बदलता है, तब इस बात की जाँच की जाती है कि किसी सदस्य

को उसकी आवश्यकताओं से अधिक भूमि तो नहीं मिल गई है। यदि ऐसा होता है तो कुछ परिवर्तन किया जाता है। प्रत्येक सदस्य को खेतीबारी के औजार अपने निजी रखने पड़ते है, किन्तु बड़े मूल्यवान यन्त्र समिति खरीद लेती है और उन्हें सदस्यों को किराये पर दे देती है। समिति सदस्यों की सुविधा के लिये क्रय-विक्रय विभाग भी रखती है, जिससे सदस्यों को बीज, खाद, तथा अन्य घरेलू आवश्यक वस्तुएँ उचित मूल्य पर मिलती हैं और उनके खेतों की पैदावार बेची जा सकती है। समिति सदस्यों को पूँजी उधार देती है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक समिति इन सब विभागों को अवश्य रखे। समिति एक कृषि के जानकार को नौकर रखती है; जो सदस्यों को खेतीबारी के विषय में उचित परामर्श देता है। सब सदस्यों को अपनी पैदावार का बीमा कराना पड़ता है।

दूसरे प्रकार की समितियां भी भूमि पट्टे पर देती हैं, किन्तु भूमि सदस्यों में बांटी नहीं जाती, सामूहिक रूप से उस पर खेती होती है। समिति खेतीबारी के औजार, यन्त्र, तथा पशु मोल लेती है। उसके सदस्यों को उन औजारों तथा यन्त्रों की सहायता से, समिति के मेनेजर की अधीनता में, खेतीबारी करनी पड़ती है। प्रत्येक सदस्य को उसके कुटुम्ब की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए एक छोटा सा भूमि का टुकड़ा दिया जाता है। भूमि का बंटवारा केवल खेतीबारी के लिये ही किया जाता है। प्रत्येक वर्ष भूमि का फिर से बंटवारा होता है। खाद और बीज समिति देती है। सदस्य अपने कुटुम्ब वालों की सहायता से खेत पर काम करता है। जुताई, खाद डालने का काम, तथा फसल को साफ करके अनाज निकालने का कार्य समिति करती है; दूसरे सब काम किसान को करने पड़ते हैं। किसान को बीज तथा खाद का एक-तिहाई मूल्य भी देना पड़ता है। जब समिति को आवश्यकता होती है, तब सदस्य को उसका कार्य करना पड़ता है। चरागाह की भूमि सदस्यों में नहीं बांटी जाती। आरम्भ में इन समितियों को

पूँजी प्राप्त करने में कठिनाई का सामना करना पड़ा किन्तु पिछले योरोपीय महायुद्ध के उपरान्त सरकार सहायता देने लगी। सदस्यों को उनके खेतों की एक-तिहाई पैदावार मजदूरी के रूप में मिलती है; यह उनके साल भर के भोजन के लिए काफी होती है। उन्हें बाकी मजदूरी सिक्के में दी जाती है। सब पैदावार इकट्ठी की जाती है और बेचने पर जो लाभ होता है, वह मजदूरी के अनुपात में बांट दिया जाता है। समितियां अपना बैंक तथा स्टोर भी रखती हैं।

सामूहिक रूप में सम्मिलित खेतीबारी करनेवाली समितियां एक बड़े कारखाने के समान हैं। सदस्यों को मेनेजर के अनुशासन में कार्य करना पड़ता है। मेनेजर अधिकतर श्रमजीवी समुदाय का ही होता है, किन्तु होशियार तथा विशेषज्ञ होता है। यदि कोई सदस्य आज्ञा नहीं मानता तो उसको चेतावनी दी जाती है, जुर्माना किया जाता है, मजदूरी काट दी जाती है। अधिक उद्दण्डता करने पर उसे निकाल भी दिया जाता है परन्तु यह नौबत बहुत कम आती है। समिति का सदस्य स्थानीय मजदूर-सभा का सदस्य होता है। यदि संयोग से कभी समिति तथा सदस्यों में झगड़ा होता है तो मजदूर-सभा की सहायता तथा परामर्श से उसका फैसला हो जाता है। इटली में कुछ स्थानों पर यह भी प्रयत्न किया गया कि खेतों को सदस्यों में बिना बांटे, सामूहिक-सम्मिलित खेती की जावे; किन्तु सफलता नहीं मिली। फ्रांस, जरमनी, आयर्लैंड तथा रूमानिया में इस प्रकार की समितियां स्थापित की गई हैं।

भारतवर्ष में बम्बई प्रान्त में सम्मिलित खेतीबारी करनेवाली दो समितियां स्थापित की गईं, किन्तु वे सफल नहीं हुईं। यहाँ इस प्रकार की समितियों की अत्यन्त आवश्यकता है, किन्तु साथ ही इन समितियों को सफलता-पूर्वक चलाने के लिये योग्य मेनेजर तथा ऐसे कार्य-कर्ताओं की आवश्यकता है, जो गांवों में इस प्रकार की समितियों की उपयोगिता का प्रचार करें।

सोवियत रूस में सामूहिक सहकारी फार्म—पिछले कुछ वर्षों में रूस में सहकारी फार्मों की आश्चर्यजनक उन्नति हुई है। एक फ़ार्म एक ही गाँव तक सीमित होता है; कभी-कभी एक से अधिक गाँव भी उसमें सम्मिलित होते हैं। सहकारी फ़ार्म के पास ?,००० एकड़ से लेकर १२००० एकड़ तक भूमि होती है। सहकारी फार्म क़ानून द्वारा निर्मित संस्था होती है। उसके पास खेतों की भूमि, चरागाह भूमि, फार्म बिल्डिंग, खेती के पशु, औजार, गाय, सुअर, भेड़ और मुर्गी सभी आवश्यक सम्पत्ति होती है। फार्म का प्रबन्ध एक फार्म-कमेटी करती है। प्रतिवर्ष सरकार के औद्योगिक विभाग से उसे यह सूचना मिलती रहती है कि वह कितनी भूमि पर अनाज इत्यादि बोवे, और कितनी भूमि सरकारी कारखानों के लिए आवश्यक कच्चे पदार्थ उत्पन्न करे।

सरकार ने इन सहकारी फार्मों की सहायता के लिये स्थान-स्थान पर मशीन और ट्रेक्टर स्टेशन स्थापित किये हैं। स्टेशन फ़ार्मों को बीज, खाद इत्यादि बेचते हैं, और बड़े बड़े यन्त्रों को किराये पर देते हैं। प्रत्येक स्टेशन पर एक कृषि-विशेषज्ञ रहता है, जो फ़ार्मों को कृषि सम्बन्धी सलाह देता है। जब फ़सल होती है तो फ़ार्म भूमि की लगान तथा मशीन ट्रेक्टर स्टेशन की सहायता के फीस स्वरूप फार्म की कुल पैदावार का छठा भाग दे देता है। मशीन ट्रेक्टर स्टेशन तथा भूमि की मालगुजारी (कर) देने के बाद जो बचता है वह सामूहिक फार्म का होता है।

शेष पैदावार में से, जितने नकद रुपये की जरूरत होती है, उतने की बेच दी जाती है; और जो रुपया मिलता है, उसमें से मजदूरी (सदस्यों की), कृषि-टैक्स जो नक़द आमदनी का एक-चौथाई होता है, और मशीन ट्रेक्टर स्टेशन के खर्चे को छोड़कर अन्य सब खर्चे तथा फार्म का प्रबन्ध-व्यय इत्यादि खर्चों को निपटाया जाता है।

सदस्यों को जो मजदूरी दी जाती है, वह उनकी कार्यक्षमता के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। फार्म के सारे मजदूर सदस्य अपनी कार्यक्षमता के अनुसार सात श्रेणियों में बाँटे जाते हैं। जो सदस्य सब से ऊँची श्रेणी में होते हैं, उनके एक दिन काम करने से उनके दो दिन माने जाते हैं, और जो सबसे नीचे की श्रेणी में होते हैं उनके एक दिन काम करने से आधा दिन माना जाता है। श्रेणी-विभाजन कमेटी करती है। सब कुछ चुकता हो जाने पर जो उपज बचती है, वह सब सदस्यों में बराबर बाँट दी जाती है। वे इस पैदावार को सहकारी समितियों को बेच देते हैं।

रूस में इन सामूहिक खेतों की बहुत उन्नति हुई है। यह कह सकना कठिन है भारत में सामूहिक खेती कहाँ तक सफल हो सकेगी, क्योंकि यहाँ का किसान अपनी पैतृक भूमि को छोड़ना नहीं चाहता; फिर यहाँ जमींदार, महाजन तथा व्यापारियों के रूप में बहुत से दलाल हैं, जो उसका विरोध करेंगे। और, सबसे मुख्य बात यह है कि इस प्रकार की खेती के लिए सरकार का पूरा उद्योग होना चाहिए। भारत में इन समितियों की ओर ध्यान गया है और संयुक्तप्रान्त में कुछ समितियाँ स्थापित की गई हैं।

इसका यह अर्थ कदापि भी नहीं है कि सोवियत रूस के सामूहिक खेतों (कोल खोज़) में व्यक्तिगत सम्पत्ति या जायदाद के लिए कोई स्थान नहीं है। सामूहिक खेत पर काम करने के अतिरिक्त व्यक्तिगत लाभ के लिए प्रयत्न करने की काफी गुंजाइश है। प्रत्येक परिवार को एक छोटा खेत मिलता है जिस पर परिवार के सदस्य मिलकर खेती करते हैं। इन छोटे खेतों पर जो कुछ भी उत्पन्न होता है वह परिवार की सम्पत्ति होती है। कुछ वर्षों में ही इन पारिवारिक छोटे भूमि के टुकड़ों का विशेष महत्व हो गया है उन पर गहरी खेती की जाती है और वे उस परिवार के लिए यथेष्ट मांस, अंडे, दूध मक्खन सब्जी, फल, तथा मधु उत्पन्न कर देते हैं, इन छोटे व्यक्तिगत खेतों

पर किसान अपनी गाय मुर्गियां तथा अन्य पशु पालता है तथा सब्जी फल अन्य फसलें उत्पन्न करता है।

कोलखोज के पास जो भूमि होती है वह सरकार की होती है परन्तु कोलखोज को सदैव के लिए खेती के लिए दे दी जाती है। आज रूस में कोलखोज (सामूहिक खेत) ही खेती की प्रधान व्यवस्था है, परन्तु यह आसानी से नहीं बनी है। सोवियत सरकार घोर दमन और हिंसा के उपरान्त ही रूसी किसानों को इस प्रकार की पद्धति को स्वीकार करने के लिए विवश कर सकी है। परन्तु यह सत्य है कि आज कोलखोज की सफलता ने लोगों को चकित कर दिया है। वहां उत्पादन बढ़ा है तथा खेती उन्नत हुई है।

पैलिस्टाइन में सहकारी कृषि—पैलिस्टाइन में यहूदियों ने सहकारिता के आधार पर अपने आर्थिक जीवन का अत्यन्त आकर्षक संगठन किया है। वहां भी सहकारी खेती का विकास तेजी से हुआ है। हम यहां पैलिस्टाइन सहकारी कृषि पद्धति का संक्षिप्त विवरण देते हैं।

पैलिस्टाइन में सहकारी खेती (कुवजा) में भूमि पर वैयक्तिक स्वामित्व नहीं होता। कुवजा अपने नाम पर राष्ट्रीय फंड से जमीन पट्टे पर ले लेती है. इसका प्रबन्ध एक चुनी हुई समिति के द्वारा होता है। जिसके अन्तर्गत विभिन्न विषयों की उपसमितियां होती हैं। इस व्यवस्था की विशेषता यह है कि इसमें व्यक्तिगत पारितोषिक को स्थान नहीं दिया जाता।

आय का वितरण व्यक्ति की योग्यता के अनुसार नहीं वरन आवश्यकताओं के अनुसार होता है। कुवजा पैलेस्टाइन में एक ऐसे आदर्श का प्रतीक है जिसका हमारे देश में अभाव है। संसार के सभी देशों में आक्रान्त यहूदियों ने अपने लिए देश बनाने की भावना से प्रेरित होकर इस व्यवस्था का विकास किया है।

कुवजा में गाँव की समिति को ४६ वर्ष के लिए भूमि का पट्टा

मिलता है। भूमि यहूदी राष्ट्र की होती है। समिति सामूहिक रूप से खेती कराती है। सारे सदस्यों को काम करना पड़ा है। सारा व्यय एक जगह से होता है। सब सदस्यों के भोजन का एक ही प्रबन्ध है। शिक्षा की भी सामूहिक व्यवस्था है और गृहस्थों को रहना भी एक ही स्थान पर पड़ता है। प्रत्येक गृहस्थी की आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था समिति की ओर से होती है।

कुवजा में अलग अलग गृहस्थ जीवन नहीं रहता इस कारण कुछ लोग उसको पसन्द नहीं करते इस कारण वहाँ 'मेशेक शितूफी' नामक भिन्न प्रकार के गावों की व्यवस्था आरम्भ हुई है। मेशेक शितूफो में खेती तो सामूहिक रूप से की जाती है। परन्तु प्रत्येक गृहस्थी के लिए रहने के लिए अलग अलग घर हैं। कुवजा में गृहस्थियों को एक सी सुविधायें प्राप्त होती हैं। चाहे आपके दस प्राणी हों अथवा आप अकेले हों। आप अधिक कुशल हों अथवा कम, आप अधिक मेहनत करते हों या कम, आपको वही पैसे और सुविधायें मिलेंगी जो कि दूसरों को मिलती हैं। ऐसी दशा में क्षमतावान व्यक्ति वहां कैसे टिक सकते हैं? यह एक प्रश्न उठता है। अभी तो पैलिस्टाइन में एक राष्ट्रीय घर बसाने की भावना सम्भवतः इस प्रकार के गांवों को विकसित करने में सहायता कर रही है। भविष्य में पैलेस्टाइन में 'मेशेक शितूफी' जैसे गांवों की ही व्यवस्था करनी होगी।

जिन गांवों में सामूहिक खेती नहीं होती किसान स्वतंत्र रूप से खेती करता है। वहाँ भी किसान को अपनी पैदावार का क्रय-विक्रय गांव की सहकारी समिति के द्वारा करवाना अनिवार्य है।

भारतवर्ष में 'कुवजा' जैसे ग्रामों की स्थापना सम्भव नहीं है, क्योंकि यहाँ गृहस्थ एक साथ रहना कभी पसंद नहीं करेंगे साथ ही क्षमतावान व्यक्ति एक समान धन का वितरण तथा एक समान सुविधाओं को भी पसंद नहीं करेंगे।

सिंचाई समितियां—भारतवर्ष जैसे कृषि-प्रधान देश में जहाँ खेती बारी वर्षा पर ही अवलम्बित है, और जहाँ वर्षा अनिश्चित है, सिंचाई के महत्व को बतलाने की आवश्यकता नहीं है। देखना है कि सहकारिता के द्वारा किसान स्वयं किस प्रकार सिंचाई के साधन उपलब्ध कर सकते हैं।

यदि वर्षा के शुरु में जो अत्यधिक जल गिरता है, उसे रोक लिया जावे, तथा नदियों के द्वारा समुद्र में न बह जाने दिया जावे तो वह सिंचाई के बहुत काम आ सकता है। इसी उद्देश्य से पुराने समय के राजाओं, ज़मींदारों तथा धनिक वर्ग ने बाँध बनवाये थे। पश्चिमी बंगाल में लगभग पचास हजार बाँध हैं। कालांतर में कई कारणों से सिंचाई का यह उत्तम साधन नष्ट हो गया; अधिकांश बाँध मिट्टी से भर गये, और जमींदार उनमें धान की खेती कराने लगे। १९१९ में बाँकुरा जिले में अकाल पड़ा, उस समय अधिकारी वर्ग का ध्यान इस ओर गया; और इन बाँधों को फिर से उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया।

सहकारिता विभाग ने बर्दमान डिवीजन में सहकारी सिंचाई समितियाँ स्थापित की हैं, जिनका उद्देश्य भरे हुए बाँधों और तालाबों को फिर से खुदवाना, तथा नये तालाब बनवाना है। सिंचाई समिति परिमित दायित्व वाली होती हैं, प्रत्येक सदस्य को अपनी भूमि के अनुपात में ही समिति के हिस्से खरीदने होते हैं। समिति के पास निजी पूँजी तो होती ही है, आवश्यकता पड़ने पर सेन्ट्रल बैङ्क से ऋण लिया जा सकता है। जब बाँध या तालाब तैयार हो जाता है तब, प्रति एकड़ सिंचाई क्या ली जानी चाहिए, यह निश्चय किया जाता है। समिति सदस्यों से सिंचाई का शुल्क वसूल करके ऋण चुकाती है, तथा बाँध की मरम्मत करवाती रहती है। इस समय बंगाल में लगभग १००० सिंचाई समितियाँ कार्य कर रही है; अधिकांश समितियाँ बाँकुरा तथा बीरभूमि के जिलों में हैं। इन

समितियों द्वारा लाखों बीघे जमीन पर सिंचाई होती है। बङ्गाल में सिंचाई-समितियों की माँग तेजी से बढ़ रही है।

बङ्गाल के अतिरिक्त, मदारस में भी सिंचाई-समितियाँ स्थापित की गई हैं। बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश तथा मैसूर में भी कतिपय सिंचाई-समितियाँ कार्य कर रही हैं। पंजाब में भी यथेष्ट संख्या में सिंचाई-समितियाँ हैं, जो नदियों की मिट्टी निकलवाकर उनसे सिंचाई करती हैं। उत्तर प्रदेश में, १४३ सिंचाई समितियाँ कार्य कर रही हैं।

उत्तर प्रदेश की सिंचाई समितियाँ—उत्तरप्रदेश में लगभग डेढ़ सौ सिंचाई समितियाँ कार्य कर रही हैं। यह अधिकतर इलाहाबाद, मुरादाबाद, बरेली, इटावा और मुजफ्फरनगर में केन्द्रित हैं। यह समितियाँ नये कुयें खुदवाती हैं पुरानों को ठीक करवाती हैं नये तालाब बनवाती हैं तथा सिंचाई के लिए सुधरे हुए और कम खर्चीले साधन उपलब्ध करती हैं। उत्तर प्रदेश में जब जलविद्युति के प्रसार के साथ साथ ट्यूब वैल खोदे गए तो सिंचाई समितियाँ भी स्थापित की गईं यह समितियाँ पानी को किसानों को बांटने तथा उनसे आबपाशी वसूल करने का काम करती हैं।

जब सिंचाई समिति कोई नया कुआँ या तालाब बनाती है तो प्रत्येक सदस्य से उसकी भूमि (जो कि सींची जावेगी) के अनुपात में रुपया ले लिया जाता है। जो लोग नकदी नहीं दे सकते उन्हें एक ऋण बौंड समिति के नाम लिख देना पड़ता है। समिति सेन्ट्रल सहकारी बैंक से ऋण लेकर कुआँ या तालाब बनवा लेती है।

सहकारी सिंचाई की आवश्यकता—आज भारत में खाद्य पदार्थों तथा औद्योगिक कच्चे माल (कपास, जूट, तिलहन आदि) का अकाल पड़ गया। देश के सामने "अधिक उत्पन्न करो या मरो" का प्रश्न उपस्थित है। ऐसी दशा में तत्काल खेती की पैदावार को बढ़ाने का प्रश्न है। भारतवर्ष में खेती के लिए जल की प्रमुख

आवश्यकता है। बिना सिंचाई के वर्ष में दो फसलें नहीं हो सकतीं। इस समय कुल २० प्रतिशत भूमि पर सिंचाई होती है अस्तु यदि सिंचाई के साधन उपलब्ध हो जावें, तो अधिक भूमि पर वर्ष में दो फसलें उत्पन्न की जा सकती हैं। यही नहीं देश के बहुत से भागों में विशेषकर राजस्थान, मध्यभारत तथा मध्यदेश तथा दक्षिण पठार में बहुत सी भूमि ऐसी है जिस पर खेती केवल इसलिए नहीं होती कि वहाँ जल की सुविधा नहीं है। दामोदर घाटी योजना जैसी बड़ी-बड़ी सिंचाई और जलविद्युति उत्पन्न करने वाली योजनायें तो बहुत समय लेंगी तथा उनमें बहुत अधिक व्यय होगा। अस्तु आवश्यकता इस बात की है सहकारिता के आधार पर किसानों को सिंचाई के लिए सहकारी कुयें या सहकारी तालाब बनाने के लिए प्रोत्साहन दिया जावे। पथरीले प्रदेश में कुआँ बनाना व्यय साध्य है अस्तु प्रान्तीय सरकारों को यह करना चाहिए कि वे जितनी भूमि को एक कुआँ या तालाब सींच सकता है उतनी भूमि के किसानों को जमा करके एक सहकारी कुआँ या तालाब समिति बना दें। समिति के सदस्यों को श्रम मुफ्त में करना होगा। खेती से बचे हुए समय में (जहाँ दो फसलें नहीं होतीं वे वर्ष में ८ महीने बेकार रहते हैं) वे कुआँ खोदने का काम करें। औजार, बारूद तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध सहकारी विभाग करे तथा उनको कुआँ खोदने के विशेषज्ञ सलाह दें। कुआँ की चुनाई इत्यादि के लिए जो व्यय हो उतना ऋण सरकार समिति को बिना ब्याज के दे दे। यह कुआँ उन किसानों की सहकारी समिति का होगा। वे ही उसके जल का उपयोग करेंगे। इस प्रकार सहकारी कुआँ समितियाँ या तालाब समितियों के द्वारा सिंचाई का प्रबन्ध भली प्रकार किया जा सकता है।

खेतीबारी की उन्नति करनेवाली समितियाँ—बम्बई प्रान्त में सहकारिता तथा कृषि-विभाग के उद्योग से 'ताल्लुका डिवेलपमेन्ट ऐसोशियेशन' नाम की संस्थाएँ सन् १६२२ में स्थापित की गई थीं।

इनकी संख्या बहुत तेजी से बढ़ती जा रही है। इनके सदस्य सहकारी समितियों के अतिरिक्त वे व्यक्ति भी हो सकते हैं; जो निश्चित फीस दें। इन संस्थाओं का उद्देश्य यह है कि उनके ताल्लुके में खेतीबारी की उन्नति की जावे, सहकारी समितियों का संगठन किया जावे, तथा उनकी देखभाल की जावे। यह संस्थाएँ कृषि विषयक जानकारी को किसानों में फैलाने का प्रयत्न करती है, सहकारी समितियों द्वारा अच्छा बीज, अच्छी खाद किसानों को देती हैं, पशुओं की नसल सुधारने और गृह उद्योग धन्धों को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न करती हैं; तथा किसानों के कष्टों की ओर अधिकारियों का ध्यान आकर्षित करती हैं। ऐसोशियेशन को सरकार सहायता देती है। प्रारम्भ में यह विचार किया गया था कि ये ऐसोशियेशन ही सहकारी साख समितियों की देखभाल करें किन्तु अनुभव से ज्ञात हुआ कि वे इस कार्य को नहीं कर सकतीं।

इन ऐसोशियेशनों की देखभाल करने के लिये डिवीजर्नल बोर्ड स्थापित किये गये हैं। बोर्ड के ६ सदस्य होते हैं—दो सरकारी (कृषि-विभाग तथा सहकारिता विभाग के कर्मचारी) तथा चार गैर-सहकारी, जिनको कृषि विभाग का डायरेक्टर तथा सहकारिता विभाग का रजिस्ट्रार मनोनीत करता है। बोर्ड इन संस्थाओं के लिये कार्यक्रम बनाता है, इनके कार्य का निरीक्षण करता है, तथा इनमें सहकारी सहायता बाँटता है।

बम्बई के अतिरिक्त मदरास, बंगाल, तथा मध्यप्रदेश में भी खेतीबारी की उन्नति करनेवाली समितियाँ स्थापित की गई हैं। यह समितियाँ अपने सदस्यों को यन्त्र, उत्तम जाति का बीज, तथा उपयोगी खाद देती हैं; कोई कोई समिति कृषि विभाग की सहायता से वैज्ञानिक ढंग से खेती करने का प्रदर्शन भी करती हैं। पंजाब में लगभग दो सौ समितियाँ कार्य कर रही हैं, उनको कुछ सफलता भी मिली है। ये समितियाँ अपने सदस्यों को उत्तम बीज बोने, उपयोगी यन्त्रों का उपयोग करने,

तथा आधुनिक ढंग से खेती करने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। इन समितियों के कार्य का प्रभाव गाँव के अन्य किसानों पर भी पड़ा है। कृषि विभाग इन समितियों को ट्रेंड ओवरसियर दे देते हैं, जो वैज्ञानिक ढङ्ग की खेती करनेवालों को परामर्श देते हैं। बिहार उड़ीसा में सेन्ट्रल बैङ्क अपने सम्बन्धित समितियों के सदस्यों की खेती-बारी की उन्नति करने का प्रयत्न करते हैं। लगभग पचास सेन्ट्रल बैंकों ने कृषि विभाग की सहायता से अच्छी खाद. और उत्तम बीज को बेचना प्रारम्भ कर दिया है। ये बैङ्क प्रदर्शन (डिमाँस्ट्रेशन) के द्वारा प्रचार-कार्य भी करते हैं। इस कार्य के लिये, बैंकों ने कामदार नियुक्त किये हैं, जिनको कृषि विभाग आधुनिक ढङ्ग की खेती की शिक्षा देकर कार्य करने योग्य बना देता है। मदरास में भी खेती की उन्नति करनेवाली कुछ सहकारी समितियाँ हैं, जिन्हें कृषि-प्रदर्शन या कृषि-सुधार समितियाँ कहते हैं। ये समितियाँ अपने सदस्यों को अच्छा बीज और खाद देती हैं।

उत्तरप्रदेश में इस ओर अधिक कार्य नहीं हुआ है। सहकारी साख समितियों के द्वारा कृषि विभाग के कर्मचारी आधुनिक ढङ्ग की खेती का प्रचार करते हैं। दो कृषि-सुधार समितियाँ भी स्थापित की गई हैं।

चारे आदि की सहकारी समितियाँ—पंजाब तथा बड़ौदा में कुछ समितियाँ चारे को अच्छी फसल के समय इकट्ठा करके उसे अकाल के समय सदस्यों को देने के लिये स्थापित हैं। पंजाब में लगभग पचास समितियाँ. फसल नष्ट हो जाने पर सदस्यों की सहायता करने के लिए स्थापित की गई हैं। ये समितियाँ किसान से हर फसल पर कुछ अनाज लेती हैं, और उसे बेच कर उसका मूल्य किसान के नाम जमा कर देती हैं। साधारणतया सदस्य यह रुपया निकाल नहीं सकता; जिस साल उसकी फ़सल नष्ट हो जाती है, उसी साल उसको रुपया निकालने की इजाजत मिलती है। इस प्रान्त में फल उत्पन्न करनेवाली लगभग २६ सहकारी समितियाँ स्थापित की गई है। उनका

उद्देश्य बागवानी की, वैज्ञानिक ढङ्ग से, उन्नति करना है। उनकी कार्यपद्धति खेती का सुधार करनेवाली समितियों की तरह ही है। वे सदस्यों को अच्छी पौध और खाद देती हैं, और सलाह देती रहती है। इसमें से १७ समितियाँ मरी पहाड़ियों पर ही काम कर रही हैं। इसके बाद मुजफ्फ़रगढ़ की समितियों का नम्बर आता है। यह समितियाँ अपने सदस्यों को मुरब्बा, चटनी और अचार इत्यादि बनाना सिखाती हैं।

पशु-सुधार समितियाँ—प्रत्येक प्रान्त में कुछ समितियाँ स्थापित की गई हैं, जो अच्छी नसल के पशु उत्पन्न करने का प्रयत्न करती हैं। समितियाँ उत्तम जाति के साँड़ रखती हैं, और सदस्यों के पशुओं की उन्नति करने के दूसरे उपाय भी करती हैं। पंजाब में इस प्रकार की डेढ़ सौ से अधिक समितियाँ हैं। अन्य प्रान्तों में ऐसी समितियों की संख्या बहुत कम है। यह समितियाँ चरागाह ले लेती हैं, और अपनी गायों की नसल को सुधारने का प्रयत्न करती हैं। उत्तर-प्रदेश में २२ पशु-सुधार समितियाँ हैं, जो गाय और बैलों की नस्ल को सुधारने का काम करती हैं।

सोलहवाँ परिच्छेद

उत्पादक सहकारी समितियाँ

कारीगरों की दशा—हमारे कारीगरों की दशा उतनी ही शोचनीय है, जितनी हमारे किसानों की है। एक तो उनके गृह-उद्योग-धंधों को बड़े-बड़े कारखानों की प्रतिस्पर्द्धा करनी पड़ती है: दूसरे, कारीगर व्यापारियों के ऋणी होने के कारण उनके चंगुल में फँसे रहते हैं।

एक उदाहरण लीजिए। पंजाब में कहीं-कहीं जुलाहों की बस्तियाँ बसी हुई हैं। कारखानेदार इन जुलाहों को कुछ रुपया पेशगी दे देता है। जुलाहे से यह शर्त की जाती है कि वह केवल कारखानेदार से ही सूत उधार ले और उसकी आज्ञानुसार कपड़ा तैयार करके उसे उसी के हाथ बेचे। कारखानेदार सूत का अधिक मूल्य लगाता है और बुनाई कम से कम देता है।' निर्धन जुलाहों को बहुत कम मजदूरी मिलती है और वे कारखाने के चिरदास बने रहते हैं। यही हाल दूसरे धंधों का है। अस्तु, हमारे धंधे क्रमशः नष्ट हो रहे हैं। उनकी रक्षा का एकमात्र उपाय सहकारी संगठन है। यदि उनको सहकारिता के आधार पर सुसंगठित कर दिया जावे तो कारीगरों की दशा सुधर सकती है।

गृह-उद्योग-धंधे और उनकी हीन अवस्था—गृह-उद्योग-धन्धे दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे धन्धे, जिन में लगे मनुष्य केवल उन्हीं पर निर्भर रहते हैं और वे ही उनके मुख्य पेशे होते हैं, दूसर, वे धंधे जिनको किसान खेती बारी से अवकाश पाने पर ही गौण रूप से करता है। भारतवर्ष में लगभग ७६ प्रतिशत जनसंख्या केवल खेतीबारी पर निर्भर है। गृह-उद्योग-धन्धों के नष्ट हो जाने

के कारण उनमें लगी हुई जनसंख्या खेतीबारी की ओर चली आई। खेती के योग्य भूमि कम है और खेती करनेवालों की संख्या पिछले ८० वर्षों में लगातार बढ़ती गई। इसलिये किसानों के पास भूमि इतनी कम रह गई कि उस पर इतनी पैदावार नहीं होती कि वे अपने कुटुम्ब का भली भाँति भरण-पोषण कर सकें। खेतीबारी मौसमी धंधा है, यदि किसान के पास यथेष्ट भूमि हो तो भी वर्ष के कुछ महीनों में वह अवश्य बेकार रहेगा, क्योंकि उन दिनों खेतों पर कुछ काम नहीं होता। भारतवर्ष में किसान वर्ष में चार महीने बेकार रहता है, और कहीं-कहीं तो इस अनिवार्य बेकारी का समय छः महीने तक होता है। जब भारतीय किसान की औसत दैनिक आय सात-आठ आने से अधिक नहीं है, तब यदि वह अपने अवकाश के समय को और किसी धंधे में लगाकर अपनी थोड़ी-सी आय को बढ़ा सके तो यह धंधे निर्धन किसान के आर्थिक उद्धार का कारण बन सकते हैं।

किसानों के लिये निम्नलिखित धंधे उपयोगी हैं—घी-दूध का धंधा, मुर्गी पालने का धंधा, शहद की मक्खी पालने का धंधा, भेड़ पालने का धंधा, रेशम के कीड़ों को पालने का धंधा, गुड़ बनाना, धान (चावल) साफ करना, रुई ओटना, सूत कातना, तेल निकालना रस्सी बनना, डलिया बनाना तथा चटाई तैयार करना इत्यादि।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे धंधे भी हैं, जो किसानों के लिये तो उपयोगी नहीं है किन्तु जिनमें करीगर लगे हुए हैं! भाग्यवश ये नष्ट होने से बच गये हैं, यद्यपि असंगठित होने के कारण उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय है। उनमें ये धंधे मुख्य हैं—सूती, ऊनी, रेशमी कपड़े बुनने का धंधा; दरी तथा कालीन बनाने का धंधा; छींट तथा अन्य प्रकार की छपाई तथा रंगाई का धंधा; फूल, पीतल, ताँबे, तथा लोहे के बर्तन, तथा मूर्तियाँ बनाने का धंधा; जरी तथा काढ़ने का धंधा; सोने, चाँदी के जेवर बनाने का धंधा; लकड़ी का सामान बनाने

का धंधा; मिट्टी के बर्तन तथा खिलौने का धंधा तथा चमड़े की वस्तुएँ बनाने का धंधा इत्यादि।

भारतवर्ष में इस समय गृह-उद्योग-धंधे असंगठित दशा में हैं; वे पनप नहीं रहे हैं। उनमें लगे हुए कारीगर अत्यन्त हीन अवस्था में रहकर अपना उदर पालन कर रहे हैं। धंधों की हीन अवस्था के मुख्य कारण तीन हैं—

(१) पूँजी का अभाव। कारीगर को पूँजी उधार लेनीपड़ती है। महाजन तथा व्यवसायी ऋण तो देते हैं, किन्तु सूद इतना अधिक लेते है कि बेचारे कारीगर को धंधे से कुछ लाभ हो ही नहीं सकता।

(२) कच्चा माल खरीदने तथा तैयार माल बेचने की कठिनाई। माल खरीदने तथा बेचने की कला है, जिसमे निर्धन कारीगर नितान्त अनभिज्ञ हैं। बात यह है की ये कारीगर कच्चा माल थोड़ी मात्रा में खरीदते हैं, वह भी अधिकतर उधार। इसलिये उन्हें कच्चे माल का अधिक मूल्य देना पड़ता है, फिर भी माल अच्छा नहीं मिलता। तैयार माल के बेचने में कारीगर को अत्यन्त कठिनाई होती है। वह थोड़ी मात्रा में माल तैयार करता है, इस कारण वह आधुनिक ढंग से बेच नहीं सकता। औद्योगिक उन्नति के युग में माल के लिये बाजार में मांग पैदा करनी पड़ती है, केवल माल तैयार करने से कुछ नहीं होता। माल को बाजार में खपत करने के लिये विज्ञापन-बाजी करनी होती है, एजन्ट तथा कनवेसर भेजने पड़ते हैं, माल का नुमायशों तथा दूकानों में प्रदर्शन करना पड़ता है। किसान यह सब कुछ नहीं कर सकता, क्योंकि वह थोड़ी मात्रा में माल तैयार करता है और वह इस कला को जानता भी नहीं।

(३) संगठन का अभाव। कारीगर पुराने ढंग से पुरानी डिजाइन का माल तैयार करता है। जनता की रुचि बदलती रहती है किन्तु अशिक्षित कारीगर को इसका ज्ञान नहीं होता; यदि वह जान भी जाता है कि जनता कौनसी वस्तु मांगती है तो उसे नवीन वस्तु के तैयार करने

की शिक्षा देने वाला कोई नहीं होता। बुनकर को ही ले लीजिए। वह नई डिजाइन के कपड़े तैयार नहीं कर सकता। आधुनिक समय में, जब कि फैशन शीघ्रता से बदलता रहता है, बुनकर कभी अपने धन्धे की उन्नति नहीं कर सकता, जब तक कि वह जनता की रुचि के अनुसार बढ़िया डिजाइन तैयार नहीं करेगा। अस्तु, कारीगर को परामर्श, तथा नवीन प्रणाली के माल तैयार करने की शिक्षा देने के लिये संगठन की आवश्यकता है।

भारतीय औद्योगिक कमीशन ने प्रान्तों में गृह-उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने के लिए तथा मिलों और कारखानों की उन्नति के लिये औद्योगिक विभाग स्थापित करने की सलाह दी थी। यद्यपि प्रत्येक प्रान्त में औद्योगिक विभाग स्थापित हो गये, किन्तु अभी तक वे गृह-उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिये कुछ नहीं कर सके। हाँ; पंजाब, मदरास बिहार, उड़ीसा तथा मैसूर में ऐसे एक्ट पास किये गये हैं, जो प्रान्तीय सरकारों को उद्योग-धन्धों की सहायता करने का अधिकार देते हैं। अभी इस दिशा में कुछ विशेष कार्य नहीं हो सका है।

सहकारी उत्पादक समितियाँ—यदि गृह-उद्योग-धन्धों का संगठन सहकारी समितियों के द्वारा किया जावे तो ये सब कठिनाइयाँ दूर की जा सकती हैं। उत्पादक सहकारी समितियाँ प्रत्येक धंधे में लगे हुए कारीगरों का संगठन करेंगी। एक समिति एक ही धन्धे का संगठन कर सकेगी। समिति परिमित दायित्व वाली होगी। प्रत्येक सदस्य समिति का हिस्सा खरीदेगा। समिति डिपाजिट भी स्वीकार करेगी, तथा सेन्ट्रल बैङ्कों से पूँजी उधार लेगी। हिस्सा-पूँजी, डिपाजिटें तथा ऋण समिति की कार्यशील पूँजी होगी। सदस्यों को केवल साख देने का प्रबन्ध कर देने से ही समिति उनकी अवस्था नहीं सुधार सकती। समिति को वे सब कार्य करने होंगे, जो व्यवसायी करता है। व्यवसायी कारीगर को ऋण देता है, कच्चा माल बेचता है, तथा तैयार माल खरीदता है। यदि समिति केवल साख का ही प्रबंध करके रह जायगी

तो कारीगर कच्चा माल खरीदने तथा तैयार माल बेचने में लूटा जावेगा. और जो कुछ उसे कम सूद देने के कारण लाभ हुआ वह व्यवसायी की भेंट हो जावेगा। यदि उत्पादक समितियाँ वास्तव में कारीगर की आर्थिक उन्नति करना चाहती हैं तो उन्हें व्यवसायी को क्षेत्र से बिल-कुल ही हटाना होगा, अर्थात् उसके सब कार्य अपने हाथों में लेने होंगे। भारतवर्ष में एक तो उत्पादक सहकारी समितियाँ बहुत कम हैं, दूसरे, वे केवल साख का ही प्रबन्ध करके रह गईं।

जब तक उत्पादक सहकारी समितियां सदस्यों के लिए उचित मूल्य पर कच्चा माल खरीदने तथा तैयार माल बेचने का प्रबन्ध नहीं करतीं, तब तक गृह उद्योग-धन्धे पनप नहीं सकते। किन्तु इतने से ही धन्धे का सङ्गठन पूर्ण नहीं हो सकता। समिति को कारीगरों को आधुनिक वैज्ञानिक ढङ्ग से वस्तुएँ तैयार करने की शिक्षा दिलानी होगी और उत्तम औजारों तथा यन्त्रों का प्रचार करना होगा।

यह सब कार्य केवल सहकारी समिति सफलतापूर्वक नहीं कर सकती, क्योंकि तैयार माल बेचने के लिये विज्ञापन देने; बाजार का अध्ययन करने, एजन्ट तथा कनवेसर भेजने, तथा प्रदर्शनियों का आयोजन करने की आवश्यकता होती है। यह कार्य एक समिति की शक्ति के बाहर है। अस्तु, समितियों को एक यूनियन में अपने को सङ्गठित कर लेना आवश्यक है। यूनियन कुछ कर्मचारी रखकर यह सब कार्य करेगी। उदाहरण के लिए यदि बुनकरों की एक यूनियन स्थापित की जावे तो यूनियन बुनाई कला को जाननेवाले कुछ ऐसे विशेषज्ञ नौकर रखेगी जो घूम घूमकर कुछ समय प्रत्येक समिति के सदस्य को नई डिजाइन का कपड़ा तैयार करना, अच्छे करघे के लाभ, तथा अन्य आवश्यक सुधारों की शिक्षा देंगे। यूनियन विज्ञापन के द्वारा समितियों के कपड़े का प्रचार करेगी, भिन्न-भिन्न स्थानों पर स्टोर स्थापित करके कपड़े को बेचने का प्रबन्ध करेगी, तथा एजन्ट और कनवेसर रखेगी। यूनियन बाजार का अध्ययन करके समितियों

को यह सूचना दिया करेगी कि किस प्रकार के कपड़े की बाजार में अधिक माँग है। समितियाँ उसी प्रकार के कपड़े को सदस्यों से तैयार कराया करेंगी। यूनियन प्रति वर्ष प्रदर्शनी का आयोजन करेगी। इससे दो लाभ होंगे—एक तो उस क्षेत्र के कारीगर एक-दूसरे के काम को देख सकेंगे और प्रतिस्पर्द्धा की भावना से अपनी उन्नति करेंगे, दूसरे माल का प्रचार होगा। समिति कच्चा माल व्यापारियों से न खरीद कर, उत्पन्न करनेवालों से खरीदेगी और सदस्यों को देगी। सदस्यों को कच्चा माल उचित मूल्य पर मिलेगा। सदस्य तैयार माल समिति को दे जावेगा। समिति कुछ रुपया उसी समय सदस्य को देगी। बाकी रुपया माल बिकने पर चुकाया जावेगा। समिति प्रतिशत कुछ कमीशन लेगी। वर्ष के अन्त में जो लाभ होगा वह सदस्यों में उस अनुपात से बाँट दिया जावेगा, जिस अनुपात में वे समिति के पास तैयार माल बेचने लावेंगे। इस प्रकार उत्पादक सहकारी समितियाँ गृह-उद्योग-धन्धों का संगठन कर सकती हैं। यदि हम चाहते हैं कि गृह-उद्योग धन्धे पनपें तो हमें उत्पादक सहकारी समितियाँ स्थापित करनी होंगी। योरोप में इस प्रकार की समितियाँ अत्यन्त सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं।

बुनकर समितियाँ—भारतवर्ष में बुनाई का धन्धा अत्यन्त प्राचीन है। किसी समय हमारे बुनकरों की ख्याति संसार भर में फैली हुई थी, और भारतवर्ष में बना हुआ कपड़ा एक दुर्लभ वस्तु समझी जाती थी। लेकिन राजनीतिक पतन के साथ ही हमारे धन्धों का भी पतन हो गया और सस्ते, विलायती मिलों में बने हुए, कपड़ों ने तो इस धन्धे की कमर ही तोड़ दी। किन्तु इस गये-गुजरे जमाने में भी बुनाई का धन्धा जीवित है। अर्थशास्त्रज्ञों की सम्मति है कि इस गृह-उद्योग-धन्धे ने ऐसी प्रतिकूल अवस्था में भी आश्चर्यजनक जीवन-शक्ति का परिचय दिया है। इससे ज्ञात होता है कि यदि इस धन्धे का ठीक प्रकार से

संगठन किया जावे तो यह मिलों की प्रतिद्वन्द्विता में टिक सकता है। करघों द्वारा बुनाई के धन्धे का महत्ता तो इसी से प्रकट है कि वर्ष भर में भारतवर्ष में जितने कपड़े की खपत होती है उसका २५ से ३० प्रतिशत करघों पर तैयार होता है।

अनुमान किया जाता है कि भारतवर्ष में लगभग एक करोड़ आदमी बुनाई के धन्धे में लगे हुए हैं। इसमें सूती, रेशमी और ऊनी कपड़ा तैयार करनेवाले तथा दरी और कम्बल तैयार करने वाले सभी सम्मिलित हैं। अस्तु यह स्वभाविक था कि पहले बुनकर सहकारी समितियाँ स्थापित की जातीं। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में बुनकर सहकारी समितियों की संख्या भिन्न-भिन्न प्रान्तों में जुदा-जुदा है। इन समितियों को अभी पूरी सफलता नहीं मिली। इसका कारण यह है कि ये बहुत कम स्थानों पर व्यवसायियों को हटा सकी हैं। अब यह प्रयत्न हो रहा है कि समितियों को यूनियन में सगठित किया जावे, तथा बेचने, कारीगरों को औद्योगिक शिक्षा देने और तैयार माल बेचने का आयोजन हो। यह होने पर ये समितियाँ अपने उद्देश्य में सफल हो सकती हैं।

मदरास—मदरास प्रान्त में सहकारी समितियों ने बुनकरों को संगठित किया, किन्तु उन्हें बहुत अधिक सफलता नहीं मिली। इसके कारण ये हैं—(१) बुनकरों की अज्ञानता और उदासीनता, (२) तैयार माल को बेचने की कठिनाई, (३) व्यापार का विरोध, (४) बुनकरों में व्यवसायिक ढंग न होना और अपनी समितियों का संचालन कर सकने वाले योग्य व्यक्तियों का न होना, (५) सूत के मूल्य में भारी कमी बेशी होना। इस समय प्रान्त में लगभग २०० बुनकर समितियाँ काम कर रही हैं, और लगभग १२ लाख रुपये का कपड़ा तैयार करती हैं।

सन् १९३५ तक ये समितियाँ बुनकरों को केवल साख ही देती थीं। १९३५ में भारत सरकार ने प्रान्तों को हाथ-कर्घे के धन्धे की

उन्नति के लिए सहायता दी। उस सहायता का पूरा उपयोग करने के लिए प्रान्तीय सरकारों ने हाथ-कर्घे के बुनकरों की प्रांतीय सहकारी समितियाँ स्थापित कीं। प्रान्तीय समिति सूत, अन्य कच्चा माल और कर्घे अपने से सम्बन्धित समितियों को, मोल देती है, समितियों के तैयार माल को बेचने का प्रबन्ध करती है, तथा समितियों को आर्थिक तथा अन्य प्रकार की सहायता देती है।

प्रांतीय समिति ने मुख्य-मुख्य नगरों में भन्डार स्थापित किये हैं, जिनमें सम्बन्धित समितियों का तैयार माल बिकता है। उसने एक 'फिनिशिंग प्लांट' भी खड़ा किया, जिसमें समितियों के सदस्यों के बुने हुए कपड़े का 'फिनिश' (अन्तिम परिष्कार) किया जाता है।

पंजाब—पंजाब में औद्योगिक समितियों की विशेष रूप से उन्नति हुई है। सब मिलाकर वहाँ ३५६ औद्योगिक समितियाँ हैं, जिनमें २०७ बुनकरों की, ६३ चमारों की, ३१ बढ़इयों की, १६ लुहारों की, तथा ६ तेलियों की और शेष समितियाँ भिन्न-भिन्न पेशे वालों की हैं। औद्योगिक समितियों की स्थापना युद्ध की मांग के कारण और भी अधिक बढ़ गई। कुछ समितियाँ तो केवल सेना के लिए आवश्यक वस्तुएँ तैयार करने के लिए स्थापित की गईं।

बुनकर समितियाँ सारे प्रान्त में फैली हुई हैं। वे निम्नलिखित कार्य करती हैं—पूँजी देना, कच्चा माल और औजार देना. तैयार माल को बेचना, सदस्यों को हुनर की शिक्षा देना, और उनमें स्वावलम्बन की भावना जागृत करना।

समितियाँ अपरिमित दायित्व वाली हैं, और वे अमृतसर के औद्योगिक सहकारी बैङ्क से ऋण लेकर सूत इत्यादि खरीदती हैं। सदस्यों को कच्चा माल ही उधार दिया जाता है। तैयार माल बेचने के लिए समितियाँ निम्नलिखित उपाय काम में लाती हैं :—

(१) वे माल के लिए आर्डर लेती हैं और उसे सदस्यों से बनवा देती हैं।

(२) वे भिन्न-भिन्न स्थानों पर प्रदर्शनी करती हैं।

(३) उन्होंने लाहौर, शिमला, देहली, जालंधर, करनाल, होशियारपुर, लुधियाना, अमृतसर और गुजरात इत्यादि प्रमुख नगरों में सम्मिलित बिक्री भंडार खोल रखे हैं, जो समितियों का माल बेचते हैं।

(४) वे राज्य के भिन्न-भिन्न विभागों, म्युनिसपेलटियों और ज़िला-बोर्डों से आर्डर लेती हैं। युद्ध के समय में उन्हें सेना के आर्डर बहुत मिले थे।

उत्तरप्रदेश—उत्तरप्रदेश में बुनकरों की १०७ 'प्रारंभिक बुनकर समितियाँ' हैं, जो १२ केन्द्रीय सूती वस्तु-भंडारों से सम्बन्धित हैं। ये भंडार निम्नलिखित हैं—सडीला, बाराबङ्की, गोरखपुर, मगहर, इटावा, मऊ, आगरा, कानपुर इत्यादि। इसके अतिरिक्त २४ अन्य औद्योगिक समितियाँ हैं, जो ऊन का काम करनेवालों मिट्टी के बर्तन बनानेवालों, चमड़ा कमानेवालों और पीतल के बर्तन बनानेवालों के लिए स्थापित की गई हैं। उनकी कुल कार्यशील पूंजी १६ लाख रुपये से अधिक है और उन्होंने सन् १९४५ में २३ लाख रुपये का सामान बेचा। बुनकर समितियाँ कपड़ा, कालीन, गलीचे, साड़ी, कोटिंग-शर्टिंग, तौलिया, निवाड़, तथा बनियान और मोजा सभी चीजें बनाती हैं। युद्ध-काल में इन समितियों की अच्छी उन्नति हुई; उनके बनाये सामान की मांग बढ़ जाने के कारण उनका धंधा खूब ही चमका। औद्योगिक सहकारी समितियों को ठीक तरह से संगठित करने के उद्देश्य से लखनऊ में संयुक्तप्रांतीय सहकारी औद्योगिक संघ स्थापित किया गया है। सभी स्टोर तथा समितियाँ उससे संबंधित हैं। इस संघ ने सरकार के सेना-विभाग को एक करोड़ रुपये से अधिक का सूती कपड़ा दिया। यह संघ अपने से संबंधित समितियों को सूत देता है। जब से सूत का कंट्रोल हुआ है यह संघ समितियों के द्वारा सूत बुनकरों में बाँटता है। अभी तो अधिकांश समितियाँ सूत बाँटने का काम करती हैं, किन्तु भविष्य में ये भी कपड़ा इत्यादि तैयार करने लगेंगी। ऐसा अनुमान

किया जाता है कि समितियों के द्वारा प्रान्त में गृह-उद्योग धंधों की स्थिति में सुधार होगा।

बंबई—बम्बई में ४० बुनकर समितियाँ हैं। आरम्भ में वे बुनकरों को केवल साख ही देती थीं किन्तु अब प्रान्त में आठ औद्योगिक यूनियन स्थापित की गई हैं। ये औद्योगिक यूनियनें बुनकरों को आधुनिक डिजाइनके कपड़े तैयार करने की शिक्षा देती हैं, अच्छे कर्घों का प्रचार करती हैं, सूत और रङ्ग देती हैं, और तैयार माल को अपने भंडारों से बेचती हैं।

बंगाल—बंगाल में बुनकर-समितियाँ, लगभग ५९५, मछुओं की समितियाँ सवा सौ, और रेशम उत्पन्न करनेवालों की समितियाँ ८० हैं। बंगाल की बुनकर समितियाँ, अधिकतर सदस्यों को साख ही देती हैं। रेशम-समितियों की दशा बहुत अच्छी नहीं है। बिहार और उड़ीसा में भी कुछ बुनकर सहकारी समितियाँ हैं, किंतु उनकी दशा कुछ संतोषजनक नहीं है।

विश्वव्यापी युद्ध के समय सैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के उद्देश्य से प्रत्येक प्रान्त में सहकारिता विभाग ने कुछ औद्योगिक समितियों का सङ्गठन करने का प्रयत्न किया है। इस समय बाजार में वस्तुओं की कमी तथा ऊँचे मूल्य के कारण वे सफल प्रतीत हुईं। पर युद्ध समाप्त हो गया है, अब कारखानों में बने हुए मालकी प्रतिस्पर्द्धा में वे समितियाँ टिक सकेंगी, यह कहना कठिन है।

—०—

सतरहवाँ परिच्छेद

उपभोक्ता स्टोर, गृह-निर्माण और बीमा समितियाँ

उपभोक्ता स्टोर — मनुष्य समाज का प्रत्येक सदस्य अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए कुछ वस्तुओं का उपभोग करता है। इस तरह वह उपभोक्ता है। यदि देखा जावे तो उत्पादन करनेवाले तथा उपभोग करनेवालों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक वर्ग दूसरे वर्ग पर निर्भर है. किन्तु उत्पादन करनेवालों तथा उपभोग करनेवालों के बीच में इतने दलाल हैं कि वे एक दूसरे से बहुत दूर पड़ जाते हैं। दलाल (अर्थात् व्यापारी) जो मूल्य उत्पादकों को देते हैं, उसकी अपेक्षा बहुत अधिक उपभोक्ताओं से वसूल करते है। उपभोक्ताओं को वस्तुओं का मूल्य अधिक देना ही पड़ता है, साथ ही वस्तुओं में मिलावट होती है तथा वे अच्छी नहीं होतीं। सहकारी स्टोर दलालों को अपने स्थान से हटा कर उपोक्ताओं को उचित मूल्य पर वस्तुओं के देने में सफल हुए हैं।

सर्वप्रथम इङ्गलैंड में राकडेल नामक स्थान के बुनकरों ने अपनी आवश्यक वस्तुएँ खरीदने के लिये सहकारी स्टोर चलाया था। इसलिए इन्हें ही इस आन्दोलन का सूत्रधार माना जाता है। संसार को उपभोक्ता सहकारी स्टोर जैसी उपयोगी संस्था देनेवाले इन बुनकरों का इतिहास बहुत आकर्षक है। सन् १८४४ में फ़लालैन बुननेवाले इन २८ बुनकरों ने, जो अत्यन्त निर्धन थे, किन्तु जिनमें विश्वास धैर्य, साहस और बुद्धिमत्ता कूटकूटकर भरी थी, एक दूकान खोली। इन बुनकरों के पास केवल २८ पौंड पूँजी थी, किन्तु इनमें उत्साह बहुत था, उसके कारण ये सफल हो गये।

इसके पहले कुछ स्टोर राबर्ट ओवन के नेतृत्व में खुले थे, किन्तु वे असफल रहे; कारण, वे स्टोर वस्तुएँ उधार देते थे और उनका मूल्य बाजार से कम रखते थे। राकडेल के बुनकरों ने वस्तुओं को नकद और बाजार भाव पर बेचना प्रारंभ किया। वर्ष के अन्त में खर्च काट कर जो लाभ होता, उसको ये सदस्यों में उनकी खरीद के अनुपात में बाँट देते थे। इन बुनकरों ने एक हिस्से का मूल्य एक पौंड रखा। दो पेंस प्रति सप्ताह किस्त लेकर पूँजी इकट्ठी की, और आरम्भ में केवल पाँच वस्तुओं को बेचने का प्रबन्ध किया—मक्खन, शक्कर, ओट (जई) का आटा, मोमबत्ती तथा गेहूँ का आटा। स्टोर सौदा उधार नहीं देता था, किन्तु वस्तुएँ शुद्ध तथा तोल में पूरी होती थीं। यदि कभी स्टोर को अधिक पूँजी की आवश्यकता होती तो किसी सदस्य से निश्चित सूद की दर पर उधार लेली जाती। प्रत्येक सदस्य की एक वोट (मत) थी। एक-तिहाई लाभ सुरक्षित कोष में रखा जाता था, एक-तिहाई सदस्यों को बाँट दिया जाता था, और शेष एक-तिहाई शिक्षा पर व्यय किया जाता था। सदस्यों को उत्साहित किया जाता था कि वे अपने लाभ का हिस्सा स्टोर में जमा कर दें; इस प्रकार स्टोर की पूँजी बढ़ती गई। सदस्यों की जमा, और हिस्सा पूँजी पर निश्चित सूद दिया जाता था।

राकडेल के बुनकरों ने अपने स्टोर का प्रबन्ध ऐसा अच्छा किया कि शीघ्र ही नये सदस्य बनने लगे तथा स्टोर की उन्नति होने लगी। क्रमशः स्टोर सदस्यों को सब आवश्यक वस्तुएँ देने लगा। बिक्री बढ़ने लगी। तब वस्तुओं को उत्पन्न किया जाने लगा। आरम्भ में स्टोर ने जूते बनाने तथा कपड़े सीने के विभाग खोले। धीरे धीरे उत्पादन कार्य बढ़ता गया। इस स्टोर की आशातीत सफलता देखकर उत्तरी इङ्गलैंड में शीघ्र ही बहुत से स्टोर खुल गये।

इससे फुटकर विक्रेता चौंके और उन्होंने इनका विरोध करना शुरू किया। जब फुटकर विक्रेता विरोध में सफल न हुए तब उन्होंने थोक

व्यापारियों पर यह ज़ोर डाला कि वे स्टोरों को वस्तुएँ अधिक मूल्य पर दें। अब सहकारी स्टोरों के सामने एक नई समस्या उपस्थित हुई। इस समस्या को हल करने के लिये इङ्गलैंड के स्टोरों ने दो होलसेल सोसाइटी स्थापित की। होलसेल सोसाइटी माल को थोक व्यापारियों के बजाय सीधे मिलों और कारखानों से खरीद कर अपने सदस्य-स्टोरों के हाथ बेचने लगी। इस प्रकार थोक व्यापारियों को भी सहकारी आंदोलन ने अपने स्थान से हटा दिया और उनके लाभ को उपभोक्ताओं के लिये सुरक्षित कर लिया। इसके उपरान्त इङ्गलैंड तथा स्काटलैंड के स्टोरों ने मिलकर सहकारी यूनियन की स्थापना की। इस यूनियन का मुख्य काय विज्ञापन प्रचार, शिक्षा, तथा आंदोलन की देखरेख करना है। क्रमशः आंदोलन तीव्र गति से बढ़ता गया और स्टोरों की संख्या बढ़ती गई। तब होलसेल सोसायटियों ने उत्पादन-कार्य भी अपने हाथ में ले लिया।

१८७३ में इङ्गलैंड की होलसेल सोसायटी ने उत्पादन-कार्य करने का निश्चय किया। उसी वर्ष सोसायटी ने मैंचेस्टर का बिस्कुट तथा मिठाई बनाने का कारखाना खरीद लिया। कुछ समय के बाद एक बूट फेक्टरी खोली गई। क्रमश उत्पान कार्य उन्नति करता गया तथा दो बूट फेक्टरियाँ और खोली गईं। इसके उपरांत साबुन, मुरब्बे, मोमबत्ती कपड़े धोने का पाउडर, फ़लालेन, मोजे, बनियान फर्नीचर, कपड़े बुरुश, तम्बाकू, सिगरेट, आटा, छापेखाने लोहा टिन, तेल तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ बनाने के कारखाने खोले गये। यही नहीं; पीछे जाकर, एक कोयले की खान भी खरीद ली गयी।

१८७६ में सोसायटी ने अपनी वस्तुओं को लाने तथा लेजाने के लिए जहाज खरीदे। इसने इंगलैंड में अनाज तरकारी तथा फल उत्पन्न करने के लिये फार्म खरीद लिये हैं। वहाँ इसके हजारों स्टोर खुल गये हैं। आसाम में इसने चाय के बाग लगाये हैं, जिनसे स्टोरों के सदस्यों को चाय मिलती है।

इस सोसायटी ने गेहूँ उत्पन्न करने के लिए कनाडा में दस हजार एकड़ से अधिक भूमि का एक फार्म खरीदा है। पश्चिमी अफ्रीका में भी भूमि खरीदी गई है। सोसायटी ने जीवन, अग्नि-दुर्घटना तथा अन्य प्रकार का बीमा कराना आरंभ कर दिया है। वह बैंकिंग, गृह-निर्माण, पत्रिका प्रकाशन तथा बीमारों के लिये स्वास्थ्य-गृह बनाने का कार्य भी करती है। स्काटलैंड होलसेल सोसायटी ने भी अपने सदस्यों के लिये आवश्यक वस्तुएँ बनाने के कारखाने चलाये तथा भूमि मोल लेकर खेतीबारी की। इन दोनों सोसायटियों ने बीमा तथा कुछ अन्य कार्य सम्मिलित रूप से किये हैं। इन्होंने ल्यूटन में कोको का एक कारखाना खोला है।

होलसेल सोसायटी के सदस्य-स्टोर, सोसायटी के हिस्से खरीदते हैं। जिस स्टोर के जितने सदस्य होते हैं, उसी के अनुपात में स्टोर को हिस्से खरीदने पड़ते हैं। केवल स्टोर ही इसके सदस्य बन सकते हैं। स्टोर को माल बाजार के थोक भाव से बेचा जाता है। वार्षिक लाभ स्टोरों में उनकी खरीद के अनुपात में बाँट दिया जाता है। होलसेल सोसायटी ने सदस्य-स्टोरों की सुविधा के लिए शाखाएँ खोल दी हैं, तथा प्रत्येक प्रमुख मण्डी में वस्तुओं को खरीदने के लिए एजंसियाँ स्थापित कर दी हैं।

होलसेल सोसायटियों के कारखानों में मजदूरों की दशा साधारण कारखानों से अच्छी है, और उनको मजदूरी भी कुछ अधिक मिलती है। उनके स्वास्थ्य तथा आमोद-प्रमोद का प्रबन्ध किया जाता है। काम करने के घन्टे भी कुछ कम होते है, प्रत्येक मजदूर को वर्ष में दो सप्ताह की छुट्टी वेतन सहित मिलती है। मजदूरों के लिए प्राविडेंट फंड भी होता है। स्काटलैंड की सोसायटी के कारखानों में मजदूर सोसायटी के हिस्से ले सकते हैं; प्रबन्धकारिणी समिति में उनके भी प्रतिनिधि रहते हैं।

सदस्य-स्टोर अपने प्रतिनिधि चुनकर होलसेल सोसायटी की

मीटिंग में भेजते हैं। ये प्रतिनिधि संचालक-बोर्ड का चुनाव करते हैं। भिन्न भिन्न विभागों तथा कारखानों के मैनेजरों की नियुक्ति डायरेक्टर लोग करते हैं। डायरेक्टर भिन्न-भिन्न विभागों की देखभाल करते हैं।

भारतवर्ष में उपभोक्ता स्टोर— भारतवर्ष में सहकारी स्टोरों का आन्दोलन पिछले महायुद्ध के बाद बहुत बढ़ा। उस समय सरकार ने खाद्यपदार्थों का नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया था। जैसे ही नियंत्रण हटा स्टोरों की संख्या घटने लगी। बहुत से स्टोर बन्द हो गये और बहुतों का दिवाला निकल गया। इसका मुख्य कारण यह है कि सदस्य आन्दोलन के मुख्य सिद्धान्त को भूल जाते हैं। वे समझते हैं कि स्टोर सस्ती चीज बेचने के लिए खोला गया है। फल यह होता है कि जब बाजार-भाव गिरने लगता है तो सदस्य स्टोर से चीजें न खरीद दूसरे दूकानदारों से खरीदने लगते हैं। स्टोर फेल हो जाता है। सिद्धान्त तो यह है कि वस्तुओं को बाजार भाव पर बेचा जावे; किन्तु चीजें अच्छी हों और तौल पूरी हो।

असफलता का दूसरा मुख्य कारण है, सौदा उधार देना। उधार देना स्टोर तथा सदस्य दोनों के लिये हानिकारक है। सदस्य को ऋण लेने की आदत पड़ जाती है। जब वह दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुओं को उधार लेने लगता है तो वह व्यर्थ के कामों में रुपया फेंकने लगता है। स्टोर को सौदा उधार देने के कारण थोक व्यापारियों से माल उधार लेना पड़ता है। इन स्टोरों का प्रबन्ध भी ठीक नहीं रहता और व्यय अधिक होता है; यह भी उनकी असफलता का कारण है। एक कारण यह भी है कि यहाँ होलसेल सोसायटियाँ नहीं हैं, इससे स्टोर को माल ऊँचे मूल्य पर मोल लेना पड़ता है।

असफलता का, इसके अतिरिक्त, एक कारण यह भी है कि भारतवर्ष में बनिया बहुत कम लाभ पर काम करता है: महीने के अन्त में दाम लेता है और बड़े-बड़े नगरों में तो वह घर पर ही सामान दे जाता

है। अन्य देशों में उपभोक्ता-स्टोर अधिकतर मजदूरों के लिए स्थापित किये जाते हैं। परन्तु भारतवर्ष में मजदूर कारखानों के क्षेत्र में स्थायी रूप से नहीं रहते, वे अपने गाँवों को चले जाते हैं। इसलिये वे ऐसे कार्यों में उत्साह नहीं दिखलाते। यहाँ तो निम्न मध्यम श्रेणी ही इनका विशेष उपयोग कर सकती है। हाँ, जैसे-जैसे मजदूर वर्ग अधिक सुसंगठित होते जावेंगे, वे उपभोक्त-स्टोरों का अधिकाधिक उपयोग करने लगेंगे।

मद्रास—बड़ी मात्रा में काम करके केवल मद्रास के ट्रिपलीकेन सहकारी स्टोर ने आश्चर्य जनक सफलता प्राप्त की है। यह स्टोर ९ अप्रैल १९०४ को खोला गया। आरम्भ में दो कर्मचारी रखे गये, एक मैनेजर दूसरा बेचने वाला। दोनों का वेतन आठ रुपया मासिक था। स्टोर के जन्मदाताओं ने अपना बहुत सा समय स्टोर की देख-भाल में देना शुरू किया। जहाँ तक होता, व्यय कम किया जाता था। १९०५ में स्टोर की रजिस्टरी कर दी गई। जब लोगों ने इस स्टोर को चलते देखा, तब वे प्रभावित हुए और सदस्यों की संख्या क्रमशः बढ़ने लगी। २५ जनवरी १९३० को स्टोर की जुबली मनाई गई। जुबली हाल की नींव मद्रास गवर्नर ने डाली थी। इस भवन के बनवाने में स्टोर ने लगभग २८ हजार रुपये व्यय किये।

आर्थिक मन्दी के समय में ट्रिपलीकेन स्टोर के व्यापार की गति बहुत धीमी हो गई। लाभ बहुत कम हो गया और मूलधन भी घट गया। किन्तु १९३८ के उपरांत स्टोर का व्यापार फिर चमक उठा। अब उसकी ३३ शाखाएं हैं; सदस्यों की संख्या सात हजार के लगभग है। वह प्रति मास एक लाख रुपये से अधिक की बिक्री करती है। बिक्री इन चीजों की होती है—अनाज, चावल, गुड़, शक्कर, तेल, मसाला, सूखे फल, चाय कहवा, साबुन, आटा, दाल घी और मक्खन। स्टोर मक्खन लेकर उसका घी बनाता है, जिससे सदस्यों को शुद्ध घी मिल सके। स्टोर तेल, बिस्कुट, मिठाई औषधियाँ भी बेचता है, किन्तु वह

अभी तक फल, तरकारी, दूध और दही बेचने का प्रबन्ध नहीं कर सका। यह स्टोर अभी तक मद्रास की केवल ५ प्रतिशत जनसंख्या को ही सुविधा देता है; उसके सदस्य अधिकांश पढ़े लिखे लोग हैं, मजदूर उसके सदस्यों में हैं ही नहीं। इन सदस्यों का स्टोर से सामान खरीदने का कारण यह नहीं है कि उनमें सहकारिता की भावना है, परन्तु वे सुविधा, तथा तोल और भाव में धोखा न खाने के लिए स्टोर से सामान खरीदते हैं। स्टोर ने अभी तक कभी खरीद पर दो पैसा फी रुपया से अधिक बोनस नहीं बांटा। यह इतना कम है कि सदस्यों को कोई विशेष आकर्षण नहीं है। फिर भी यह स्टोर भारतवर्ष की एक महत्वपूर्ण संस्था है।

युद्ध जनित कठिनाई के कारण प्रान्तीय सरकार ने ट्रिप्लीकेन स्टोर को आर्थिक सहायता देकर २५ शाखें और खुलवाईं, जो नागरिकों को अनाज, दाल, तेल, शक्कर तथा अन्य दैनिक आवश्यकताओं की चीजें देती हैं। युद्ध छिड़ने के पहले ट्रिप्लीकेन स्टोर के सिवाय मद्रास में केवल ८५ स्टोर थे जो अधिकतर कालेजों, रेलवे तथा कारखानों में स्थापित थे; किन्तु लड़ाई छिड़ते ही उपभोक्ता स्टोरों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ी क्योंकि जनता को दैनिक आवश्यकताओं की चीजों के मिलने में बहुत कठिनाई होने लगी।

मद्रास में द्वितीय महायुद्ध तथा उसके उपरान्त जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं के मिलने में कठिनाई होने के कारण उपभोक्ता स्टोरों की संख्या तेजी से बढ़ी और आज वहां लगभग दो हजार उपभोक्ता स्टोर काम कर रहे हैं। मद्रास के उपभोक्ता स्टोर आन्दोलन की विशेषता यह है कि वहाँ गाँवों में भी स्टोर स्थापित हो गए हैं। मद्रास के गांवों में लगभग २०० उपभोक्ता स्टोर हैं जिनकी सदस्य संख्या दो लाख से अधिक है, उनकी कार्यशील पूँजी लगभग ५८ लाख और बिक्री चार करोड़ रुपए के लगभग है। भारत में केवल मद्रास प्रान्त ही एक ऐसा प्रान्त है जहाँ गाँवों में स्टोर स्थापित हो गए हैं।

मदरास प्रान्त में उपभोक्ता आन्दोलन की दूसरी विशेषता यह है कि वहाँ केन्द्रीय स्टोर स्थापित हो गए हैं तथा होल सेल सोसायटी भी स्थापित हो गई है। दक्षिण भारत में उपभोक्ता आन्दोलन विशेष रूप से सफल हुआ है।

इन उपभोक्ता स्टोरों की सदस्य संख्या लगभग डेढ़ लाख है और उनकी चुकता पूंजी एक करोड़ से अधिक है। मदरास में स्टोर तेजी से बढ़ रहे हैं क्योंकि सरकार राशन की वस्तुओं को जनता तक पहुँचाने के लिए स्टोरों को प्रोत्साहन देती है।

मैसूर— मैसूर में स्टोर आन्दोलन कुछ सफल हुआ है। इस राज्य में बंगलोर का स्टोर उल्लेखनीय है, यद्यपि यह ट्रिपलीकेन स्टोर से छोटा है। इसके अतिरिक्त अन्य स्टोर अधितर रेलवे, मिलों तथा आफिसों के कर्मचारियों के लिये हैं और अधिकारियों के संरक्षण में कार्य कर रहे हैं। मैसूर में स्टोर सौदा उधार भी दे देते हैं। वहाँ लगभग ८० स्टोर हैं, जो खानेपीने का सामान और कपड़ा बेचते हैं।

बम्बई—बम्बई में आन्दोलन अफसल रहा। इसका मुख्य कारण यह है की यहाँ पर की दूकानें बहुत होने से थोक तथा फुटकर मूल्य में अन्तर कम है। दूकानदार सामान घर पर पहुँचा देता है; और मास के अन्त में हिसाब कर ले जाता है। इन दूकानदारों से प्रतिस्पर्द्धा करना कठिन है, क्योंकि इनका खर्चा बहुत कम है।

द्वितीय महायुद्ध तक उपभोक्ता आन्दोलन की दशा बम्बई में अच्छी और संतोषजनक नहीं थी। वहां केवल २५ उपभोक्ता स्टोर थे जिनमें बी० बी० एण्ड० सी० आई० रेलवे का स्टोर उल्लेखनीय था। किन्तु द्वितीय महायुद्ध के फलस्वरूप जो कंट्रोल तथा राशनिंग की व्यवस्था की गई उसके कारण बम्बई में उपभोक्ता स्टोरों की संख्या तेजी से बढ़ी और वहां उनकी संख्या बढ़ कर ४६५ हो गई। यह कहना कठिन है कि कंट्रोल तथा राशनिंग हट जाने के उपरान्त

तथा आवश्यक पदार्थों की कमी दूर हो जाने के उपरान्त इन स्टोरों की स्थिति क्या होगी। यह भविष्य ही बतलावेगा।

उत्तरप्रदेश:—उपभोक्ता-स्टोरों के सम्बन्ध में यह प्रान्त बहुत पिछड़ा हुआ है। यहाँ इस समय ८ केन्द्रीय और २०० उपभोक्ता स्टोर हैं। ये युद्ध-काल में अपने सदस्यों को दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं को बेचने के लिए बहुत बड़ी संख्या में खोले गये थे और इन्होंने सफलतापूर्वक कार्य भी किया किन्तु सरकारी कंट्रोल तथा राशनिंग हो जाने के उपरान्त उनका कार्य शिथिल पड़ गया। इनके अतिरिक्त कुछ उपभोक्ता स्टोर कालेजों तथा अन्य स्थानों में खाद्य वस्तुओं के अतिरिक्त सभी वस्तुओं को अपने सदस्यों को बेचते हैं। इस प्रकार के स्थायी उपभोक्ता-स्टोर २५ के लगभग हैं। प्रान्तीय सहकारी मार्केटिंग फेडरेशन भी दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं को बेचने का काम करती है। इसकी १२ जिलों में लगभग २०० दूकानें हैं जो प्रतिवर्ष पाँच करोड़ से अधिक का तेल, शक्कर, नमक, कपड़ा, खली, और ईंधन बेचती हैं। फेडरेशन के प्रयत्नों से चोर बाजार को कम करने में बहुत सहायता मिली है। किन्तु यह अस्थायी है। यदि उचित ढंग से संगठन हुआ तो युद्ध-जनित कठिनाइयों के दूर हो जाने पर यह स्टोर आदि लुप्त हो जावेंगे। उपभोक्ता-स्टोर आन्दोलन को स्थायी रूप से संगठित करने के लिए होलसेल-सोसायटी की स्थापना आवश्यक है।

इनके अतिरिक्त बंगाल, आसाम, पंजाब, सिंधु, बिहार-उड़ीसा, तथा मध्यप्रान्त में भी कुछ स्टोर हैं; परन्तु उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली। देशी राज्यों में यद्यपि त्रावंकोर में ५२ और बड़ौदा में ३० स्टोर हैं, परन्तु वहाँ भी यह आन्दोलन सफल नहीं हुआ है।

स्टोर की सफलता के लिए आवश्यक है कि सदस्य स्टोर के प्रति अपना कर्त्तव्य समझें। प्रबन्धकारिणी समिति के सदस्य अपना समय

स्टोर के प्रबन्ध में लगावें, सौदा उधार न दिया जावे और नियमों का पालन किया जावे ।

अभी तक सहकारिता आन्दोलन के कार्यकर्ताओं का ध्यान गाँवों की ओरनहीं गया । भारतवर्ष तो गाँवों का देश है । और गाँवों में बनिया किसान को लूटता है । अस्तु, गाँव वालों को उनकी आवश्यक वस्तुएँ देने का प्रबन्ध किया जावे तो विशेष हित हो । किन्तु गाँवों में केवल स्टोर ही सफल नहीं होगा । आवश्यकता यह है कि कोई ऐसी समिति हो जो इस कार्य के साथ बिक्री इत्यादि का भी कार्य करे। उपभोक्ता स्टोर संबंधी तालिका अगले पृष्ठ २४७ पर दी गई है ।

सहकारी गृह-निर्माण-समितियाँ— सहकारी गृह-निर्माण समितियाँ दो तरह की होती हैं—(१) जिनमें मकान का मालिक कोई व्यक्ति होता है. (२) जिनमें समिति सामूहिक रूप से मालिक होती है।

पहले प्रकार की समितियाँ दो प्रकार की होती हैं । एक तो स्थायी, दूसरी अस्थायी । अस्थायी गृह-निर्माण समितियाँ वे हैं; जो एक निश्चित संख्या में सदस्य बनाती हैं, प्रत्येक सदस्य को मासिक या साप्ताहिक चन्दा देना होता है । यदि कोई सदस्य समिति को छोड़ दे तो उसके स्थान पर नया सदस्य लिया जा सकता है । जब चन्दा जमा होता है, तब लाटरी डालकर रुपया एक सदस्य को दे दिया जाता है, और उसका मकान बन जाता है । मकान समिति के पास गिरवी रहता है, और सदस्य सूद सहित ऋण किस्तों में चुकाता रहता है । इसी प्रकार सब सदस्यों के मकान तैयार हो जाते हैं । समिति उस समय तक नहीं तोड़ी जाती, जब तक सबकी किस्तें न चुक जावें । सब ऋण चुक जाने पर रुपये का हिसाब किया जाता है, तथा लाभ को बांटकर समिति तोड़ दी जाती है ।

स्थायी समिति में सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं होती । सदस्यों को समिति के हिस्से खरीदने पड़ते हैं । समिति डिपाजिट लेती है, तथा ऋण भी लेती है । समिति नये सदस्य बनाती जाती है और

उपभोक्ता स्टोर-१९४५-४६

नाम प्रान्त	समितियों की संख्या	सदस्यता	हिस्सा पूंजी	कार्यशील पूंजी	बिक्री में
			(लाख रुपयों में)		
मदरास	११४६	४४७,०००	६७	१५७	११,५८
बम्बई	४६५	११२,५६०	२९	५१	५,४२
आसाम	१२८९	१३५,१८०	२७	१०३	१३०
बंगाल(पूर्व और पश्चिम)	३७२	७४,११०	८	१२	७५
उड़ीसा	११२	१५,१६०	२	४	४८
उत्तरप्रदेश	११३	१९,०००	१	५	५४
बरार	८७७	२६,११९	१	५	४१
मैसूर	१५१	१२,९४२	६	२६	१०५
ट्रावंकोर	१९	२४५०	०'४	१	७

जैसे-जैसे रुपया मिलता जाता है, सदस्यों को ऋण देती है। कुछ बड़ी समितियाँ इंजीनियर, सर्वे करनेवालों तथा अन्य कर्मचारियों को नौकर रखती हैं, जो सदस्यों को परामर्श देते हैं। सदस्यों को इस सहायता के लिए एक निश्चित फीस देनी पड़ती है। सदस्यों को मकान के ऊपर ऋण दिया जाता है और एक निश्चित समय में रुपया चुका देना पड़ता है। समिति मकान की लागत का तीन-चौथाई ऋण देती है, एक-चौथाई रुपया सदस्य को लगाना पड़ता है। प्रत्येक इमारत का बीमा कराया जाता है। बीमा समिति के नाम होता है।

कुछ समितियाँ मकान स्वयं बनवाती हैं। मकान सदस्यों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए बनवाते जाते हैं। सदस्य उन मकानों में किरायेदारों की तरह रहते हैं, यदि वे चाहें तो प्रतिमास किराये के अतिरिक्त कुछ रुपया मकान के मूल्य को चुका देने के लिए दे सकते हैं। जब मकान का मूल्य चुक जाता है, तब मकान सदस्य का हो जाता है। किन्तु इस प्रकार वही समितियां मकान बना सकती है। जिनके पास यथेष्ट पूँजी हो। इङ्गलैण्ड के उपभोक्ता स्टोर तथा फ्रैंडली सोसायटियाँ अपनी बेकार पूँजी को मकानों में लगा देती हैं। इस प्रकार की समितियों का जिनमें सदस्य मकान का मलिक हो जाता है, एक बड़ा दोष यह है कि सदस्य को यह अधिकार हो जाता है कि यदि वह चाहे तो मकान को बेच दे। इसका फल यह होता है कि समितियों द्वारा बनाये हुए मकान ऐसे लोगों के पास पहुँच जाते हैं, जो उनको बेचकर लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं।

इस दोष को दूर करने के लिये बम्बई में एक नवीन योजना काम में लाई गई है। समिति भूमि या तो पट्टे पर लेती है या मोल ले लेती है। वह उस भूमि पर सड़कें बनाती है, फिर भूमि को छोटे छोटे प्लाटों (चौरस टुकड़ों) में बाँट देती है। यह प्लाट सदस्यों में बांट दिये जाते हैं। कुछ भूमि पार्क, वाचनालय, खेलने के लिये तथा अन्य ऐसे ही सार्वजनिक कार्यों के लिए रख ली जाती है। यदि समिति ने भूमि पट्टे

पर ली है तो सदस्य को प्लाट समिति के पट्टे से एक साल कम के पट्टे पर मिलेगा। यदि समिति ने भूमि मोल ली है तो सदस्य को प्लाट ६६६ साल के पट्टे पर दिया जाता है। शर्त यह होती है कि जब कभी वह भविष्य में मकान अथवा प्लाट बेचे तो खरीदने का पहिला अधिकार समिति को, अथवा समिति जिस सदस्य के लिये कहे उसको, होगा। प्रान्तीय सरकार इस प्रकार की समितियों के सदस्यों को उनकी दी हुई पूँजी का दुगुना ऋण देती है किन्तु किसी एक सदस्य को १०,०००रु० से अधिक ऋण नहीं दिया जा सकता। सदस्य को २० साल में ऋण चुका देना पड़ता है। समिति या तो स्वयं मकान बनाती है अथवा निर्धारित प्लाट पर सदस्यों को मकान बनाने देती है। जब मकान बन जाते हैं तो समिति उस छोटे से उपनिवेश की म्यूनिसपेलटी का कार्य करती है।

यह तो उन समितियों की बात हुई, जिनमें मकान का मालिक कोई एक व्यक्ति होता है। अब उन समितियों का विचार करें जो सामूहिक रूप से मकान की मालिक होती हैं। इस प्रकार की समिति एक बड़ा प्लाट खरीदती है और उस पर सदस्यों की आवश्यकतानुसार मकान बनाती है। सदस्य मकानों में किरायेदारों की भाँति रहते हैं। सदस्य मकानों की लागत की १/५ से लेकर १/३ तक पूँजी, समिति को देते हैं। बाकी पूँजी समिति इमारतों की जमानत पर डिबेञ्चर बेच कर इकट्ठी करती है। इङ्गलैंड में इन समितियों के डिबेञ्चर जनता खूब खरीदती है। किन्तु भारतवर्ष में ऐसा नहीं है। इस कारण प्रान्तीय सरकार समितियों को ५॥ प्रतिशत सूद पर ऋण दे देती है। १६१७ में भारत सरकार ने एक प्रस्ताव पास करके प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार दिया था कि वे गृह-निर्माण समितियों को ऋण दे सकें।

इस प्रकार की समितियों में, इमारतों की मालिक समिति होती हैं, और समिति को सदस्य ही चलाते हैं। इस कारण उनसे अधिक किराया नहीं लिया जा सकता। मकानों का किराया एक निश्चि

सिद्धान्त पर तय किया जाता है। यदि कोई सदस्य चाहे तो नोटिस देकर मकान छोड़ सकता है। समिति वह मकान किसी दूसरे सदस्य को दे देती है। नया सदस्य जो पूँजी देता है, वह जानेवाले सदस्य को दे दी जाती है।

बम्बई में सबसे पहले सारस्वत सहकारी गृह-निर्माण समिति स्थापित हुई। उसने इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट से ९९९ साल के पट्टे पर भूमि लेकर इमारतें बनवाई। यह समिति सामूहिक स्वामित्व वाली है। सदस्यों ने एक-तिहाई पूँजी दी, तथा बाकी ऋण लिया गया। मकानों का किराया निर्धारित करते समय लगान टैक्स, रेट (शुल्क), अग्नि-बीमा, मरम्मत, पूँजी पर सूद, तथा सिंकिंग-फंड आदि सब खर्चों का हिसाब लगाया जाता है। सिंकिंग-फंड इसलिये आवश्यक होता है कि ८० या १०० वर्षों के उपरांत जब इमारतों को फिर से बनवाना पड़े तो उनके लिये पूँजी मिल जाय। अस्तु, इमारतों की लागत का १/३ प्रतिशत इस फंड में जमा कर दिया जाता है, और यह द्रव्य इकट्ठा होता रहता है। प्रान्तीय सरकार ने ऋण देने के अतिरिक्त, 'लैंड एक्विजिशन एक्ट' में संशोधन करके सहकारी समितियों को अपने लिए भूमि पाने की सुविधा प्रदान करदी है।

भारतवर्ष में बड़े शहरों में निम्न-मध्यम श्रेणी के लोगों के लिये मकान की समस्या बहुत कठिन् है। यदि गृह-निर्माण समितियाँ स्थापित की जा सकें तो यह समस्या हल हो जावे, किन्तु अभी तक यह आन्दोलन धनी-मध्यम वर्ग को ही कुछ सुविधा पहुँचा सका है। पश्चिमी देशों में गृह-निर्माण समितियाँ अधिकतर मिल-मजदूरों के लिए स्थापित की गई हैं, किन्तु भारतवर्ष में उनके लिए अभी तक कोई समिति नहीं खोली गई।

बम्बई में सहकारी गृह-निर्माण समितियाँ—बम्बई प्रान्त में 'सारस्वत गृह-निर्माण समिति १९१५ में स्थापित हुई तभी से इस आन्दोलन का बम्बई में प्रादुर्भाव हुआ। बाद को

जब बम्बई की प्रान्तीय सरकार ने सहकारी गृह-निर्माण समितियों को सहायता देने की नीति घोषित की तो इस आन्दोलन को अधिक बल मिला। परन्तु १९३० के उपरान्त जो आर्थिक मंदी आई उसमें इस आन्दोलन को धक्का लगा और समितियों को सरकार ऋण को चुकाने में कठिनाई हुई। सरकार को कुछ छूट देनी पड़ी। परन्तु दूसरा युद्ध आरम्भ होते ही बम्बई नगर में जनसंख्या बहुत तेजी से बढ़ी। बम्बई, अहमदाबाद तथा अन्य औद्योगिक केन्द्रों में युद्ध काल में इतनी अधिक जनसंख्या बढ़ गई कि मकानों का अकाल पड़ गया। विभाजन के उपरान्त तो पश्चिमीय पाकिस्तान से आये हुए शरणार्थियों के कारण तो वहां मकानों का दुर्भिक्ष ही पड़ गया। परिणाम यह हुआ कि बम्बई तथा अन्य औद्योगिक केन्द्रों के लिए एक गृहस्थी के योग्य मकानों के लिए पांच से दस हजार तक पगड़ी दी जाने लगी। अच्छे मकानों के लिए दस हजार से २० हजार तक पगड़ी देनी पड़ती थी।

प्रान्तीय सरकार ने मकानों की इस भयंकर समस्या को हल करने के लिए एक प्रान्तीय गृह निर्माण बोर्ड स्थापित किया। तथा एक प्रान्तीय गृह-निर्माण समिति स्थापित की, सहकारी गृह-निर्माण समितियों को प्रान्तीय सरकार ने सब तरह की सहायता देना आरम्भ करदी जिससे कि वे बम्बई, अहमदाबाद, पूना, शोलापूर, तथा हुबली में गृहनिर्माण करके मकानों की समस्या को हल कर सकें।

इसका परिणाम यह हुआ कि सरकारी गृहनिर्माण समितियों की तेजी से स्थापना होने लगी और बम्बई प्रान्त में लगभग ४०० समितियां काम कर रही हैं।

प्रान्तीय सरकार इन समितियों को जमीन तथा इमारत की लागत का ५० प्रतिशत से लेकर ७५ प्रतिशत ऋण दे देती है और उस पर ३ प्रतिशत सूद लिया जाता है। यह ऋण ३५ वर्ष में लौटाया जा सकता है। यही नहीं, सहकारी गृह-निर्माण समितियों

को इमारती सामान दिलाने की सुविधा कर दी गई है। समितियों को इमारती सामान मिलने में प्राथमिकता दी जाती है।

पिछड़ी हुई जातियों के लिए मकानों की एक गम्भीर समस्या है। बम्बई सरकार ने सूरत जिले में 'हलपाती' नामक पिछड़ी जाति के लिए प्रयोग के रूप में १० सहकारी गृहनिर्माण समितियों को स्थापित करने की आज्ञा दी है। सरकार समितियों को सहायता नीचे अनुसार देगी।

एक मकान की लागत ५०० रु० होगी, जिसका आधा खर्च सरकार कर्जे के रूप में बिना व्याज देगी जो दस वर्षों में अदा करना होगा। जंगल विभाग लकड़ी और बांस कम कीमत पर देगा।

जो सरकारी जमीन खाली पड़ी है वह सरकार इन समितियों को आधी पाई प्रति वर्ग गज के हिसाब से देगी। जहाँ ऐसी जमीन नहीं है वहाँ सरकार जमीन को लेकर प्रति मकान के लिए २०० से ३०० वर्ग गज जमीन ८ आना प्रति मास लगान पर देगी।

समितियाँ कुआं बनवाने पर जो व्यय करेंगी उसका आधा सरकार सहायता के रूप में देगी।

१९४६ में प्रान्त में भीषण बाढ़ आ गई अतएव प्रान्तीय सरकार ने नागर ज़िले के २० गांवों में मकान बनाने के लिए सहायता की घोषणा की, यदि वहाँ सहकारी गृह निर्माण समितियाँ स्थापित हो जावें। अस्तु उन २० गांवों में गृह निर्माण समितियाँ स्थापित हो गई हैं। इन समितियों को सरकार ने कम सूद पर ऋण दिया है और जमीन मुफ़्त दी है।

सहकारी गृह निर्माण समितियों को संगठित करने, उनकी देख-भाल तथा उनके नियंत्रण करने तथा उनके हिसाब की जांच करने के लिए और उनको जमीन तथा इमारती सामान दिलाने में सहायता करने के लिए एक प्रान्तीय सहकारी गृह निर्माण फेडरेशन स्थापित

की गई है। अब इस फेडरेशन के नेतृत्व में सहकारी गृह-निर्माण समितियां कार्य करेंगी।

मदरास—मदरास में भी सहकारी गृह-निर्माण समितियों की संख्या तेजी से बढ़ी है। वहाँ लगभग १५० गृह निर्माण समितियाँ काम कर रही हैं। द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त नगरों में मकानों की भयंकर कमी अनुभव होने लगी और मध्यम वर्ग को रहने के लिए मकान मिलना असम्भव हो गया। ऐसी दशा में सरकार ने एक प्रांतीय गृह-निर्माण कमेटी बिठाई और उस कमेटी की सिफारिशों के अनुसार सरकार ने गृह-निर्माण योजना को स्वीकार किया है। अतएव मदरास प्रान्त में गृह-निर्माण समितियाँ तेजी से बढ़ती जा रही है।

यों तो मदरास प्रान्त में प्रथम गृह-निर्माण समिति १९१३-१४ कोयमवटूरमें स्थापित हुई थी और क्रमशः मदरास मदूरा, डिंडीगुल. और कुँभकोनभ में भी गृह निर्माण समितियाँ स्थापित हुई परन्तु वास्तव में इस आन्दोलन को १९२४ में विशेष बल मिला जबकि प्रान्तीय सरकार ने गृह-निर्माण समितियों को कम सूद पर ऋण देने की नीति को स्वीकार कर लिया और समितियों के लिए भूमि मिलने की सुविधा प्रदान कर दी। द्वितीय महायुद्ध के पूर्व (१९३९) तक मदरास प्रान्त में १२६ समितियाँ काम करती थीं। उनकी सदस्य संख्या ४५८३ थी। उनकी चुकता पूँजी १० लाख ५३ हजार थी और लगभग २४०० मकान बनाये जा चुके थे। द्वितीय महायुद्ध के उपरांत प्रान्तीय गृह-निर्माण कमेटी की सिफारिश के अनुसार जो गृह-निर्माण योजना स्वीकार की गई है उसका सारांश हम यहाँ देते हैं।

सरकार ने प्रत्येक म्यूनिस्पैलटी तथा बड़े पंचायत क्षेत्र में उन मध्यम श्रेणी के लोगों के लिए गृह-निर्माण समितियाँ स्थापित करने का निश्चय किया है जो लोग भूमि का मूल्य तथा इमारत की लागत का २० प्रतिशत तुरन्त जमा कर सकते हों और शेष रुपया २० वर्षों में मासिक किश्तों में चुका सकते हों।

प्रान्त में चार प्रकार की सहकारी गृह-निर्माण समितियाँ स्थापित की जा रही हैं।

(१) सहकारी गृह समितियाँ—गृह समितियाँ एक प्रकार से मकान बनाने के लिए ऋण देने वाली समितियाँ होती हैं। प्रत्येक सदस्य को समिति सरकार से ऋण लेकर २० वर्ष के लिए ऋण दे देती है जो सदस्य २० वर्षों में चुकाता है। ऋण सदस्य की जमीन तथा मकान की जमानत पर होता है। मकान सदस्य स्वयं बनवाता है और वह उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति होती है। समिति मकानों के लिए भूमि प्राप्त करती है और उसके प्लाट बनाकर सदस्यों को दे देती हैं तथा इमारती सामान को भी खरीदकर सदस्यों को बेंचती हैं। प्रान्त में अधिकांश समितियां इसी प्रकार की हैं।

(२) दूसरे प्रकार की समितियाँ भी व्यक्तिगत स्वामित्व के आधार पर ही स्थापित हैं। वे भी भूमि को प्राप्त करके उसके प्लाट बनाती हैं और सदस्यों को ऋण देती हैं। परन्तु पहले प्रकार की समिति से इनमें यह भेद है कि वे सदस्य के लिए मकान स्वयं बनवा कर देती हैं। सदस्य व्यक्तिगत रूप से स्वयं मकान नहीं बनवाता। इससे दो बड़े लाभ होते हैं एक तो यह है कि समिति इमारती सामान किफायत से प्राप्त कर लेती है दूसरे समिति कुशल ओवरसियर अथवा इंजिनियर की देख भाल में मकान बनवाती है।

(३) सहकारी गृह-निर्माण समितियाँ:—यह समितियाँ भूमि प्राप्त करती हैं, उनपर मकान बनवाती हैं और उन्हें सदस्यों को उठा देती हैं। सदस्य मकान का किराया देता रहता है और २० वर्षों में जब मकान का मूल्य चुका देता है तो मकान सदस्य का हो जाता है। तब तक मकान समिति का रहता है।

(४) सहकारी नगर-निर्माण समितियाँ—जो नगर बहुत बड़े हैं और जहाँ मकानों की बहुत कमी है उनका विस्तार करने के

उद्देश्य से इस प्रकार की समितियाँ स्थापित की जाती हैं। समिति नगर के समीप भूमि को प्राप्त करती हैं तथा उसमें से स्कूल, खेल के मैदान पार्क। सड़कों, हास्पीटल इत्यादि के लिए भूमि निकाल कर प्लाट बना देती हैं जो सदस्यों को दे दिए जाते हैं। इस प्रकार की समितियों की विशेषता यह होती है कि सभी नागरिक सुविधाओं जैसे पानी, बिजली, नालियाँ, अस्पताल, सफाई स्कूल, तथा मनोरंजन की सुविधायें प्रदान करती हैं। इस प्रकार के उपनगरों म्यूनिस्पैलटी का सारा कार्य यह समिति ही करती है।

सरकार इन समितियों को ३॥ प्रतिशत पर ऋण देती है; जो २० वर्षों में लौटाना पड़ता है। सरकार उन्हें इंजिनियर इत्यादि की सेवायें मुफ्त देती है तथा इमारती सामान दिलाने के लिए समितियों को प्राथमिकता देती है।

१६४७ में पंच वर्षीय सहकारी गृह-निर्माण योजना प्रान्त में चलाई गई। अब तक लगभग १०० नई समितियाँ स्थापित हो चुकी हैं। और अडयार मैलापूर, और अयानावरम में गृह-निर्माण कार्य कर रही हैं।

ग्रामों में गृह-निर्माण—प्रान्तीय कमेटी ने गावों में भी मकान बनाने की योजना सरकार के सामने प्रस्तुत की थी। कमेटी का मत था कि २० वर्षों में ६२० करोड़ रुपए की लागत से गांवों में मकान बनाने का कार्य किया जावे। कमेटी की राय में ४२० करोड़ पर ६ प्रतिशत सूद किराये के रूप में मिलता रहेगा परन्तु शेष ५६० करोड़ रुपए सरकार को सहायता के रूप में साधारण सरकारी आय में से व्यय करने होंगे। इस योजना को कार्यान्वित करना सरकार की शक्ति के बाहर की बात थी अस्तु वहां सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रार ने २ करोड़ ६२ लाख रुपए की एक योजना सरकार के सामने रक्खी है।

इस योजना के अनुसार प्रत्येक ताल्लुका में एक अच्छी साख समिति को छांट लिया जायेगा जिसे अपने सदस्यों के लिए मकान

बनाने का काम सौंपा जावेगा। समिति सरकार की सहायता से अथवा खरीद कर भूमि प्राप्त करेगी। समिति भूमि की कीमत अपने पास से देगी। मकान बनाने की जो लागत होगी उसका पांचवाँ हिस्सा प्रत्येक सदस्य समिति में अपने हिस्से का मूल्य स्वरूप जमा करेगा। यदि कम से कम १२ सदस्य रुपया जमा कर देते हैं तब समिति सरकार से ३॥ प्रतिशत सूद पर ऋण ले लेगी। समिति रुपया सदस्यों को न देकर स्वयं मकान बनवावेगी और सदस्यों को इतने किराये पर देगी कि २० वर्षों में सूद सहित ऋण चुक जावे। समिति सदस्यों से ५॥ प्रतिशत सूद लेगी। जब सरकारी ऋण चुक जावेगा और समिति को भूमि की कीमत भी सदस्य से प्राप्त हो जावेगी तो समिति भूमि सहित मकान सदस्य को दे देगी। प्रत्येक मकान का लागत व्यय ३००० रु० कूता गया है। सरकार इंजिनियर इत्यादि की सेवायें मुफ्त देगी।

हरिजनों के लिए मकान बनाने की व्यवस्था

प्रान्तीय सरकार ने एक करोड़ रुपये की सहायता हरिजनों के लिए दी है। इस योजना के अन्तर्गत प्रत्येक ताल्लुका में एक हरिजन उपनिवेश २० मकानों का बनाया जावेगा। प्रान्त में २३० ताल्लुका हैं। प्रत्येक मकान का लागतव्यय १००० रु० होगा। प्रत्येक स्थान पर जहां यह उपनिवेश स्थापित होंगे, एक सरकारी समिति स्थापित की जावेगी। मकानों का आधा व्यय इस एक करोड़ हरिजन सहायता कोष में से दिया जावेगा और आधा रुपया सरकार सहकारी समिति को ऋण स्वरूप उचित सूद पर दे देगी। समितियां मकान बनवावेंगी और यह आधा रुपया जो ऋण स्वरूप लिया है २० वर्षों में सदस्यों से किश्तों में वसूल करके सरकार को लौटा देंगी।

बुनकरों की गृह-निर्माण समितियाँ—मदरास के गांवों में जहां बुनकर रहते हैं वहां उनके लिए बुनकर सहकारी समितियों ने गृह-निर्माण कार्य अपने हाथ में लिया है। यह कार्य सर्वप्रथम

समिगानूर बुनकर सहकारी समिति ने अपने हाथ में लिया। यह समिति प्रान्त में बुनकरों की सबसे बड़ी समिति है और उसकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी है। इस समिति ने अपने सदस्यों के लिए मकानों की व्यवस्था की है। ५४ एकड़ भूमि प्राप्त करके वह १०० अच्छे मकान बनवा रही है। यह भूमि समिति ने ३८. ६५४ रु० में मोल ली है। इस योजना में एक हाथकर्घा फैक्टरी, रंगसाजी का मकान, अतिथि गृह समिति का कार्यालय, पुस्तकालय और वाचनालय बनाने की भी योजना है। प्रत्येक मकान के साथ एक वाटिका होगी जिसमें सब्जी इत्यादि उत्पन्न हो सकेगी। सरकार ने इस समिति को एक लाख रुपए दिए हैं और शेष समिति अपने रक्षित कोष में से लेगी।

इस योजना से प्रोत्साहित होकर प्रान्त की अन्य बुनकर सहकारी समितियां ने भी इस ओर प्रयत्न किया है। सेलम जिले में धरमपुरी तथा तिरुयेनगोदे में, कुरनूल जिले में पेदाकांडुला में, अनन्तपुर जिले में उरावाकोंडा, तथा उत्तरयी आरकट जिले में गुदीयाताम और किलकोदुन गालूर में बुनकर समितियों की गृह निर्माण योजना को सरकार ने स्वकृति प्रदान करदी हैं। इनके अतिरिक्त ७२ अन्य बुनकर समितियों ने भी गृह निर्माण योजना बनाकर सरकार के सामने उपस्थित की है।

औद्योगिक मजदूरों के लिए गृहनिर्माण समिति—हावेर श्रमजीवी सहकारी उपनिवेश इस बात का प्रमाण हैं कि सहकारी समिति के द्वारा श्रमजीवियों के लिए मकानों की समस्या हल की जा सकती है। मदूरा में हावेरी मिल ने इस समिति की अपने श्रमजीवियों के लिए स्थापना की। मिल ने हावेरपट्टी में लगभग ६८ एकड़ जमीन लेकर मकान बनवा दिए। प्रत्येक मकान की लागत ६००रु० रक्खी गई है। मिल ने उन मजदूरों की एक सहकारी समिति बना दी जो कि मकान मोल लेना चाहते हैं। मिल फ्लेश टट्टियाँ, कुयें, बिजली, स्कूल अस्पताल, बाजार, तथा

नालियाँ इत्यादि अपने व्यय से बनवाई हैं । प्रत्येक सदस्य को १२½ वर्ष तक प्रति माह ४ रु के हिसाब से देना पड़ता है । उसके बाद मकान उसका हो जाता है । परन्तु एक शर्त रहती है कि सदस्य मकान को बिना समिति की राय लिए बेंच नहीं सकता ।

मदरास प्रान्तीय कमेटी ने औद्योगिक केन्द्रों में श्रमजीवियों के लिए मकान बनाने की भी एक योजना उपस्थित की है । उसके अनुसार ७५ करोड़ रुपए की लागत से २½ लाख मकान बनाये जाने की व्यवस्था होगी प्रत्येक मकान की लागत ३००० रु० होगी । योजना के अनुसार मजदूरों को अपने वेतन का १० प्रतिशत देना होगा । इस प्रकार मजदूरों से ४१ करोड़ प्राप्त होगा । शेष ३४ करोड़ प्रान्तीय सरकार, केन्द्रीय सरकार तथा मिल मालिक बराबर बराबर दें ।

भारत के विभाजन हो जाने के फल स्वरूप पंजाब और सिंध से से जो शरणार्थी आये उनकी मकान की समस्या को हल करने के लिए सरकार ने आर्थिक सहायता देकर उनके लिए उपनगर बनाने की व्यवस्था की है । यह सारे उपनगर सहकारी गृहनिर्माण समितियों के द्वारा ही बनवाये जारहे हैं । इधर युद्ध काल में तथा उसके बाद बड़े तथा छोटे नगरों में भी मकानों की समस्या ने भंयकर रुप धारण कर लिया है । मध्यमवर्ग के लिए मकान बना सकना असंभव हो रहा है । ऐसी दशा में भविष्य में मकानों की समस्या का एकमात्र हल सहकारी गृह निर्माण समितियों की स्थापना है ।

कुछ समय हुआ भारत सरकार ने १० वर्षों में दस लाख मकान औद्योगिक केन्द्रों में मिल मजदूरों के लिए बनवाये जाने की घोषणा की है । यह मकान एक केन्द्रीय हाउसिंग बोर्ड की देख-रेख में बनेंगे । इस योजना के कार्यान्वित होने पर गृह निर्माण समितियों की तेजी से स्थापना होगी ।

सहकारी बीमा समितियाँ

अन्य देशों में मनुष्यों तथा पशुओं का जीवन-बीमा कराने के

लिये भी सहकारी बीमा समितियाँ स्थापित की गई हैं। भारतवर्ष में पशुओं का जीवन-बीमा करनेवाली समितियों की आवश्यकता है; क्योंकि इस देश की अधिकांश जनता खेती करती है। गरीब किसान की अगर कोई कीमती चीज होती है तो वह गाय, बैल, तथा भैंस ही है। पशुओं की बीमारियाँ इस देश में इतनी अधिक है कि उनके कारण प्रति वर्ष लाखों पशुओं की मृत्यु हो जाती है। गरीब किसान को कर्ज लेकर बैल खरीदने पड़ते हैं, इस कारण पशु-बीमा समितियाँ किसान को इस जोखिम से बचाने के लिये जरूरी हैं। पंजाबमें कुछ पशु-बीमा समितियाँ स्थापित की गईं, किन्तु उनको अधिक सफलता नहीं मिली। कारण यह है जब तक पशुओं की मृत्यु-संबन्धी आँकड़े ठीक-ठीक आंकड़े मालूम न हो तब तक यह हिसाब नहीं लगाया जा सकता कि अमुक उम्र के पशुओं का बीमा करने में कितनी जोखिम उठानी पड़ेगी। हाँ, सहकारी बीमा समितियाँ मनुष्यों को जीवन-बीमा बिना किसी कठिनाई के कर सकती और अन्य बीमा कम्पनियों की प्रतिस्पर्द्धा में सफल भी हो सकती है, क्योंकि सहकारी ढंग से काम अधिक मितव्ययिता-पूर्वक किया जा सकता है। भारतवर्ष में ८ सहकारी जीवन-बीमा समितियाँ इस समय काम कर रही है। इनमें मद्रास, बम्बई, बड़ौदा, और हैदराबाद की जीवन-बीमा सहकारी समितियाँ अधिक सफल हुई हैं। बंगाल की समिति को अधिक सफलता नहीं मिली।

मद्रासः—मद्रास प्रान्त में ४ बीमा कंपनियां इस समय काम कर रही हैं। (१) दक्षिण भारत सहकारी बीमा समिति लगभग १८ वर्षों से काम कर रही है। प्रतिवर्ष एक करोड़ रुपए के लगभग की जीवन बीमा पालिसियां समिति निकालती है। अधिकतर यह समिति मद्रास प्रान्त में ही जीवन बीमें का काम करती है। परन्तु अब उसने लखनऊ में एक शाखा खोलकर उत्तर प्रदेश में भी काम करना आरम्भ कर दिया है।

पोस्टल बीमा कंपनी:—यह सहकारी बीमा समिति केवल पोस्ट आफिस विभाग के कर्मचारियों का जीवन बीमा करती है।

सहकारी अग्नि तथा जनरल बीमा समिति:—यह अग्नि फायडैलटी गारंटी, तथा मोटर बीमा करती है। प्रतिवर्ष एक करोड़ रुपये से कुछ कम की पालिसियां निकालती है।

मदरास सहकारी मोटर बीमा समिति—यह केवल मोटर कार का बीमा करती है।

अखिल भारतीय सहकारी बीमा समितियों की एसोसियेशन:—१९४५ में सहकारी बीमा समितियों का एक अखिल भारतीय संगठन खड़ा किया गया है। इस एसोशियेशन का मुख्य कार्य उनकी सहकारी बीमा समितियों का अध्ययन करना उनको सलाह देना तथा समस्याओं को सरकार के सामने हल करवाना है।

उदाहरण के लिए कानून द्वारा साधारण बीमा कंपनियों को एक हजार रुपये से कम की पालिसी देना वर्जित है परन्तु ऐसोशियेसन के प्रयत्न के फल स्वरुप सहकारी बीमा समितियों को एक हज़ार से कम की पालिसी निकालने का अधिकार दिया गया है।

ऐसोशियेसन का यह भी प्रयत्न है कि सरकार सहकारी बीमा समितियों के रुपये पर मिलने वाले सूद पर आय कर न ले। इसके अतिरिक्त ऐसोशियेसन की सरकार से यह भी मांग है कि मजदूरी अदायगी कानून में इस प्रकार का संशोधन कर दिया जावे कि मजदूरों की तनखाह से उनके बीमे का प्रीमियम काटा जासके। इससे बीमा समितियों को यह सुविधा होगी कि जो मजदूर बीमा करवावेगा उसके वेतन में से वे प्रीमियम कटवा सकेंगी।

फसल और पशु बीमा समिति

केन्द्रीय सरकार ने श्री जी० यस० प्रियाल्कर को पशु और फसल

बीमा के सम्बन्ध में एक योजना बनाने के लिए नियुक्त किया था। उनकी रिपोर्ट का सारांश नीचे लिखा है:—

(क) फसलों को सभी प्रकार की हानिके विरुद्ध जिनको रोकना किसान के वश में नहीं है बीमा करना चाहिए। प्रत्येक फसल का एक लम्बे समय का औसत लिया जाय और जब फसल उससे कम हो तो जितना कम हो तो उसका दो तिहाई क्षति पूर्ति करदी जाय।

(२) इसी प्रकार पशुओं की छूत के रोगों से मृत्यु का बीमा भी होना आवश्यक है।

इस रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही लोगों को ध्यान इस आवश्यक बीमा कार्य की ओर गया है और पहले एक समिति क्षेत्र में इस प्रकार के बीमा की व्यवस्था करके इस सम्बन्ध में अनुभव प्राप्त करने का प्रस्ताव है। भारत सरकारने अभी तक इस सम्बन्ध में कोई घोषणा नहीं की है। भारत में फसल तथा पशु बीमा की आवश्यकता है इसमें तनिक भी संदेह नहीं।

भारत जैसे गरीब देश में सहकारी बीमा समितियों की बहुत आवश्यकता है, क्योंकि वे कम खर्चीली होती हैं। भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में फसलों का बीमा करनेवाली सहकारी समितियों की भी बहुत आवश्यकता है।

अठारहवाँ परिच्छेद

अन्य सहकारी समितियाँ

पिछले परिच्छेदों में कई प्रकार की सहकारी समितियों के बारे में ब्योरेवार लिखा जा चुका हैं। उनके और भी बहुत से भेद हैं। हम शेष भेदों में से कुछ मुख्य-मुख्य का इस परिच्छेद में विचार करेंगे। मूल सिद्धान्त सब के एकसे ही है, वे पहले बताये जा चुके है।

शिक्षा सहकारी समितियाँ—भारतवर्ष में, शहरों तथा बड़े २ कस्बों में सरकार, म्यूनिसपेल्टी, जिला-बोर्ड तथा अन्य गैर-सरकारी संस्थाओं ने शिक्षा का कुछ प्रबन्ध किया है, जिससे वहाँ के रहनेवालों को अपने बालक पढ़ाने में अधिक अड़चन नहीं होती। परन्तु भारतीय ग्रामों की ओर से तो मानों सब ही उदासीन हैं। जब तक गाँवों में शिक्षा का प्रचार नहीं कर दिया जाता तब तक गाँवों का सुधार होना कठिन है। सहकारिता के द्वारा गाँवों में शिक्षा-प्रचार किया जा सकता है। क्या ही अच्छा हो, यदि सरकार समितियों को आर्थिक सहायता देकर ग्रामीण शिक्षा का कार्य उनको सौंपदे। इन समितियों की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि शिक्षक उत्साही हों। देश में इस समय शिक्षित नवयुवकों में भीषण बेकारी फैली हुई है, यदि उन्हें गाँवों में शिक्षा-कार्य करने की शिक्षा दी जावे तो बहुत सफलता मिल सकती है।

पञ्जाब—पञ्जाब में दो प्रकार की समितियाँ हैं—एक, प्रौढ़ों के लिये; दूसरी बच्चों के लिये। प्रौढ़ों की शिक्षा देनेवाली समितियों के सदस्यों को प्रति, मास फ़ीस देनी पड़ती है, निर्धनों से फ़ीस नहीं ली

जाती, सदस्यों को स्कूल में नियमित रूप से हाजरी देनी पड़ती है। जो मास्टर बालकों के स्कूल का शिक्षक होता है, उसी को कुछ मासिक वेतन देकर रख लिया जाता है। इस प्रकार के स्कूलों को पीछे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ले लेता है। पञ्जाब में प्रौढ़ों को शिक्षा देनेवाली लगभग १०० समितियाँ हैं।

बालकों को अनिवार्य शिक्षा देनेवाली समितियों के सदस्य बालकों के माता पिता होते हैं। माता पिता को अपने बालकों को स्कूल में भेजने की प्रतिज्ञा करनी होती है, और प्रतिमास कुछ फ़ीस देनी पड़ती है, जिससे शिक्षक का वेतन दिया जाता है। इस समय पञ्जाब में डेढ़ सौ के लगभग समितियां शिक्षा देने का कार्य कर रही हैं।

उत्तरप्रदेश—उत्तरप्रदेश में पञ्जाब की ही भांति प्रौढ़ों को शिक्षा देनेवाली समितियां स्थापित की गई हैं। इन समितियों की संख्या तीस के लगभग है, जिनमें तीन स्त्रियों के लिये हैं। संयुक्तप्रान्त में इन स्कूलों का उपयोग प्रचार-कार्य के लिये खूब हो रहा है। कृषि, स्वास्थ्य तथा शिक्षा विभाग के कर्मचारी इन स्कूलों में गांव वालों को उपयोगी बातें बतलाते हैं। अब यह प्रयत्न किया जा रहा है कि शिक्षकों की पत्नियों को शिक्षा देकर उन्हें स्त्रियों की शिक्षा का कार्य सौंपा जावे।

बिहार-उड़ीसा—बिहार-उड़ीसा में साख समितियों ने गांवों में पाठशालाएँ स्थापित करके शिक्षा को खूब प्रोत्साहन दिया है। प्रति वर्ष यथेष्ट संख्या में पाठशालाएँ स्थापित की जाती हैं। सेन्ट्रल बैङ्क भी इन पाठशालाओं को प्रति वर्ष यथेष्ट आर्थिक सहायता देते है। कुछ बैङ्क पाठशाला की इमारत के लिये भी आर्थिक सहायता देते है। दो स्थानों में समितियों के सदस्यों ने पाठशाला के लिये भूमि दान दे दी है।

बङ्गाल—बङ्गाल में बहुत सी समितियाँ गांव की शिक्षा का आयोजन करती हैं, और रात्रि-पाठशालाएँ भी चलाती हैं। बंगाल

में गाँजा उत्पन्न करनेवालों की समिति, तथा कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की विश्व-भारती का कार्य विशेष उल्लेखनीय है।

बम्बई—बम्बई में समितियाँ पाठशालाओं को आर्थिक सहायता देती हैं। धारवार जिले में सहकारी शिक्षा समितियाँ भी स्थापित की गई हैं।

कश्मीर—कश्मीर में कुछ अनिवार्य सहकारी शिक्षा समितियाँ स्थापित की गई हैं, जिनके सदस्यों को अपने बालकों को अनिवार्य शिक्षा दिलाने की प्रतिज्ञा लेनी होती है। प्रौढ़ों के लिये भी समितियाँ स्थापित की जाती हैं। सहकारिता विभाग शिक्षा विभाग की सहायता से अधिकाधिक समितियाँ स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा है।

श्रमजीवी समितियाँ—सहकारी श्रमजीवी समितियों को सर्व-प्रथम स्थापित करने का श्रेय इटली को है। इनका उद्देश्य ठेकेदारों को हटाकर स्वयं ठेके लेकर अपने सदस्यों द्वारा काम करना है। आरम्भ में इन समितियों ने सड़कें बनाने, साधारण इमारतें तैयार करने तथा अन्य साधारण कार्यों के ठेके लिये; अब तो ये समितियाँ बड़े से बड़े कार्य करती हैं; यहाँ तक कि रेलवे लाइन ढालने, तथा खानों को खोदने का काम भी करने लगी हैं। यह आन्दोलन १८८० में प्रारम्भ हुआ, और १६०० से उन्नति करने लगा। पिछले योरोपीय महायुद्ध के उपरान्त यह तीव्र गति से बढ़ने लगा। राज्य ने इन समितियों को खूब अपनाया, इन समितियों को आर्थिक सहायता दी, तथा सहकारी संस्थाओं, म्यूनिसपेलटियों तथा अन्य संस्थाओं का सारा कार्य इन्हीं समितियों को दिया।

भारतवर्ष में बम्बई तथा मदरास प्रान्तों में इस प्रकार की समितियाँ स्थापित की गई हैं। बम्बई में दो समितियाँ इस समय कार्य कर रहीं हैं। बेलगाँव जिले में हुकेरी श्रमजीवी समिति अछूतों के लिये स्थापित की गई है। यह समिति सदस्यों को कुछ रुपया पेशगी दे देती है और बाद में मजदूरी में से काट लेती हैं। यह समिति ठेके लेत

है। दूसरी समिति भड़ौंच में इमारतें बनानेवाले मजदूरों की है। बम्बई में दो समितियाँ और भी स्थापित की गई। किन्तु वे सफल नहीं हुई।

मद्रास प्रान्त में ६० से ऊपर श्रमजीवी समितियाँ हैं। ये समितियाँ सड़क बनाने, लकड़ी काटने, गाड़ी से माल ढोने तथा मिट्टी खोदने का काम करती हैं। मद्रास प्रान्त के रजिस्ट्रार ने वार्षिक रिपोर्ट में इन समितियों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि सरकारी विभाग, जिला बोर्ड, तथा म्यूनिसपेलटी इन समितियों को प्रोत्साहन नहीं देते, इस कारण ये समितियाँ ठेकेदारों की प्रतिस्पर्द्धा में खड़ी नहीं हो सकतीं।

त्रावंकोर राज्य में राज्य के प्रोत्साहन तथा सहानुभूति के कारण श्रमजीवी समितियाँ सफलतापूर्वक काय कर रही हैं।

यदि प्रान्तीय सरकार, जिला बोर्ड और म्यूनिसपेलटियाँ श्रमजीवी समितियों को प्रोत्साहन देने की नीति स्वीकार करलें, तो यह आन्दोलन सफलता-पूर्वक सब प्रांतों में चलाया जा सकता है। प्रान्तीय सरकार द्वारा आर्थिक सहायता मिलने पर ये समितियाँ ठेकेदारों को हटा कर ठेके ले सकती हैं और मजदूर वर्ग की आर्थिक उन्नति कर सकती हैं।

रहन-सहन सुधार समितियाँ—भारतीय ग्रामों में सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों में बहुत अपव्यय होता है. यद्यपि किसान निर्धन होता है, फिर भी जन्म, मरण, तथा विवाहोत्सव के समय पर जाति-बिरादरी को दावत देने में, तथा अन्य कार्यों में कर्ज लेकर व्यय कर देता है। इस अपव्यय को रोकने के लिये कुछ प्रान्तों में समितियां स्थापित की गई हैं। पंजाब में और संयुक्तप्रांत में इन समितियों ने प्रशंसनीय कार्य किया है। पंजाब के रजिस्ट्रार का कथन है कि जिन स्थानों पर ये समितियां स्थापित हो गई हैं, वहाँ के रहनेवालों को इनके द्वारा प्रति वर्ष हजारों रुपये की बचत होती है। जो मनुष्य

इन समितियों के सदस्य होते हैं, वे तो नियमानुसार इस प्रकार का अपव्यय कर ही नहीं सकते; साथ ही वे अन्य किसी मनुष्य के विवाहोत्सव में सम्मिलित नहीं हो सकते, जहाँ इस प्रकार का अपव्यय किया जावे। इस प्रकार समिति का प्रभाव गैर-सदस्यों पर भी पड़ता है। समिति विवाह तथा अन्य उत्सवों में कितना व्यय होना चाहिए, यह निश्चित करती है; और जो सदस्य नियमानुसार कार्य नहीं करता उस पर जुर्माना करती है। ये समितियाँ गाँवों की सफाई का कार्य करती हैं; गलियों को साफ़ तथा एकसा करवाती हैं। कुछ समितियाँ गांव वालों को हवा का महत्व बतलाकर मकानों में खिड़की बनवाती हैं। ये समितियाँ जेवर बनवाने का भी विरोध करती हैं, क्योंकि आर्थिक दृष्टि से तो यह हानिकारक है ही; साथ ही, इससे चोरों का भी भय रहता है। ये समितियाँ सदस्यों को बाध्य करती हैं कि खाद गड्ढों में डालें; जिससे कि गाँव गन्दा न हो और खाद उत्तम हो। पंजाब में एक समिति ऐसी है, जिसके सदस्यों ने कंडे न बनाने और सारे गोबर की खाद बनाकर खेतों में डालने का निश्चय किया है। सब समितियों की संख्या पंजाब प्रान्त में लगभग ३०० है। ये समितियाँ इस बात का प्रयत्न करती हैं कि अपव्यय कम हो। कश्मीर राज्य में सहकारी साख समितियों ने यह निमम बना लिया है कि यदि कोई सदस्य सामाजिक कार्यों पर अधिक व्यय करे तो उस पर जुर्माना किया जावे।

पिछले वर्षों में उत्तरप्रदेश में ये समितियाँ हजारों की संख्या में स्थापित की गई है। अधिकांश समितियाँ प्रान्त के पूर्वी भाग में हैं। सब समितियाँ ग्राम-सुधार विभाग की देखरेख में सड़कों की मरम्मत करती हैं, कुएँ खोदती हैं, तालाब साफ रखती हैं, औषधालय चलाती हैं, गाँव की सफाई करती हैं, स्कूल खोलती हैं, सामाजिक कृत्यों पर फिजूलखर्ची रोकती हैं, उन्हें बीज और खाद देती हैं, वैज्ञानिक ढंग की खेती का प्रचार करती हैं और पशुओं की नस्ल का सुधार करती हैं। संक्षेप में ये ग्राम-सुधार सम्बन्धी सभी कार्य करती है।

उत्तरप्रदेश में ५५०० जीवन-सुधार समितियाँ हैं। वे पहले ग्राम-सुधार विभाग की देखरेख में काम करती थीं। कांग्रेस सरकार इन समितियों को बहु-उद्देश्य समितियों की प्रारम्भिक समितियाँ बनाना चाहती थी। किन्तु युद्ध-काल में ये समितियाँ शिथिल हो गईं। अब ये समितियाँ सहकारी विभाग के अन्तर्गत हैं और गांवों के सुधार का काम कर रही हैं।

इन जीवन सुधार समितियों के कार्यों को हम चार श्रेणियों में बाँट सकते हैं (१) कृषि की उन्नति (२) सफाई तथा स्वास्थ्य रक्षा, (३) सामाजिक तथा धार्मिक कृत्यों पर फिजूल खर्ची को कम करना (४) शिक्षा सम्बन्धी कार्य।

समितियाँ खेती की उन्नति के सभी उपाय करती हैं गेहूँ, गन्ना, तथा अन्य फ़सलों के उत्तम बीजों को किसानों को बाँटती हैं, सुधरे हुए खेती के औजारों का प्रचार करती हैं, रोलर कोल्हू को किराये पर देती है अथवा उनको किसानों को बेंचती हैं तथा गड्ढों में खाद बनाने तथा व्यापारिक फसलों को रसायनिक खाद देने के लिए किसान को प्रोत्साहन देती हैं।

सफाई और स्वास्थ्य रक्षा के लिए समितियाँ ऊँची मन वाले कुयें बनवाती हैं। जिन कुओं की मन नहीं होती है उनके चारों ओर ऊँची मन बनवाती हैं, कुओं की सफाई करती हैं, गाँवों में दवाइयों के बक्स रखती हैं, दाइयों की शिक्षा का प्रबंध करती हैं, तथा खाद को गड्ढों में बनाने का कार्य करती हैं, चेचक तथा अन्य छूत की बीमारियों के टीके लगवाना तथा रोगों से बचने के उपायों का प्रचार करना भी इन समितियों का मुख्य कार्य है।

इनके अतिरिक्त समितियाँ स्कूल चलाती हैं तथा सामाजिक और धार्मिक कृत्यों पर फिजूल खर्ची को रोकती हैं।

इस सम्बन्ध में यह जानने योग्य बात है कि इन समितियों के प्रयत्न से उत्तर प्रदेश में उत्तम गेहूँ तथा गन्ने के बीज का बहुत

प्रचार हुआ है और कई लाख एकड़ भूमि पर उत्तम बीज बोये जाते हैं। प्रतिवर्ष ३० हजार के लगभग मेस्टन हल किसान लेते हैं तथा सुधरे हुए कोल्हुओं का प्रचार तेजी से बढ़ रहा है। इन समितियों ने सैकड़ों गांवों में औषधि वितरण का प्रबन्ध किया है प्रतिवर्ष दो हजार दाइयों को उनके कार्य की शिक्षा दी जाती है तथा नये कुओं को बनाने का कार्य होता है। यह समितियाँ लगभग २ हजार औषधालय चला रही हैं।

इतना कहते हुए भी यह कहना होगा कि कार्य अधिक संतोष-जनक नहीं हुआ। सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों पर फिजूल खर्ची पर अभी कोई प्रभाव नहीं पड़ा है और न शिक्षा तथा सफाई का कार्य ही संतोष जनक हो पाया है।

बंगाल में भी इन समितियों की स्थापना हुई है। पंजाब में तो इन समितियों का ग्राम-सुधार के लिए खूब प्रयोग किया जा रहा है। वहाँ मुकदमा तय करनेवाली उपयोगी समितियों को भी जन्म दिया गया है। हमारे देश में मुकदमेबाजी का रोग बहुत बुरी तरह से फैला हुआ है। प्रत्येक गाँव, वर्ष भर में हजारों रुपये वकीलों और अदालत की भेंट कर देता है। घर में भोजन नहीं है, तो भी हमारे मूर्ख किंतु निर्धन किसान भाई कर्ज लेकर, पशुधन बेचकर, मुकदमे लड़ते हैं। इस भयंकर अपव्यय को रोकने के लिये पंजाब में लगभग ५० सहकारी समितियाँ स्थापित की गई हैं। यदि समिति की पंचायत सदस्यों के मुकदमों में समझौता नहीं करा पाती तो पंच नियुक्त कर दिये जाते हैं और वे फैसला करते हैं। पंचों का फैसला अदालत को मान्य होता है। किन्तु ऐसे बहुत कम अवसर आते हैं, जब समिति को फैसला अदालत के द्वारा मनवाना पड़े। सदस्य स्वयं फैसले को मान लेते हैं। संयुक्तप्रान्त में पंचायतें स्थापित की गई हैं, जो मुकदमों का फैसला करती हैं।

मितव्ययिता सहकारी समितियाँ—भारतवर्ष में नौकरी-पेशा

लोगों तथा मज़दूरों में मितव्ययिता के भाव जाग्रत करने की अत्यन्त आवश्यकता है, क्योंकि यहाँ सामाजिक तथा धार्मिक कृत्यों में मनुष्य को अत्यधिक व्यय करता है। ग्राम-निवासी को कुछ-न-कुछ अवश्य बचाना चाहिये; नहीं तो उसे बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। मितव्ययिता सहकारी समितियाँ अपने सदस्यों से प्रतिमास उनके वेतन में से कुछ लेकर जमा करती हैं तथा उस रुपये को किसी लाभ-दायक कार्य में लगाकर अपने सदस्यों के लिये सूद प्राप्त करती हैं। दो-चार वर्षों के उपरान्त वह रुपया सूद सहित वापिस कर दिया जाता है। प्रायः ये समितियाँ कर्ज नहीं देतीं; हाँ; कुछ समितियाँ जितना रुपया जमा हो जाता है, उसका ६० फ़ी सदी कर्ज देती हैं। यदि समिति जमा किये हुए से अधिक कर्ज दे दे तो वह मितव्ययिता समिति नहीं रह जाती, वह साख समिति हो जाती है।

पंजाब में लगभग १००० मितव्ययिता समितियाँ हैं, जिनमें लगभग आठ लाख रुपये जमा हैं। इन समितियों में अधिकार अध्या-पक ही सदस्य होते हैं। किन्तु कुछ वकील, पुलिसमेन, रेलवे कर्मचारी तथा दूकानदार भी इन समितियों के सदस्य हैं। पंजाब में सवा सौ समितियाँ केवल स्त्रियों की हैं, जिन्होंने एक लाख रुपये जमा कर लिये हैं। इस प्रान्त में स्कूलों के विद्यार्थी के लिये भी मितव्ययिता समितियाँ स्थापित की गई हैं। एक स्कूल की समिति ने एक नई योजना निकाली है। विद्यार्थियों से जंगलों की कुछ चीजों को इकट्ठा करने के लिए कहा जाता है; जब वे चीजें अधिक राशि में इकट्ठी हो जाती है तो बेच दी जाती है और विद्यार्थियों के नाम उनका रुपया जमा कर लिया जाता है।

मदरास में ऐसी लगभग सवा सौ समितियाँ है; संयुक्तप्रान्त, अजमेर-मेरवाड़ा; और बम्बई में भी थोड़ी सी समितियाँ मजदूरों में सफलता-पूर्वक कार्य कर रही हैं। यह समितियाँ अपने सदस्यों को

'होमसेफ' (छोटी तिजोरी) देकर कुछ रुपया बचाने की आदत डाल सकती हैं। बम्बई, बिहार तथा संयुक्तप्रान्त में कुछ समितियों ने ऐसा किया भी हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि मितव्ययिता का प्रचार किया जावे तो यथेष्ट रुपया जमा किया जा सकता है।

बङ्गाल तथा बिहार में सहकारी साख समितियों ने मुठिया पद्धति चलाई है। प्रति दिन प्रत्येक सदस्य से मुट्ठी भर चावल अथवा और कोई अनाज लिया जाता है और उसको बेचकर सदस्यों के नाम रुपया जमा कर दिया जाता है। सन् १६२६ में बंगाल के एक जिले में सहकारी साख समितियों ने मुठियों द्वारा प्राप्त अन्न ८३,००० रु० का बेचा, गांवों में मितव्ययिता का प्रचार करने का यह ढङ्ग अच्छा है।

अन्न-गोला—किसान को, निर्धन होने के कारण, अपना अनाज फसल कटते ही बेच देना पड़ता है, उस समय बाजार में भाव गिरा रहता हैं। इसका फल यह होता है कि किसान के पास इतना अनाज नहीं रहता कि वह अपने कुटुम्ब का वर्ष भर भरण-पोषण कर सके। उसे महाजनों से ड्योढ़े पर अनाज उधार लेना पड़ता हैं। अन्न-गोला किसान को उस समय जब कि भाव गिरा होता है, अनाज नहीं बेचने देता, वह किसान को अनाज उधार देता है। यह यथेष्ट अनाज जमा कर लेता है, जिससे उसका उपभोग अकाल के समय हो सके।

गोला अपरिमित दायित्व वाली संस्था होती है। साधारण सभा को सब अधिकार होते हैं; प्रबन्धकारिणी सभा रोजमर्रा के काम की देखभाल करती है। गोले की पूंजी अनाज की डिपाजिट, अनाज के दान तथा अनाज के ऋण से इकट्ठी होती है, सदस्य केवल प्रवेश-फीस अनाज में नहीं देते। समिति अधिक से अधिक कितना अनाज डिपाजिट के रूप में ले सकती है, तथा कितना उधार ले सकती है।

इसका निश्चय साधारण सभा करती है। प्रत्येक सदस्य गोले को अनाज की, सभा द्वारा निर्धारित राशि देता है, जो उसे कुछ वर्षों में सूद सहित वापिस दे दी जाती है। गोला सदस्यों को ही अनाज उधार देता है; अनाज बीज के लिये, कुटुम्ब पालन के लिये तथा अधिक सूद पर लिये हुए अनाज को वापिस देने के लिये दिया जाता है सूद २५ फी सदी लिया जाता है। अनाज के गोले बिहार-उड़ीसा, पंजाब, मैसूर तथा कुर्ग में पाये जाते हैं।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

निरीक्षण, प्रचार और शिक्षा

भारतवर्ष में सहकारिता आन्दोलन को सरकार ने चलाया, जनता ने नहीं। बात यह है कि भारतीय जनता विशेषकर किसान अशिक्षित तथा कर्जदारी के बोझ से ऐसा दबा हुआ है कि उसको अपने आर्थिक सुधार की आशा ही नहीं रही आत्मनिर्भरता तथा स्वावलम्बन के भाव ग्रामीण जनता से लुप्त हो चुके थे, इस कारण राज्य को ही इस आन्दोलन का श्री गणेश करना पड़ा।

रजिस्ट्रार का कार्य-भार; क्रमशः हलका होना— ऐसी दशा में यह स्वाभाविक ही था कि सरकारी अधिकारी रजिस्ट्रार ही इस आन्दोलन का सर्वेसर्वा हो जावे। आरम्भ में रजिस्ट्रार को आंदोलन चलाने के लिए प्रचार कार्य समितियों का संगठन, उनकी देख-भाल, निरीक्षण, आय-व्यय निरीक्षण, सहकारिता आंदोलन से संबंध रखनेवाले सहित्य का अध्ययन, जनता में आंदोलन के विषय में रुचि उत्पन्न करना, अपने अधीन कर्मचारियों का शिक्षण तथा अन्य प्रान्तों में आंदोलन की गति-विधि का अध्ययन करने का कार्य और आंदोलन तथा समितियों के लिए पूँजी जुटाने का काम भी करना पड़ता था। यदि समिति तथा उसके सदस्यों में कोई झगड़ा होता तो उसका फैसला रजिस्ट्रार ही करता; समिति की दशा खराब हो जाने पर वही उसको तोड़ता तथा उसका 'लिकीडेटर' (हिसाब निपटानेवाला) बनता था।

जैसे-जैसे आंदोलन बढ़ता गया इस बात का अनुभव होने लगा कि रजिस्ट्रार इतने कार्यों को भली भाँति नहीं कर सकता, उसके

बोझ को कुछ हलका कर दिया जावे, तथा आन्दोलन को क्रमशः जनता के हाथ में दिया जावे। अस्तु, सेन्ट्रल बैङ्क तथा प्रान्तीय बैङ्कों के स्थापित होते ही पूँजी जुटाने का कार्य रजिस्ट्रार के हाथ से निकल गया।

सहकारिता आन्दोलन जनता का आन्दोलन है, और इस आन्दोलन को बाहरी सहायता पर निर्भर न रह कर स्वावलम्बी होना चाहिए। समितियों को डिपाजिट आकर्षित करके कार्यशीलपूँजी इकट्ठी करनी चाहिए। प्रबन्धकारिणी सभा को समिति की देखभाल करनी चाहिए। समितियों की सम्मिलित यूनियन को आय-व्यय निरीक्षण करना चाहिए और सहकारिता की शिक्षा देनी चाहिये। रहा प्रचार कार्य, उसके लिये सफलता पूर्वक कार्य करती हुई सहकारी समिति ही सर्वोत्तम साधन है। किन्तु भारतवर्ष में अशिक्षा, तथा रूढ़ियों में फंसे हुए भाग्यवादी ग्रामीण जन यह कार्य नहीं कर सकते थे। इसलिये यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि जो कार्य एक समिति नहीं कर सकती, वह यूनियन करे। इस उद्देश्य से भारतवर्ष में भिन्न-भिन्न कार्यों को करने के लिये यूनियन स्थापित की गई—गारन्टी यूनियन तथा सुपरवाइजिंग यूनियन।

गारन्टी यूनियन—यद्यपि गारन्टी यूनियन अपने से सम्बन्धित सहकारी साख समितियों की देखभाल भी करती थी, उनकामुख्य कार्य सेन्ट्रल बैङ्क को अपनी सहकारी समितियों को दिये हुए ऋण की गारंटी देना था। इसीलिये उनको गारन्टी यूनियन कहते थे। गारन्टी यूनियन का प्रयोग पहले बर्मा में किया गया था। पीछे इनका उपयोग अन्य प्रान्तों में भी किया गया, किन्तु वे नितान्त असफल हुई। अतएव वे तोड़ दी गई। फिर किसी भी प्रान्त या देशी राज्य ने उन्हें नहीं अपनाया। सच तो यह है कि अपरिमित दायित्व वाली साख-समितियों के लिये इस प्रकार की संस्था की आवश्यकता ही नहीं थी।

सुपरवाइजिंग यूनियन—सुपरवाइजिंग यूनियन निम्न-लिखित कार्य करती हैं—ग्रामीण सहकारी समितियों की देखभाल करना, उनको उन्नति का मार्ग दिखलाना, अपने क्षेत्र में नई सहकारी समितियों का संगठन करना, तथा उनकी उन्नति करना, सम्बंधित समितियों की पूँजी की आवश्यकता का पता लगाना, उनके सदस्यों की हैसियत का लेखा तैयार करके समिति की साख निर्धारित करना, समितियों को उनके प्रबन्ध तथा कार्यसंचालन के विषय में उचित परामर्श देना, समिति के सदस्यों तथा उनके पंचायतदारों को सहकारिता की शिक्षा देने का प्रबन्ध करना, समितियों को आवश्यकता होने पर क्रय-विक्रय कार्य में सहायता देना, तथा समिति और सेन्ट्रल बैङ्क के बीच में सम्बन्ध स्थापित करना।

सुपरवाइजिंग यूनियन से सम्बन्धित समितियाँ अपने प्रतिनिधि यूनियन की साधारण सभा में भेजती हैं। साधारण सभा एक कार्य-कारिणी समिति का निर्वाचन करती है, इस समिति में उस क्षेत्र के सेन्ट्रल बैंक का भी एक प्रतिनिधि रहता है। यह समिति सारा प्रबन्ध करती है, और सहकारी समितियों की देखभाल के लिये एक सुपरवाइज़र नियुक्त करती है। प्रत्येक समिति अपनी कार्य-शील पूँजी के अनुपात में यूनियन को चन्दा देती है। सेन्ट्रल बैङ्क भी यूनियन को आर्थिक सहायता देते हैं। इन यूनियनों को चलाने में कुछ व्यय अवश्य होता है, किन्तु ग्रामीण सहकारी समितियों का संगठन करने तथा आन्दोलन को सफल बनाने के लिये यह आवश्यक है।

मदरास प्रान्त में २६४ यूनियन देखभाल कर रही हैं। एक यूनियन एक ताल्लुके से बड़े क्षेत्र में कार्य नहीं करती। उससे २० से ० समितियाँ तक सम्बन्धित रहती हैं। मदरास में यूनियनों ने जिला-संघ बना लिये थे। जिले में जितनी यूनियनें होती थीं, उनका एक संघ बनाया जाता था, जो यूनियन की देखभाल करता था। किन्तु जिला-संघ सब

तोड़ दिये गये और ये यूनियनें ही देखभाल का काम करती हैं। इनकी देखभाल सेन्ट्रल बैंक करते हैं।

बम्बई में मदरास की भाँति, देखभाल का काम सुपरवाइजिंग यूनियन करती हैं। वहाँ इन यूनियनों की देखभाल जिलाबोर्ड करते हैं। बोर्ड सुपरवाइजरों का नियन्त्रण करते हैं। उनमें सेन्ट्रल बैंक, सहकारिता विभाग, तथा सुपरवाईजिंग यूनियनों के प्रतिनिधि होते हैं। सिंध में भी सुपरवाइजिङ्ग यूनियन देखभाल का काम करती हैं, वहाँ सब यूनियनों के ऊपर प्रान्तीय सुपरविज़न बोर्ड है।

उड़ीसा में देखभाल का काम सुपरवाइजिङ्ग यूनियन ही करती हैं। किन्तु सुपरवाइजरों की नियुक्ति सेन्ट्रल बैङ्कों द्वारा होती है। बैङ्क ही उनका वेतन देता है। सुपरवाइजर इन यूनियनों द्वारा समितियों का देखभाल करता है। उत्तर उड़ीसा में सुपरवाइजिङ्ग यूनियन नहीं है वहाँ बैङ्क का सुपरवाइजर अकेला ही यह काम करता है।

पंजाब में देखभाल का काम प्रांतीय यूनियन द्वारा नियुक्त सुपरवाइजर और इन्स्पेक्टर करते है। समितियों से प्रांतीय समिति जो फीस लेती है और प्रांतीय सरकार प्रांतीय यूनियन को जो ग्रान्ट देती है, उनमें से ही देखभाल करनेवाले कर्मचारियों को रखा जाता है। संयुक्त प्रान्त में पंजाब की तरह ही प्रान्तीय यूनियन सुपरवाइजर नियुक्त करके प्रारम्भिक समितियों की देखभाल करती है।

मध्यप्रदेश में डिविज़नल सहकारी इन्स्टिट्यूट हैं. इनका केन्द्रीय बोर्ड सुपरवाइजरों द्वारा देखभाल और शिक्षा का काम करवाता है। इस इंस्टिट्यूट के केंद्रीय बोर्ड की अधीनता में प्रत्येक सेन्ट्रल बैङ्क एक स्थानीय सुपरविज़न और शिक्षा कमेटी संगठित करता है और यह कमेटी केंद्रीय बोर्ड द्वारा नियुक्त किये हुए सुपरवाइज़रों के काम का नियंत्रण करती है। सहकारिता विभाग का सर्कल-आडिटर भी इस कमेटी के काम में सहायता पहुँचाता है। बरार में बरार-सहकारी

इंस्टिट्यूट सुपरविजन कमेटियों की सहायता के लिये सुपरवाइजरों से अलहदा कुछ ग्रुप-अफसर नियुक्त करता है।

बंगाल में प्रत्येक सेन्ट्रल बैङ्क अपने से सम्बन्धित सहकारी समितियों के सुपरविजन (देखभाल) और इंस्पेकशन (निरीक्षण) के लिए कर्मचारी नियुक्त करता है जो उस सर्कल के सहकारिता-विभाग के अफसर की अधीनता में कार्य करता है।

आसाम में बंगाल का सा ही प्रबन्ध है, परन्तु वहाँ देखभाल का काम तो कुछ होता नहीं, सुपरवाइज़र समितियों के सदस्यों से केवल सेन्ट्रल बैङ्क का रुपया उगाहते हैं।

अन्य छोटे प्रान्तों तथा देशी राज्यों में सहकारी विभाग के कर्मचारी ही समितियों की देखभाल का काम भी करते हैं, कोई स्वतन्त्र संस्था यह काम नहीं करती।

ऊपर दिये हुए विवरण से यह स्पष्ट है कि सब जगह देखभाल की पद्धति एकसी नहीं है। बहुत से प्रान्तों में देखभाल का समुचित प्रबंध नहीं है। समिति को कई आदमी सलाह देते हैं, इससे विचार-भेद पैदा होता है। जो लोग समितियों के सम्पर्क में आते हैं, उनमें कोई जोड़ने-वाली कड़ी नहीं होती। कहीं-कहीं सेन्ट्रल बैंक तथा सहकारिता विभाग के कर्मचारियों द्वारा जो निरीक्षण होता है, उसका और सुपरवाइज़रों का कार्यक्षेत्र एकसा ही है।

इस सम्बन्ध में रिजर्व बैंक की राय यह है कि प्रत्येक ताल्लुका या तहसील में एक बैंकिंग यूनियन स्थापित की जाय और वह अपने से सम्बन्धित समितियों के सभी कार्यों में दिलचस्पी ले। यही यूनियन समितियों की देखभाल भी करे। इसमें कोई संदेह नहीं कि भारतवर्ष में सहकारी समितियों को सबल और सफल बनाने के लिये यह आवश्यक है कि देखभाल का समुचित प्रबन्ध हो।

निरीक्षण—सहकारिता आन्दोलन शिथिल न होने देने के लिए, समितियों का निरीक्षण होते रहना आवश्यक है। इस कार्य का भार

सहकारिता विभाग पर है। सहकारिता विभाग का सर्वोच्च कर्मचारी रजिस्ट्रार होता है। उसके नीचे असिस्टेन्ट रजिस्ट्रार होते हैं, जो एक-एक सर्कल के जिम्मेवार होते हैं। इनके नीचे इंस्पेक्टर होते है, जो एक-एक जिले के काम का निरीक्षण करते हैं। कहीं कहीं सब इंस्पेक्टर भी होते हैं। रजिस्ट्रार तथा उसके सहायक अधिकारी आन्दोलन की नीति निर्धारित करते हैं, वे बराबर दौरा करके सहकारी संस्थाओं का निरीक्षण करते हैं और त्रुटियाँ बतलाते हैं और भावी कार्यक्रम के विषय में सलाह देते हैं। बम्बई, सिन्ध और मदरास में सेन्ट्रल बैंक भी निरीक्षण-कार्य के लिये इंस्पेक्टर नियुक्त करते हैं।

आय-व्यय-परीक्षक—सहकारिता-कानून के अनुसार प्रति वर्ष प्रत्येक सहकारी समिति के आय-व्यय की-परीक्षा करना रजिस्ट्रार का कर्तव्य है। इस कार्य को करते समय आय-व्यय-परीक्षक लेनी और देनी की जाँच करता है, उनका मूल्यांकन करता है; वह ऐसे ऋण की भी जाँच करता है, जिनकी अदायगी का समय व्यतीत हो गया किन्तु वह अदा नहीं किये गये। भिन्न-भिन्न प्रान्तों में आय-व्यय-परीक्षा की पद्धति में भो थोड़ी-थोड़ी भिन्नता है। बम्बई, सिंध, बिहार, उड़ीसा संयुक्तप्रान्त और आसाम में आय-व्यय-परीक्षा का कार्य सहकारिता विभाग के आडिटर (आयव्यय-परीक्षक) करते हैं। इन प्रान्तों में कुछ बैङ्कों के आय-व्यय की जाँच रजिस्टर्ड अकाउंटेंट भी करते हैं, पर उसको पर्याप्त नहीं समझा जाता; सहकारिता विभाग के आडिटर भी उस कार्य को करते हैं। मदरास, बंगाल और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त में यद्यपि सहकारिता विभाग के आडिटर ही आय-व्यय की जाँच करते है, किन्तु रजिस्ट्रार कुछ बैङ्कों के आय-व्यय की जाँच रजिस्टर्ड अकाउटेंट से करा लेने की आज्ञा दे देते हैं और उनके द्वारा किये जाने पर ही आय-व्यय की जाँच यथेष्ट समझी जाती है। मध्यप्रदेश में बड़ी बड़ी समितियों के आय-व्यय की परीक्षा सहकारिता विभाग

के सर्कल-आडिटर करते हैं; परन्तु छोटी समितियों का आय-व्यय-निरीक्षण आय-व्यय परीक्षकों द्वारा होता है. जो रजिस्ट्रार की अधीनता में काम करते हैं। उनका वेतन 'रजिस्ट्रार आडिट फंड' में से दिया जाता है। पंजाब में रजिट्रार ने प्रान्तीय सहकारी यूनियन आडिटरों को समितियों के आय-व्यय की जाँच की आज्ञा प्रदान करदी है और प्रान्तीय यूनियन को आय-व्यय-परीक्षा की फीस लगाने का भी अधिकार दे दिया है। प्रत्येक प्रान्त में सहकारी समितियों को आडिट-फीस देनी पड़ती है।

आय-व्यय की परीक्षा सुचारु रूप से करने के लिए यथेष्ट आय-व्यय-परीक्षक होने चाहिए, उन्हें अपने कार्य की अच्छी शिक्षा मिलनी चाहिए और उनका उचित नियंत्रण होना चाहिए। साथ ही निरीक्षण करनेवाले कर्मचारियों से आय-व्यय परीक्षक भिन्न और पृथक् होने चाहिए।

सहकारिता की शिक्षा—सहकारिता आन्दोलन की पूर्ण सफलता के लिये यह आवश्यक है कि सहकारिता आन्दोलन को चलानेवाले कर्मचारी तथा समितियों और सेन्ट्रल बैंकों के पंचायतदार तथा डायरेक्टर सहकारिता के सिद्धान्त को भली भांति जानें। यह कार्य केवल शिक्षा के द्वारा हो सकता है। सहकारिता के सिद्धान्तों की शिक्षा देने की आवश्यकता पर मैकलेगन सहकारिता कमेटी तथा कृषि-कमीशन दोनों ने ही बहुत जोर दिया था। इसी उद्देश्य से प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय सहकारी यूनियन, इंस्टिट्यूट या फेडरेशन स्थापित की गई थीं। इन प्रान्तीय संस्थाओं ने प्रचार-कार्य तो अच्छा किया, किन्तु सहकारी समितियों के सदस्यों को सहकारिता के सिद्धान्तों की देने का कार्य नहीं के बराबर किया।

सन् १९३४-३५ में सर मैलकम डार्लिंग ने भारत सरकार को सहकारिता आन्दोलन के सम्बन्ध में जो रिपोर्ट दी थी, उसमें उन्होंने एक बार फिर सहकारिता के सिद्धान्तों और व्यवहार की शिक्षा पर

जोर दिया। उस रिपोर्ट के फल-स्वरूप भारत सरकार ने १९३५ में सहकारिता की शिक्षा के लिए प्रान्तों को विशेष ग्रान्ट (सहायता) दी। इसके अतिरिक्त प्रान्तीय सरकार भी उन संस्थाओं को जो सहकारिता की शिक्षा देती हैं, अधिक ग्रान्ट देने लगीं।

प्रत्येक प्रान्त में दो प्रकार की कक्षाएं खोली गई हैं। (१) वे कक्षाएं जिनमें सहकारिता विभाग तथा सहकारी संस्थाओं में कार्य करनेवालों को सहकारिता के सिद्धान्त, ग्राम्य अर्थशास्त्र, बैंकिंग तथा हिसाब की शिक्षा दी जाती है इसके अतिरिक्त आडिटरों, भूमि का मूल्य जाँचने वालों, विक्रय समितियों के मेनेजरों तथा सेन्ट्रल बैङ्क के मेनेजरों को अपने अपने कार्यों की विशेष शिक्षा दी जाती है। (२) वे कक्षाएँ, जिनमें समितियों के निर्वाचित पदाधिकारियों और सदस्यों को शिक्षा दी जाती है यह शिक्षा बहुत साधारण होती है, इसमें अधिकतर सहकारिता के सिद्धान्तों की मोटी-मोटी बातों, समितियों का प्रबन्ध, पदाधिकारियों के कर्त्तव्य, ग्राम संगठन इत्यादि का ज्ञान कराया जाता है।

इसके अतिरिक्त रजिस्ट्रार भिन्न-भिन्न स्थानों पर 'रिफ्रेशर कोर्स' की कक्षाएँ भी लगाते हैं, जिनमें सहकारिता सम्बन्धी भाषण होते हैं और विशेष समस्याओं पर वादविवाद होते हैं।

बंगाल, बिहार तथा संयुक्तप्रान्त में इंस्टिट्यूट स्थापित की गई हैं, सहकारिता विभाग के अनुभवी अफसर सहकारिता विभाग तथा सहकारी संस्थाओं के भावी कर्मचारियों को शिक्षा देते हैं। सदस्यों और पंचों की शिक्षा के लिए कक्षाएँ खोली जाती हैं। बम्बई और मदरास में प्रांतीय सहकारी इंस्टिट्यूट शिक्षा का प्रबन्ध करती है। अन्य प्रान्तों में सहकारिता विभाग अपने कर्मचारियों को शिक्षा से कार्य के लिए नियुक्त करके शिक्षा का प्रबन्ध करते हैं। मदरास सहकारी कमेटी (१९४०) की राय है कि प्रत्येक प्रान्त में एक कालेज स्थापित किया जावे, जिसमें स्थायी रूप से सहकारिता की

शिक्षा का प्रबन्ध हो सके। जब तक स्थायी रूप से कोई संस्था स्थापित नहीं की जावेगी, तब तक शिक्षा का समुचित प्रबन्ध नहीं हो सकता।

सहकारिता आन्दोलन में कार्य करने वालों का यह अनुभव था कि सहकारिता आन्दोलन को योग्य व्यक्ति देने के लिए सहकारिता की शिक्षा के लिए कालेज स्थापित करना आवश्यक है। इसी उद्देश्य से कुछ प्रान्तों में इस ओर प्रयत्न किया गया है।

बम्बई में पूना में एक सहकारिता कालेज है, दूसरा सहकारिता की शिक्षा देने वाला कालेज गोहाटी (आसाम) में है और तीसरा कालेज त्रिवंद्रम में स्थापित्त किया गया है। इन कालेजों में किसी विश्वविद्यालय का ग्रेजुयेट (स्नातक) ही प्रवेश पा सकता है और सभी आवश्यक विषयों के अध्ययन का प्रबंध किया गया है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक प्रान्त में एक सहकारिता का कालेज हो।

बम्बई—बम्बई में प्रान्तीय सहकारी इंस्टिट्यूट सहकारी शिक्षा का प्रबन्ध करती है। पूना में एक सहकारी ट्रेनिंग कालेज है जहाँ एक वर्ष का कोर्स है। ग्रेजुयेट इसमें प्रवेश पा सकते हैं उस का उद्देश्य सहकारिता विभाग के उच्च कर्मचारियों को ट्रेनिंग देना है। कालेज में लैकचरों के सिवाय ३ महीने व्यवहारिक शिक्षा भी दी जाती है।

इंस्टिट्यूट ने प्रान्त को भाषा के आधार पर तीन प्रदेशों में बाँटा है और तीन प्रादेशिक सहकारी शिक्षा देने वाले स्कूल पूना, सूरत तथा धारवार में स्थापित किए हैं। यहाँ सहकारिता विभाग के नीचे दर्जे के कर्मचारियों, सहकारी संस्थाओं के मुख्य कर्मचारियों जैसे सुपरवाइजर, बैंक इंस्पैक्टर, बड़ी समितियों के मंत्रियों को शिक्षा दी जाती है। यहाँ का कोर्स ६ महीने का होता है, जिसमें दो महीना व्यवहारिक शिक्षा भी दी जाती है।

इंस्टिट्यूट प्रत्येक जिले में सहकारी कक्षायें चलाती है जहाँ सहकारी समितियों के मंत्री शिक्षा प्राप्त करते हैं। यहाँ का कोर्स ६ सप्ताह का होता है।

बिहार—बिहार में एक प्रथम श्रेणी का सहकारिता की शिक्षा देने वाला कालेज था जिसमें एक प्रिंसिपल और ३ प्रोफेसर थे। किन्तु यह उपयोगी संस्था बंद कर दी गई। अब बिहार में सहकारिता विभाग एक सहकारिता ट्रेनिंग इंस्टिट्यूट चलाता है जिसमें शिक्षा विभाग के कर्मचारी तथा संस्थाओं के कर्मचारी शिक्षा पाते हैं और यहाँ का कोर्स तीन महीने का है।

उड़ीसाः—उड़ीसा में एक ग्रीष्म कालीन स्कूल चलाया जाता है जहाँ गरमियों में एक मास १०० व्यक्तियों को सहकारिता सम्बन्धी शिक्षा दी जाती है। यह स्कूल एक मास चलता है।

उत्तरप्रदेशः—उत्तरप्रदेश में सहकारिता विभाग द्वारा प्रतापगढ़ में एक इंस्टिट्यूट है जहाँ इंस्पैक्टरों तथा आडिटरों को शिक्षा दी जाती है। अब प्रान्तीय सरकार प्रान्त के गांवों की उन्नति का कार्य बहु-उद्देश्य वाली समितियों के द्वारा कराना चाहती है। इस उद्देश्य से कार्यकर्त्ताओं की शिक्षा का नीचे लिखे केन्द्रों में प्रबंध किया गया है। (१) सेवापुरी आश्रम, बनारस (२) महोबा नन्दन आश्रम गोरखपुर (३) सेवाकुंज-गंगाघार-उन्नाव, (४) आसपुर बदायूं (५) घातेरा सहारनपुर,(६) घोरीघाट-आजमगढ़।

पश्चिमीय बङ्गाल :—बंगाल में सहकारी ट्रेनिंग इंस्टिट्यूट शिक्षा का काम करती है। इस इंस्टिट्यूट में एक अध्यक्ष और ८ शिक्षक हैं। सहकारिता विभाग के कर्मचारी, सेन्ट्रल बैङ्क के मैनेजर सुपरवाइजर तथा अन्य सहकारी संस्थाओं के कर्मचारियों को शिक्षा दी जाती है। प्रत्येक डिवीजन में एक घूमने फिरने वाला शिक्षण युनिट होता है जिसमें एक इंस्पैक्टर तथा एक आडिटर

होता है जो कि घूम घाम कर समितियों के कार्यकर्त्ताओं को शिक्षा देते हैं।

मध्यप्रदेश में सहकारी शिक्षा—मध्यप्रदेश में पाँच सहकारी इंस्टिट्यूट है जो अपने क्षेत्र में ट्रेनिंग कक्षा चलाते हैं। इन ट्रेनिंग कक्षाओं में से शिक्षा का कार्य होता है।

मद्रास—मद्रास में सरकार का सहकारिता विभाग एक सहकारी इंस्टिट्यूट चलाता है, जिसमें विभागीय कर्मचारी शिक्षा प्राप्त करते हैं तथा सरकार सहकारिता सम्बन्धी एक परीक्षा भी लेती है और उत्तीर्ण व्यक्तियों को डिप्लोमा देती है।

मैसूर—मैसूर में भी सहकारी इंस्टिट्यूट भिन्न भिन्न स्थानों पर सहकारिता की शिक्षा देने के लिए कक्षाएँ चलाती है। मैसूर में चंद्रशेखर अयर कमेटी ने एक स्थायी सहकारी स्कूल को स्थापित करने की सिफारिश की है। जिसमें तीन कोर्स होंगे (१) ६ महीने का कोर्स, जिसमें सहकारी समितियों के कर्मचारियों को शिक्षा दी जावेगी। (२) एक वर्ष का कोर्स जिसमें आडिटर तथा इंस्पैक्टरों को शिक्षा दी जावेगी (३) एक वर्ष का कोर्स जिसमें ऊँचे कर्मचारियों को शिक्षा दी जावेगी।

हैदराबाद—हैदराबाद में विभाग के लिए कर्मचारियों की शिक्षा के लिए कक्षायें चलाई जाती हैं। सहकारी योजना समिति ने यह सिफारिश की है कि प्रत्येक प्रान्त में एक स्थायी सहकारिता कालेज होना आवश्यक है।

अब भिन्न-भिन्न प्रान्तों में प्रचार और शिक्षा का कार्य करनेवाली संस्थाओं का कुछ परिचय दिया जाता है।

प्रान्तीय सहकारी संस्थाएँ

बम्बई—बम्बई प्रान्तीय सहकारी इंस्टिट्यूट के मुख्य कार्य ये

हैं :—(१) शिक्षा, (२) प्रचार, (३) निरीक्षण, (४) सुधार-कार्य, (५) जनता की आन्दोलन के सम्बन्ध में सम्मति प्रकट करना। समितियाँ तथा व्यक्ति दोनों ही इसके सदस्य हो सकते हैं। इसे सदस्यों के चन्दे के अतिरिक्त सरकार से ३०,००० रु० वार्षिक सहायता मिलती है। कुछ जिला-बोर्ड तथा म्युनिसिपल बोर्ड भी इसे आर्थिक सहायता देते हैं। इसकी शाखाएं प्रत्येक जिले में हैं। इंस्टिट्यूट ने एक शिक्षा बोर्ड नियुक्त कर दिया है। उसकी देखरेख में प्रान्त के भिन्न-भिन्न स्थानों पर स्कूल खोले गये हैं, जिसमें सहकारिता की शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त अंग्रेज़ी तथा देशी भाषाओं में त्रैमासिक पत्रिकाएँ प्रकाशित की जाती हैं। प्रचार-कार्य जिलों तथा डिविजनों के कार्यकर्त्ता शाखाओं की सहायता से करते हैं। इंस्टिट्यूट ने गृह-निर्माण, तथा विक्रय-समितियों की स्थापना की। वह ग्राम सुधार कार्य के लिये आर्थिक सहायता देती है। इंस्टिट्यूट का प्रबन्ध करने के लिये दो समितियाँ हैं:—(१) कौंसिल, जिसमें रजिस्ट्रार के १० मनोनीत सदस्य रहते है, और (२) कार्यकारिणी, जिसमें रजिस्ट्रार के दो प्रतिनिधि रहते हैं।

पंजाब—पंजाब में प्रान्तीय कोआपरेटिव यूनियन है। इसका मुख्य काम प्रचार, शिक्षा, आय-व्यय-परीक्षा तथा देखभाल करना है। रजिस्ट्रार इसका सभापति होता है। यूनियन आय-व्यय-परीक्षा तथा देखभाल का कार्य अपने कर्मचारियों से कराती है, जिनकी संख्या लगभग ५०० है। प्रचार का काम इन्सपेक्टर करते हैं। यूनियन एक मासिक पत्र उर्दू में निकालती है। इसके अतिरिक्त वह सिनेमा, मेजिक लालटेन, व्याख्यान और प्रदर्शन करनेवाली ट्रेन से तथा पुस्तकों को प्रकाशित करके प्रचार करती है। वह प्रान्तीय सम्मेलन का भी आयोजन करती है। उसको आडिट फीस मिलती है तथा प्रान्तीय सरकार आर्थिक सहायता देती है।

मदरास—मदरास यूनियन के मुख्य कार्य प्रचार, नई तथा

विशेष प्रकार की समितियों को स्थापित करना, तथा सुपरवाइजिंग यूनियन की सहायता करना है। यूनियन अंग्रेजी में सहकारिता विषय की मासिक पत्रिका प्रकाशित करती है, पंचायतदारों की शिक्षा का प्रबन्ध करती है, सहकारिता के सिद्धांत का प्रचार करती है, ग्राम-संगठन-केन्द्र चलाती है, तथा प्रान्तीय सहकारिता सम्मेलन का आयोन करता है। प्रत्येक ग्राम-सङ्गठन-केन्द्र पर हर साल एक अच्छी रकम खर्च होती है। यह खर्च उस क्षेत्र का सेन्ट्रल बैङ्क तथा सहकारी बैङ्क देता है। यूनियन को मदरास सरकार केवल आर्थिक सहायता देती है। साथ ही उसे सहकारी समितियों से भी आर्थिक सहायता मिलती है।

बिहार—बिहार में प्रान्तीय फेडरेशन है। उसमें प्रत्येक समिति अपना प्रतिनिधि भेजती है। उसका वार्षिक अधिवेशन होता है। प्रचार कार्य के लिये प्रत्येक डिवीजन में पाँच कर्मचारी रखे गये हैं। प्रत्येक समिति तथा सेन्ट्रल बैङ्क को अपनी कार्यशील पूँजी के अनुपात से फेडरेशन को चन्दा देना पड़ता है। प्रान्तीय सरकार लगभग १०००० रु० वार्षिक सहायता देती है। सहकारिता की शिक्षा देने के लिये इंस्टिट्यूट स्थापित की गई है। फेडरेशन एक हिन्दी मासिक पत्रिका ('बिहार सहयोग') तथा एक अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित करती है।

बङ्गाल—बंगाल में सहकारी आरगेनीजेशन सोसायटी थी, अब इसका नाम बंगाल सहकारी एलायंस है। यह प्रांतीय संस्था अपने से सम्बन्धित समितियों की देखभाल करती है, दो पत्रिकाएँ प्रकाशित करती है, कलकत्ते में पुस्तकालय चलाती है; व्याख्यानदाताओं को जिलों में भेजकर प्रचार-कार्य करती है, प्रान्तीय सम्मेलन का आयोजन करती है, तथा कर्मचारियों की शिक्षा का प्रबन्ध करती है।

उत्तरप्रदेश—यहाँ प्रांतीय सहकारी यूनियन है, जिसका सभापति रजिस्ट्रार होता है। सेंट्रलबैङ्क तथा सहकारी समितियाँ उसके सदस्य होती हैं। यूनियन सम्बन्धित समितियों की देखभाल करती है

वह १०० से अधिक आय-व्यय-निरीक्षक नियुक्त करती है। प्रांतीय सरकार उसे लगभग ६६,००० रु० वार्षिक सहायता देती है। इसके अतिरिक्त सदस्यों से फीस ली जाती है। आय व्यय-परीक्षा के लिए अलहदा फीस ली जाती है।

मध्यप्रदेश—यहां प्रान्तीय फेडरेशन शिक्षा, तथा देखभाल का कार्य करती है। प्रांत को पाँच भागों में बाँटा गया है और प्रत्येक में इस कार्य के लिए एक इंस्टियूट स्थापित की गई है। इनमें बरार इंस्टियूट सबसे अच्छा कार्य कर रही है। समितियों की देखभाल करने के लिए कर्मचारी नियुक्त किये गये हैं। फेडरेशन एक हिन्दी मासिक पत्र ('ग्राम') भी प्रकाशित करती है।

आसाम-यहाँ सुरमा घाटी की एक प्रान्तीय संगठन समिति स्थापित की गई है। प्रत्येक समिति प्रान्तीय समिति को अपनी कार्य-शील पूँजी के अनुपात में चन्दा देती है। आसाम में शिक्षा बहुत कम है, इस कारण समिति मेजिक लालटेन के द्वारा प्रचार-कार्य करती है। इस कार्य के लिये उपदेशक भेजे जाते हैं। समिति एक बंगाली त्रैमासिक पत्रिका भी प्रकाशित करती है। इसी प्रकार की एक समिति आसाम के उत्तरी आधे हिस्से में कार्य करती है।

अखिल भारतवर्षीय सहकारी इंस्टिट्यूट—प्रांतीय सहकारी संस्थाएँ अखिल भारतवर्षीय सहकारी इंस्टिट्यूट से सम्बन्धित हैं। यह इंस्टिट्यूट एक बहुत अच्छी त्रैमासिक अंग्रेजी पत्रिका "कोआपरेटिव जनरल" निकालती है, सहकारिता आन्दोलन से सम्बन्धित उपयोगी साहित्य प्रकाशित करती है, और आन्दोलन सम्बन्धी समस्याओं पर अपना मत प्रकट करती है। समय-समय पर वाद-विवाद होता है। सन् १९४२ से इंस्टिट्यूट ने "कोआपरेटिव इयर-बुक" प्रकाशित करना शुरू किया है, वह सहकारिता आन्दोलन सम्बन्धी ज्ञातव्य बातों की खान है। एक प्रकार से यह संस्था सहकारी आन्दोलन के प्लेटफार्म और प्रेस का काम करती है।

भारत सरकार द्वारा नियुक्त सहकारिता सम्बन्धी उपसमिति की रिपोर्ट—भारत सरकार ने सहकारिता के सम्बंध में एक उपसमिति नियुक्त की थी जिसकी रिपोर्ट नीचे लिखे अनुसार है।

(१) तीनों अखिल भारतीय सरकारी ऐसोसियेशनों अर्थात् (१) अखिल भारतीय इंस्टिट्यूट एसोसियेशन, (२) अखिल भारतीय प्रान्तीय सहकारी बैंक एसोसियेशन (३) अखिल भारतीय सहकारी बीमा समिति एसोसियेशन को मिलाकर एक एसोसियेशन 'भारतीय सहकारी एसोसियेशन' स्थापित की जावे।

यह भारतीय सहकारिता एसोसियेशन समस्त सहकारिता आन्दोलन का नेतृत्व करेगी तथा उसके सम्बंध में सरकार से बातचीत करेगी। इसके अतिरिक्त यह एसोसियेशन सहकारिता सम्मेलन को भी प्रति-वर्ष बुलावेगी।

उप-समिति की यह भी राय थी कि दो अखिल भारतीय सम्मेलन, गैर सरकारी सहकारिता सम्मेलन और रजिस्ट्रार सम्मेलन मिलाकर एक सहकारी सम्मेलन बुलाया जावे। भारतीय सहकारिता एसोसियेशन का सभापति ही इस सम्मेलन का भी सभापति हो।

एक केन्द्रीय सहकारिता कौंसिल स्थापित की जावे जो भारत सरकार की कृषि मिनिस्टरी को परामर्श दे और उससे सम्बंधित हो। कौंसिल में दस प्रतिनिधि सरकार मनोनति करे, दस प्रतिनिध भारतीय सहकारिता एसोसियेशन रक्खे और एक प्रतिनिध रिजर्व बैंक का हो। भारत सरकार का मत्री, जिसके आधीन सहकारिता विभाग हो, उसका अध्यक्ष हो।

रिजर्व बैंक को प्रान्तीय सहकारी बैंको को उनके प्रामिसरी नोट पर ऋण देना चाहिए। प्रान्तीय बैंक साख समितियों तथा सेंट्रल बैंकों की जमानत पर रिजर्व बैंक से ऋण प्राप्त कर सकें ऐसी सुविधा होनी चाहिए।

रिजर्व बैंक को सहकारिता आन्दोलन के लिए आवश्यक साख देने का प्रबंध करना चाहिए।

सहकारी संस्थाओं के रुपए को एक स्थान से दूसरे स्थान तक बिना कुछ फीस दिए अपना रुपया भेजने की सुविधा मिलनी चाहिए।

रिजर्व बैंक सहकारी बैंकों को साख सम्बंधी अधिक सुविधा दे। उन साख समितियों के लेनी देनी के लेखे तथा आडिट रिपोर्ट को देना अनिवार्य न बना दिया जाय जिनके लिए प्रान्तीय बैंक रिजर्व बैंक से ऋण लेना चाहते हैं।

भारत सरकार ने भारतीय सहकारिता एसोसियेशन की स्थापना करदी है।

बीसवाँ परिच्छेद

ग्राम-सुधार और सहकारिता

गाँवों की दशा—भारतवर्ष गांवों का देश है, सात लाख गांवों में देश की लगभग ९० फी सदी आबादी रह रही है। लेकिन गाँवों में गरीबी, कलह, बीमारियों, गंदगी, अशिक्षा और पुरानी हानिकर रस्मों का ऐसा जोर है कि गांवों की दशा बहुत गिर गई हैं। हमारे गांव मनुष्यों के रहने लायक नहीं हैं, यही कारण है कि गांव का रहनेवाला जो आदमी पढ़-लिख जाता है, वह गाँव में न रह कर शहर की ओर दौड़ता है। यही नहीं, वृद्ध अवस्था होने पर जब वह नौकरी या अपने धन्धे से छुट्टी लेता है, तब भी वह गाँव को न लौटकर शहर में बस जाता है। पढ़े-लिखे लोगों की बात जाने दीजिये, जमींदार भी गाँवों में रहना नहीं चाहते; वे भी जमींदारी की आमदनी से शहरों में ही रहना चाहते हैं। जो कारीगर गांव में रहकर कुशलता प्राप्त कर लेता है, वह भी शहर की ओर चल देता है। इस प्रकार आज हमारे गांवों से पूंजी, मस्तिष्क, तथा हुनर बाहर निकला जा रहा है। गाँवों में अशिक्षित तथा निर्धन किसानों और कारीगरों के बीच चतुर साहूकार उनको लूटने के लिये रह जाता है। निर्धन किसानों को रास्ता दिखलानेवाले कोई नहीं है। गाँवों को उजड़ने से बचाने के लिए यह आवश्यक है कि गाँवों की दशा में सुधार किया जावे, जिससे पढ़े-लिखे तथा पैसे वाले ग्रामीण गाँव छोड़कर बाहर न जावें।

सुधार कार्य—गाँवों की दशा इतनी बुरी होते हुए भी सरकार और जनता सभी गाँवों की ओर से उदासीन हैं। स्वास्थ्य तथा

सड़कें बनवाने का जो थोड़ा-बहुत कार्य होता है, शहरों में ही होता है। बात यह है कि शहर वालों के पास पत्र है, प्लेटफार्म है, वे शोर मचाना जानते हैं, असेम्बली तथा कौंसलों में हमारे प्रतिनिधि चिल्लाया करते हैं, इस कारण सरकार को शहरों के लिये कुछ न-कुछ करना ही पड़ता है। कपड़े, स्टील तथा शक्कर के कारखानों के मालिक, विधान सभा के सदस्य तथा समाचार-पत्र आकाश पाताल एक कर देते हैं और इन धन्धों को संरक्षण मिल जाता है; परन्तु खेती-बारी की ओर, जिस पर इस देश का आर्थिक संगठन अवलम्बित है, कोई ध्यान तक नहीं देता। ग्रामीण जनता मूक तथा अशिक्षित है, इस कारण वह प्रतिवाद भी नहीं कर सकती। किन्तु कतिपय सज्जनों ने ग्रामीण जीवन के दुखदाई पतन को देखकर इस दिशा में कार्य किया है। बम्बई के कांग्रेस अधिवेशन (दिसम्बर १६३४ ई०) ने महात्मा गाँधी के नेतृत्व में जो ग्राम-उद्योग-संघ संस्था को जन्म दिया उसके कारण जनता और सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। सरकार ने महात्माजी के इस कार्य को केवल गाँवों में कांग्रेस के प्रभाव को बढ़ाने की एक चाल समझी। अतएव भारत सरकार ने भी एक करोड़ रुपये की ग्रांट देकर प्रान्तीय सरकारों को ग्राम-सुधार करने को प्रोत्सहित किया। अस्तु, सभी प्रान्तों में १६३५ के आरम्भ से ग्राम-संगठन का कार्य होने लगा। तब तक इस कार्य के लिए प्रान्तों में कोई पृथक् विभाग स्थापित नहीं किया गया था। जब नया निर्वाचन हुआ तो हर एक प्रान्त में ग्राम सुधार विभाग स्थापित करके मन्त्रिमंडलों ने इस कार्य को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया।

सन् १६३५ के पहले भी देश में कुछ स्थानों पर ग्राम सुधार कार्य हो रहा था। पंजाब के गुरगाँव जिले में श्री एफ० एल० ब्राइन तथा श्रीमती ब्राइन ने १४०० गाँवों में ग्राम-सुधार कार्य किया था। किन्तु उनकी योजना दोषपूर्ण थी; उनका तबादला हो जाने पर उनका सारा कार्य क्रमशः नष्ट हो गया, और गाँव पूर्व दशा में पहुँच गए

बंगाल में महाकवि स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नेतृत्व में, शान्ति निकेतन विश्व भारती के साथ-साथ श्रीनिकेतन नाम की ग्राम-सुधार करनेवाली संस्था स्थापित हुई। श्रीनिकेतन वीरभूमि जिले से गाँवों में सुधार कार्य करता हैं। किन्तु महाकवि की मृत्यु के उपरांत इस कार्य में शिथिलता आ गई। बंगाल के सुन्दरबन प्रदेश में स्वर्गीय सर डेनियल हैमिल्टन ने आधुनिक ढंग की बस्तियाँ बसाई थीं, जिसमें सहकारी समितियों के द्वारा ग्राम-सुधार होता था। दक्षिण भारत में वाई० एम० सी० ए० (यंग मेन क्रिस्चियन एसोसियेशन) का ग्राम-सुधार कार्य भी उल्लेखनीय है। उसका कार्य विशेष रूप से त्रावंकोर राज्य में केन्द्रित है। कुछ अन्य स्थानों पर भी कार्य हो रहा था, किन्तु बड़ी मात्रा में यह कार्य भारत सरकार द्वारा एक करोड़ रुपये की ग्रांट दिये जाने पर ही आरम्भ हुआ।

ग्राम-सुधार-कार्य में सहकारिता का कहाँ तक उपयोग हो सकता है, इसको समझाने के लिए गाँवों की, और ग्राम-सुधार-कार्य की समस्याओं को जान लेना आवश्यक हैं।

भारतीय गाँवों की समस्याएँ—हमारे गाँवों की मुख्य समस्याएँ ये हैं—

(१) ग्रामवासियों का निराशावादी दृष्टिकोण। गाँव का रहनेवाला इस बात का विश्वास ही नहीं करता कि उसकी दशा सुधर सकती है। वह ग्राम-सुधार-कार्य में रुचि नहीं दिखाता और न अपनी दशा को सुधारने का प्रयत्न ही करता है।

(२) गांवों में सफाई का अभाव।

(३) गांवों में चिकित्सा के साधनों का अभाव।

(४) गांवों में शिक्षा का अभाव।

(५) गांवों में सुरुचिपूर्ण मनोरंजन के साधनों का अभाव।

(६) पशुओं की उन्नति की आवश्यकता।

(७) खेती के धंधे की उन्नति की आवश्यकता।

(८) मुकदमेबाजी को कम करने की आवश्यकता।

(९) गांवों में ऋण की समस्या।

(१०) स्वास्थ्य-रक्षा के सिद्धान्तों की जानकारी न होना।

(११) घरों को आकर्षक और सुन्दर बनाने की आवश्यकता।

(१२) किसानों के लिए बेकार समय में गौण सहायक धंधों की आवश्यकता।

(१३) सामाजिक कुरीतियां और बुरी रस्में।

(१४) गांवों में आने-जाने के साधनों का अभाव।

ये सब समस्याएँ एक-दूसरे से मिली हुई हैं, और पृथक् नहीं की जा सकतीं। उदाहरण के लिए मुकदमेबाजी, सामाजिक कुरीतियाँ और पशु की मृत्यु किसान के ऋणी होने का मुख्य कारण हैं। और अशिक्षा से; घरों के आकर्षणहीन होने से तथा मनोरंजन के साधन न होने से, गांव वालों में मुकदमेबाजी की आदत पड़ गई है। इस प्रकार एक समस्या दूसरी का कारण है अथवा किसी तीसरी समस्या का फल है।

ध्यान देने की बात—वास्तव में इन समस्याओं का हल करना ही ग्राम-सुधार है। किन्तु इस सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण बातें ऐसी हैं, जिनको कार्यकर्त्ता भूल जाते हैं—

(१) शासन के बढ़ते हुए करों और लगान ने तथा जमींदार, महाजन, नगरवासी, व्यापारी, दलाल, वकील, पुलिस, तहसील, के कर्मचारी इत्यादि, शिक्षित वर्ग के वैज्ञानिक शोषण ने भारतीय ग्रामीण के अन्तिम रक्त-बिन्दु को चूस लिया है। ग्राम-सुधार पूर्णतः तभी सम्भव है कि जब बिना विलम्ब यह बहुमुखी शोषण रोका जावे। और देश में उत्तरदायी शासन हो जाने से यह कार्य सरल हो गया है, तथापि जहाँ तक हो सके इसका प्रयत्न करते रहना चाहिए।

(२) आज हमारी ग्राम-संस्था निर्बल और निर्जीव हो रही है, उसे सबल और सतेज बनाने के लिए यह आवश्यक है कि गांव

वालों में अपनी वर्तमान दयनीय स्थिति से असंतोष उत्पन्न कर दिया जाय, जिससे उनमें अपनी स्थिति में सुधार करने की इच्छा बलवती हो उठे। गांवों में बाहर से सुधार लादने से कभी भी सफलता नहीं मिल सकती। खेद है कि इस महत्वपूर्ण तथ्य की ओर कार्यकर्ताओं का ध्यान बहुत कम गया है। गाँव वाले अधिकांश बातों को अधिकारियों के दबाव के कारण स्वीकार कर लेते हैं। कुछ समय के उपरान्त सुधार के सब चिह्न नष्ट हो जाते हैं। ग्राम सुधार का कार्य तभी स्थायी हो सकता है, जब सुधार अन्दर से हो। इसके लिये ग्रामीण नेतृत्व उत्पन्न किया जाय, नहीं तो सात लाख गांवों में ग्राम-सुधार-कार्य कर सकना सम्भव न होगा।

(३) अभी तक ग्राम सुधार-कार्य टुकड़े-टुकड़े करने का प्रयत्न किया गया है। किन्तु इस प्रकार सफलता मिलना कठिन है। ऊपर बतलाया जा चुका है कि गांव की जितनी भी समस्याएँ हैं वे एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हैं। अतएव ग्राम-सुधार कार्य में सफलता तभी मिल सकती है कि जब सारी समस्याओं के विरुद्ध एक साथ युद्ध छेड़ दिया जाय। भारतीय समस्याओं को एक-एक करके हल नहीं किया जा सकता।

(४) ग्राम-सुधार की प्रणाली कैसी हो? एक केन्द्रीय ग्राम में ग्राम सुधार केन्द्र स्थापित किया जाय। वहाँ जो कार्य हो उसे आसपास के गाँव ग्रहण करते रहें। कार्यकर्ता का आरम्भ से ही यह उद्देश्य होना चाहिए कि वह उस क्षेत्र के गांवों में स्थानीय संस्था और स्थानीय नेता उत्पन्न करदे, जो उस काम को अपने हाथ में ले लें। जब वे इसे अच्छी तरह चलाने के योग्य हो जावें तो ग्राम-सुधार-केन्द्र को वहाँ से हटाया जा सकता है।

सहकारिता का उपयोग—ग्राम-सुधार कार्य सहकारिता के आधार पर ही हो सकता है उसके बिना सफाई, शिक्षा, मनोरंजन,

मुकदमेबाजी, खेती और पशु की उन्नति सम्भव ही नहीं है। फिर गांवों में ग्रामसुधार कार्य को स्थायित्व प्रदान करने के लिये भी एक सहकारी संस्था की स्थापना की आवश्यकता है, जो इन सभी समस्याओं के विरुद्ध एकसाथ युद्ध छेड़ सके। अस्तु, आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक गाँव में एक बहु-उद्देश्य सहकारी समिति स्थापित की जाय। यह समिति एक प्रकार से गाँव की शासनकर्ता होगी, जिसका सञ्चालन बाहर वालों के हाथ में न होकर स्वयं गाँव वालों के हाथ में होगा। प्रत्येक घर का मुख्य पुरुष या स्त्री इसकी सदस्य होगी। यह समिति उन सभी कार्यों को करेगी, जो आवश्यक होंगे। इसके कई विभाग होंगे और प्रत्येक विभाग को एक विशेष कार्य सौंपा जावेगा। उदाहरण के लिये एक विभाग स्वास्थ्य और सफाई का, दूसरा विभाग मनोरञ्जन का, तीसरा शिक्षा का कार्य देखेगा. इत्यादि। पूरी समिति की बैठक प्रति पखवारा या महीने में होगी, जिसमें प्रत्येक विभाग को क्या करना चाहिए, इस सम्बन्ध में नीति निर्धारित की जावेगी। समिति की कार्यकारिणी यह देखेगी कि निर्धारित नीति पर कार्य हो रहा है।

इस प्रकार की एक बहुउद्देश्य सहकारी समिति होने से, ग्रामसुधार केन्द्र का कार्यकर्ता इस समिति तथा इसके नेतृत्व का, ग्राम-सुधार-कार्य के लिये. सफलतापूर्वक उपयोग कर सकता है। राज्य के जन-हितकारी विभाग जैसे कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा इत्यादि, इस समितियों के द्वारा अपना-अपना कार्य करें और इन्हें सहायता दें। समिति को राज्य सहायता दे, और वह कुछ फीस सदस्यों से ले। इस प्रकार ऐसी समिति के द्वारा ग्राम-सुधार कार्य सफलतापूर्वक हो सकता है।

हर्ष की बात है कि ग्राम-सुधार कार्य में सहकारिता का उपयोग समझ लिया गया है। संयुक्तप्रान्त में हजारों रहनसहन-सुधार-समितियां स्थापित करके यह कार्य किया जा रहा है। पंजाब तथा अन्य प्रान्तों में सहकारिता का पूरा उपयोग करने का प्रयत्न हो रहा है।

संयुक्तप्रान्त में ग्राम सुधार कार्य. श्री कैलाशनाथ काटजू का

योजना के अनुसार, बहुउद्देश्य समितियों के द्वारा होगा। उनकी योजना यह है कि प्रत्येक गाँव में एक समिति हो और गाँव के प्रत्येक घर का मुखिया उसका सदस्य बनाया जावे। समिति आरम्भ में साख, अच्छी खेती, खेत की पैदावार की बिक्री, पशु-पालन और पशु-सुधार दूध-घी के धन्धे की उन्नति, सूत कातना और गाँव वालों के लिए आवश्यक वस्तुओं को बेचने का काम करेंगी। किसान की खेत की पैदावार, तथा सूत की जमानत पर इन कार्यों के लिए सदस्य को नियन्त्रित साख दी जावेगी। खेती में सुधार करने के लिए समिति—अथवा यदि वह काफी बड़ी न हो तो कई समितियों की यूनियन—बीज गोदाम, खाद और अच्छे यन्त्रों के भडार रखेगी और इन वस्तुओं को सदस्यों को देगी। यदि कोई किसान खाद, बीज या हल इत्यादि के लिए ऋण चाहेगा तो उसको नकद ऋण न देकर वस्तुएँ उधार दी जावेंगी। इन स्टोरों में सदस्यों के काम की वस्तुएं भी रखी जावेंगी, जो किसान को प्रति दिन आवश्यक होती हैं, जैसे मिट्टी का तेल कपड़ा, नमक इत्यादि। जहां तक वस्तुओं की बिक्री का सम्बन्ध है प्रत्येक सदस्य अपनी खेती की पैदावार तथा सूत समिति के द्वारा बेचने की प्रतिज्ञा करेगा। यदि आवश्यकता पड़ी तो कानून बनाकर सदस्यों को अपनी पैदावार तथा सूत को समिति के द्वारा बेचने पर वाध्य किया जावेगा। इस प्रकार की समिति में प्रत्येक व्यक्ति स्वतः सदस्य होना चाहेगा और आवश्यकता होगी तो दबाव डाला जावेगा।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

उपसंहार

सहकारिता आन्दोलन की स्थिति—भारतवर्ष में सहकारिता आन्दोलन को आरम्भ हुए ४५ वर्ष हो गये, किन्तु आन्दोलन ने इस देश के आर्थिक जीवन में विशेष परिवर्तन उपस्थित कर दिया हो, ऐसा दिखलाई नहीं देता। इसका कारण यह है कि आन्दोलन अभी तक शक्तिहीन है। आसाम, मध्यप्रान्त, बिहार-उड़ीसा, बंगाल तथा पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में आन्दोलन फैल नहीं रहा है। १९२९ के उपरांत आर्थिक मंदी का भयंकर प्रभाव पड़ा तो इन प्रान्तों में आन्दोलन के जर्जर होकर नष्ट होने का भय होने लगा। सहकारी साख समितियों के सदस्य अपने ऋण न चुका सके। सेन्ट्रल बैङ्कों की स्थिति डांवाडोल हो उठी, यहाँ तक कि प्रांतीय बैङ्क भी डगमगाने लगे। यदि प्रान्तीय सरकारों की सहायता न होती और पुनर्निर्माण योजनाएँ न चलाई जाती तो इन प्रांतों में आन्दोलन के मर जाने में कोई संदेह नहीं था। फिर भी स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। सौभाग्यवश खेती की पैदावार का युद्ध के कारण कल्पनातीत बढ़ा हुआ मूल्य आन्दोलन के पुनर्निर्माण के लिए अनुकूल है।

पंजाब, बम्बई, मदरास और उत्तरप्रदेश में पूर्ण रूप से तो नहीं किन्तु साधारण रूप से आन्दोलन की स्थिति अच्छी है। बम्बई और मदरास में गैर-सरकारी कार्यकर्ताओं के कारण, और संयुक्तप्रांत तथा पंजाब में सरकारी कर्मचारियों की सतर्कता के कारण, आन्दोलन कुछ हद तक सफल हुआ है। यद्यपि इन प्रान्तों में भी बहुत सी समितियाँ हैं, जिनकी दशा सन्तोषजनक नहीं है और प्रतिवर्ष सैड़कों

समितियाँ दिवालिया होती हैं, फिर भी आन्दोलन की दशा अत्यन्त शोचनीय नहीं है। अजमेर मेरवाड़ा, कुर्ग तथा देहली प्रान्तों में आन्दोलन की दशा साधारण है।

देशी राज्यों में भी आन्दोलन की दशा सन्तोषजनक नहीं है। भोपाल में आन्दोलन की दशा अत्यन्त शोचनीय है। ग्वालियर, इंदौर तथा काश्मीर में आन्दोलन अभी शक्तिहीन है; मैसूर, हैदराबाद, बड़ौदा तथा ट्रावंकोर राज्यों में आन्दोलन की साधारण दशा है। अधिकतर देशी राज्यों में आन्दोलन अभी आरंभ ही नहीं हुआ।

पैंतालीस वर्षों में सहकारिता आन्दोलन को स्वयं अपने आप बढ़ना चाहिये था। ग्रामीण जनता को अन्य सहकारी समितियों की माँग करनी चाहिये थी, महाजन को इस आन्दोलन से डरना चाहिये था. तथा सहकारी समितियों के सदस्यों की आर्थिक स्थिति सुधरनी चाहिये थी, किन्तु अभी तक ये चिह्न नजर नहीं आ रहे हैं। इसलिए हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि आन्दोलन की दशा संतोषजनक नहीं है।

असफलता के कारण—आन्दोलन की असफलता के कारण बहुत हैं; विविध विद्वानों ने भिन्न-भिन्न कारणों को मुख्य माना है, जिनके विषय में आगे लिखा जावेगा। किन्तु अभी तक विद्वानों का ध्यान ग्रामीण ऋण की ओर यथेष्ट आकर्षित नहीं हुआ है; लेखक की सम्मति में आन्दोलन की असफलता का यह कारण मुख्य है। यहाँ ग्रामीण ऋण के विषय में वे सब बातें दोहराने की आवश्यकता नहीं, जो तीसरे परिच्छेद में लिखी जा चुकी हैं; इतना कह देना पर्याप्त होगा कि किसान ऋण के चंगुल में बुरी तरह से फंसा हुआ है। महाजन के शोषण करने का ढंग ऐसा विचित्र तथा भयंकर है कि किसान कभी ऋण-मुक्त नहीं हो सकता। इस का फल यह हुआ है कि किसान तथा अन्य निर्धन वर्गों का जीवन निराशावादी बन गया है। जिनको विश्वास नहीं, जिनको आशा नहीं कि

हमारी दशा सुधर सकती है, उनमें सहकारिता आन्दोलन कैसे सफल हो सकता है! अस्तु; सर्वप्रथम इस समस्या को हल करने का प्रयत्न होना चाहिए। यद्यपि पिछले वर्षों में कुछ कानून बने, किन्तु जब तक भावनगर की योजना की भांति कोई क्रान्तिकारी योजना न हो तब तक समस्या हल नहीं हो सकती।

शिक्षा प्रत्येक आन्दोलन की सफलता के लिये आवश्यक होती है। सहकारिता आन्दोलन में तो शिक्षा की और भी आवश्यकता है, क्योंकि सदस्यों को स्वयं सहकारी साख-समितियों को चलाना पड़ता है। समितियों के हिसाब रखने और कार्यवाही लिखने के लिये शिक्षा की आवश्यकता है। भारतवर्ष में सहकारी साख-समितियों को पढ़े-लिखे सदस्य नहीं मिलते, जो मंत्री का कार्य कर सके। इसलिए ऐसे आदमी को मंत्री बनाना पड़ता है जो सदस्य न हो। आठ दस समितियों का एक मन्त्री होता है, फल यह होता है कि मन्त्री ही इन समितियों का कर्ता-धर्ता बन जाता है और सदस्यों को कार्य करने की कोई शिक्षा नहीं मिलती। इन मंत्रियों के विरुद्ध बहुत शिकायत है, किन्तु वे जमे हुए हैं। इससे शिक्षा प्रचार की आवश्यकता स्पष्ट है। यदि यह न भी हो तो सहकारिता की शिक्षा की व्यवस्था तो होनी ही चाहिए। गांव वालों को सहकारिता के सिद्धांतों की शिक्षा ठीक प्रकार से दी जावे तो वे समिति भली प्रकार चला सकते हैं।

भारत में बहुत से विद्वानों का मत है कि आन्दोलन सार्वजनिक न हो कर एक सरकारी नीति ('स्टेट पालिसी') के रूप में चलाया जा रहा है, यही आन्दोलन की निर्बलता है। है भी यह बहुत-कुछ सत्य। यदि देखा जावे तो सहकारिता विभाग का रजिस्ट्रार ही आन्दोलन का सर्वेसर्वा है। समितियों का निरीक्षण करना, नई समितियों का रजिस्ट्रर करना, खराब समितियों का तोड़ना तथा उनका आडिट कराना उसके ही कार्य हैं। वह अधिकतर कोई सिविलियन होता है, अथवा उसी ग्रेड का कोई कर्मचारी; उसके नीचे डिप्टी रजिस्ट्रार

तथा इन्सपेक्टर होते हैं। असिस्टेंट रजिस्ट्रार तथा डिप्टी रजिस्ट्रार प्रान्तीय सिविल सर्विस के होते हैं। कोई भी सिविलियन अधिक दिनों तक रजिस्ट्रार नहीं रह पाता, क्योंकि वह अपनी उन्नति को, आन्दोलन के लिये नहीं छोड़ सकता। फल यह होता है रजिस्ट्रार जल्दी बदला करते हैं, और एक नीति स्थायी रूप से काम में नहीं लाई जाती। रजिस्ट्रार को नियुक्त होते समय सहकारिता का ज्ञान नहीं होता, (सर्वश्री कैल्वर्ट, स्टिकलैंड तथा डार्लिंग आदि इसके अपवाद स्वरूप हैं)। डिप्टी रजिस्ट्रारों को आन्दोलन से कोई विशेष प्रेम नहीं होता, क्योंकि वे दूसरे विभागों में जाने की चेष्टा करते रहते हैं। एक डिप्टी कलेक्टर डिप्टी रजिस्ट्रार बनने पर प्रसन्न नहीं होता। किसी भी आन्दोलन के लिये यह आवश्यक है कि उसके संचालक उत्साह और लगन के साथ उसमें जुटें। सहकारिता विभाग के अधिकतर कार्यकर्ताओं में इस बात का अभाव है। जो सज्जन इस आन्दोलन में अवैतनिक कार्य करते हैं, वे सेवाभाव से काम नहीं करते वरन् सरकार को प्रसन्न करके पदवी इत्यादि प्राप्त करने के उद्देश्य से करते हैं।

यहां यह कह देना आवश्यक है कि मदरास तथा अन्य प्रान्तों में भी कुछ ऐसे सज्जन अवश्य मिलेंगे, जो शुद्ध सेवा भाव से काम कर रहे हैं। श्रीयुत देवधर, सर लल्लू भाई सांवल दास, श्री एस० एस० तालमाकी, श्रीयुत् रामदास पंतलू तथा मदरास के श्री टी० के० हनुमतराव और सर्वेन्ट-आफ़-इण्डिया सोसायटी के कार्यकर्ताओं की जितनी प्रशंसा की जावे, वह थोड़ी है, किंतु अधिकतर कार्य कर्ता सेवा-भाव से कार्य नहीं करते।

इसका फल यह है कि सहकारी साख-समिति का सदस्य समिति को अपनी संस्था न समझ कर सरकारी बैंक समझता है। वह समझता है कि जिस प्रकार सरकार तकावी बांटती है, उसी प्रकार यह सरकारी बैङ्क ऋण देता है। इसका अर्थ यह है कि सहकारी समिति का सदस्य सहकारिता के मूल सिद्धान्त से अपरिचित है। वह यह नहीं समझता

कि सहकारिता का मूल सिद्धान्त स्वावलम्बन है। इसका मुख्य कारण यह है कि सेन्ट्रल बैंक के कर्मचारी तथा अन्य संगठनकर्त्ता सदस्यों को सहकारिता के सिद्धांतों की शिक्षा नहीं देते जो अत्यन्त आवश्यक हैं. और जिस पर मैकलेगन कमेटी ने विशेष जोर दिया था। वे सदस्यों को यह नहीं बतलाते कि यह समिति तुम्हारी है, तुम्हीं इसके मालिक हो, तुम इसका प्रबन्ध स्वयं जैसा चाहो कर सकते हो। कर्मचारी यह समझते हैं कि ऐसा करने से सदस्यों पर रोब नहीं रहेगा, तथा सेन्ट्रल बैंक का रुपया वसूल नहीं होगा। ऐसी परिस्थिति में भला किसान यह कैसे समझ सकता है कि समिति उसी की चीज है। और जब तक किसान ऐसा न समझने लगें और उनमें स्वावलम्बन के भाव जाग्रत न हो उठें, तब तक यह आन्दोलन सहकारिता आन्दोलन नहीं कहा जा सकता और सफल नहीं हो सकता। आन्दोलन की आरम्भिक स्थिति में सरकारी सहायता की आवश्यकता थी। अब वह बात नहीं रही। अब तो आन्दोलन को जनता के हाथों में सौंप देना चाहिए, गैर-सरकारी अवैतनिक कार्यकर्ताओं को आन्दोलन में आने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

इस सम्बन्ध में एक बात उल्लेखनीय है. कहीं कहीं सहकारी समितियों का उपयोग डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, प्रान्तीय कौंसिल, तथा असेम्बली के चुनाव सम्बन्धी प्रचार में किया जाने लगा है। सेन्ट्रल बैंकों के डायरेक्टर तथा अन्य प्रभावशाली कार्यकर्ता अपने चुनाव में समितियों का उपयोग करते हैं। पंजाब के रजिस्ट्रार महोदय ने पिछली रिपोर्टों में इस ओर संकेत किया था। अभी यह रोग अधिक नहीं है, किन्तु सम्भव है कि भविष्य में यह भयंकर रूप धारण करे, इस कारण अभी से इसे रोकने का प्रयत्न होना चाहिये। पिछले वर्षों में कहीं-कहीं सहकारी समितियों के द्वारा सरकार ने राष्ट्रीय आन्दोलनों के विरुद्ध प्रचार-कार्य कराया था, उससे आन्दोलन ने जनता की सहानुभूति खो दी।

सहकारिता आन्दोलन की असफलता का एक कारण सहकारी समिति के साथ असभ्य व्यवहार होना भी है। बैंक के कर्मचारी उस गाँव में पहुँचते हैं, जिसके सदस्यों पर ऋण होता है। बैंक के मैनेजर अथवा निरीक्षक (सुपरवाइजर) मालिक की भाँति बैठते हैं, और सदस्य हाथ बांध कर दूर खड़ा रहता है; जो आदमी समय पर रुपया अदा नहीं कर पाते उन पर फटकार पड़ती है, गाली दी जाती है, और कभी कभी पिटवाया भी जाता है। इससे दो बड़ी हानियां होती हैं, एक तो सदस्य की दृष्टि में समिति का मूल्य नहीं रहता। वह महाजन की तरह ही बैंक के कर्मचारी को ऋण-दाता समझता है। दूसरे, जो किसान यह सब देखते हैं, वे यह समझते हैं कि समिति से तो महाजन ही अच्छा है, क्योंकि वह सब के सामने अपमानित तो नहीं करता। यही कारण है कि सहकारिता आन्दोलन अभी तक जनता को आकर्षित नहीं कर सका। पंजाब तथा मदरास को छोड़कर अन्य प्रान्तों में सहकारी साख समितियों ने महाजन का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित नहीं किया। महाजन की स्थिति गाँवों में उतनी ही मजबूत है, जैसी पहले थी; वह सहकारी साख समितियों से भयभीत नहीं हुआ है। इन सब बातों से स्पष्ट हो जाता है कि आन्दोलन में जीवन-शक्ति की कमी है।

भारतीय सहकारिता अन्दोलन की एक कमी यह भी है कि आन्दोलन साख-समितियों तक ही सीमित रहा। गैर-साख-समितियां संख्या में बहुत कम हैं। बात यह थी कि ग्रामीण ऋण की इतनी भयङ्कर समस्या सामने उपस्थित थी कि आरम्भ में केवल साख-समितियाँ ही स्थापित करने का प्रयत्न किया गया और आज कार्यकर्त्ताओं का ध्यान साख-समितियों की ओर ही अधिक है। भारतवर्ष जैसे कृषि-प्रधान देश में साख समितियाँ अत्यन्त आवश्यक है, उनके महत्त्व को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता, किन्तु गैर-साख समितियों की भी उतनी ही आवश्यकता है। गाँव का महाजन किसान को केवल ऋण ही नहीं देता

वह गाँव का दूकानदार भी होता है, अर्थात् किसान के हाथ आवश्यक वस्तुएँ बेचता है और उसके खेतों की पैदावार खरीदता है। जब तक सहकारी समितियाँ क्रय-विक्रय को भी अपने हाथ में लेकर महाजन को उसके स्थान से हटा नहीं देतीं, तब तक महाजन का बल नष्ट नहीं होगा और न किसान की आर्थिक दशा ही सुधर सकती है गृह-उद्योग धंधों में लगे हुए कारीगरों के लिये भी उत्पादक समितियों की नितान्त आवश्यकता है। हर्ष का विषय है कि कुछ दिनों से सहकारिता विभाग तथा अन्य कार्यकर्त्ता गैर-साख-समितियों की आवश्यकता का अनुभव करने लगे हैं और इस ओर भी प्रयत्न किया जा रहा है।

एक दोष, जो आन्दोलन में घुस आया है. कागजी लेन-देन है। जब समिति के सदस्य रुपया अदा नहीं करते तो समिति से उतना ही ऋण ले लेते हैं, जितनी किस्त उन्हें चुकानी होती है। बैंक के बही-खाते में पिछली किस्त चुकती दिखा दी जाती है और उतना ही रुपया नये ऋण के रूप में दिखला दिया जाता है। इसका अर्थ यह है कि रुपया वसूल नहीं होता, केवल लिखापढ़ी कर ली जाती है, और अधिकारियों को धोखा दिया जाता है।

आंदोलन की निर्बलता का एक कारण यह भी है कि सहकारिता विभाग के कर्मचारी तथा आरगेनाइजर ऊँचे अधिकारियों की दृष्टि में अच्छे कार्यकर्त्ता साबित होने के लिये शीघ्रतापूर्वक बिना अधिक ध्यान दिये, समितियाँ स्थापित करते चले जाते हैं। कुछ समय उपरांत वे कर्मचारी दूसरे स्थान पर चले जाते हैं। जल्दी में संगठित समितियाँ ठीक तरह से कार्य नहीं करतीं, अन्त में दिवालिया हो जाती हैं। आन्दोलन पर इसका प्रभाव बुरा पड़ता है।

कहीं-कहीं पंचायत के सदस्य बेईमानी करते हैं, और कहीं-कहीं महाजन ही समिति को हथियाने का प्रबन्ध करता है, किन्तु अब यह दोष कम हो रहे हैं। परन्तु एक बात भयानक है, कहीं-कहीं

समिति के प्रभावशाली सदस्य समिति को हथिया लेते हैं और वे ही उससे अधिक लाभ उठाते हैं।

ऊपर लिखी हुई आलोचना से पाठक यह न समझ लें कि आन्दोलन से कोई लाभ ही नहीं हुआ है। यह ठीक है कि आन्दोलन अभी निर्बल है, दोष-पूर्ण संगठन तथा कार्यकर्त्ताओं की अकर्मण्यता के कारण यह अभी तक सबल नहीं हो सका है। फिर भी आंदोलन से देश को बहुत लाभ हुआ है। शाही कृषि कमीशन की सम्मति में "सहकारिता आंदोलन के विषय में जानकारी बढ़ रही है, मितव्ययिता को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। बैंकिंग के सिद्धांतों की शिक्षा दी जा रही है; जहाँ आन्दोलन की नींव दृढ़ है, वहां महाजन ने सूद की दर घटा दी है, तथा महाजन का प्रभुत्व कम हो गया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि किसानों की मनोवृत्तियाँ बदल रही हैं।" आन्दोलन के दोषों की ओर संकेत करते हुए कृषि-कमीशन ने कहा है कि आन्दोलन की आर्थिक दशा सन्तोषजनक है; हाँ, उसके सञ्चालन में बहुत से दोष हैं।

अभी तक सहकारिता का प्रचार बहुत कम हो पाया है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सहकारी साख समितियाँ ग्रामीण जनता को जितने ऋण की आवश्यकता होती है, उसका केवल पाँच फीसदी ऋण देती हैं। सहकारी साख-समितियों के सदस्यों को एक शिकायत यह रही है कि जब उनको रुपये की आवश्यकता होती है, तब उन्हें रुपया नहीं मिलता; लिखापढ़ी तथा जाँच में बहुत समय लग जाता है। किसान को समय पर रुपया न मिलने पर उसे बहुत कठिनाई होती है, इस कारण विवश होकर उसे महाजन से रुपया लेना पड़ता है।

भारतवर्ष में लगभग ७ लाख गाँव है, अधिकांश (६० प्रतिशत) जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। आज हमारे गाँवों की दशा अत्यन्त शोचनीय है, और उनमें रहनेवाली अधिकांश जनता व

जीवन निर्धनता, अज्ञान तथा गन्दगी से भरा हुआ है, उसका शोषण अत्यन्त निर्दयता से हो रहा है। ऐसी दशा में ग्रामीण जनता जीवित है, यही क्या कम आश्चर्य की बात है! आयरिश किसानों के उद्धार-कर्त्ता आयरलैंड में सहकारिता आन्दोलन के जन्म-दाता, सर होरेस प्लैंकट के शब्दों में किसान के उद्धार के लिये तीन वस्तुओं की आवश्यकता है:—अच्छी खेती, अच्छा जीवन तथा अच्छा कारोबार। भारतीय ग्रामीण को इनकी अत्यन्त आवश्यकता है।

जिन प्रांतों में सहकारी साख-समितियों को विशेष सफलता मिली है, उनमें उन्होंने किसान को उचित दर पर ऋण देने की व्यवस्था की है; यह नीचे दी हुई तालिका से स्पष्ट हो जावेगा।

आरम्भिक समितियाँ:—

सदस्यों से लिया जानेवाला सूद ७ से ६ प्रतिशत।
डिपाजिटों पर दिया जानेवाला सूद ४ से ६ प्रतिशत।
सेन्ट्रल बैंकों को दिया जाने वाला सूद ५ से ७ प्रतिशत।

सेन्ट्रल बैंक:—

डिपाजिटों पर दिया गया सूद ३ से ५ प्रतिशत।
प्रान्तीय बैंकों को दिया गया सूद ४ से ५ प्रतिशत।

प्रान्तीय बैंक:—

डिपाजिटों पर दिया गया सूद २ से ३ प्रतिशत।
इम्पीरियल बैंक को ऋण पर दिया गया सूद ३ प्रतिशत।

सहकारिता आन्दोलन ने अभी तक देश की बहुत कम जनसंख्या को छुआ है और अभी तक वह एक सबल आन्दोलन नहीं बन पाया है, यह नीचे दी हुई तालिका से स्पष्ट है।

प्रान्त	प्रति १००० व्यक्तियों पीछे; प्रारम्भिक सहकारी समितियों के सदस्य
आसाम	५.६
बंगाल	२१.४
बिहार	६.३
बम्बई	३०.९
मध्यप्रदेश	६.०
मदरास	२[illegible].०
उड़ीसा	१२.३
पंजाब	३६.४
उत्तरप्रदेश	१४.८
सिंध	[illegible]५.१
औसत	१९.०

हर्ष का विषय है कि कुछ दिनों से शिक्षित भारतीयों का ध्यान ग्राम जीवन को सुधारने की ओर गया है। किन्तु, ग्राम-संगठन-कार्य सहकारिता के बिना हो ही नहीं सकता। यदि हम चाहें कि हमारे ग्रामीण भाइयों की दशा सुधरे तो हमें सहकारिता आन्दोलन में लग जाना चाहिये। जो चमत्कार सहकारिता आन्दोलन ने आयरलैंड, जर्मनी और इटली में कर दिखलाया, वह भारतवर्ष में भी हो सकता है। यदि हमारा शिक्षित वर्ग विशेषकर नवयुवक समुदाय इस ओर लग जावे तो थोड़े समय में आन्दोलन गाँवों की काया पलट कर दे। अब हम संक्षेप में यहाँ यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे कि सहकारी समितियाँ किस प्रकार स्थापित की जा सकती हैं।

उत्साही कार्यकर्ता द्वारा सहयोग समिति की स्थापना— यदि कोई शिक्षित कार्यकर्ता गाँव में या शहर में सहकारी समिति की स्थापना करना चाहता है तो उसे नीचे लिखे अनुसार कार्य करना होगा—

(१) सर्वप्रथम कार्यकर्ता को उस गाँव या उस वर्ग की सामाजिक आर्थिक तथा अन्य समस्याओं को दृष्टि में रख कर यह तय करना चाहिए कि वह किस प्रकार की सहकारी समिति स्थापित करेगा; चकबन्दी समिति, साख समिति, या विक्रय समिति आदि। कौन-सी समिति किस गाँव के लिए अधिक आवश्यक है, यह उस गाँव की स्थानीय बातों पर निर्भर रहेगी।

(२) इसका निर्णय कर लेने के उपरान्त कि कौन सी समिति स्थापित की जाय, कार्यकर्ता को चाहिए कि वह गाँव वालों को उस समिति का उद्देश्य, उसकी स्थापना से होनेवाला लाभ और उसके सदस्यों को क्या करना होगा, इत्यादि बातें भलो भाँति समझावे। समिति का विधान कैसा होगा, प्रत्येक सदस्य का क्या कर्तव्य होगा; उसकी जिम्मेदारी क्या होगी, यह भी बतला देना आवश्यक है। इस प्रकार उसे २५ या ३० सदस्यों को तैयार करना चाहिए। यद्यपि कानून के अनुसार केवल १० सदस्य ही आवश्यक है, परन्तु व्यवहार में सहकारिता विभाग समिति की स्थापना के लिए २५ सदस्य आवश्यक समझता है।

(३) जब सदस्य तैयार हो जावें तो कार्यकर्ता को चाहिये कि वह उस जिले के सहकारी विभाग के इन्स्पेक्टर या आरगेनाइजर से मिले और उसकी सहायता से उस समिति के उपनियम इत्यादि बनाले। उपनियम बनाने की सबसे सरल विधि यह है कि कार्यकर्ता सहकारिता विभाग के जिला इन्स्पेक्टर से या बैंक के दफ्तर से 'कोआपरेटिव मेनुअल' नामक पुस्तक ले ले। उस पुस्तक में सब प्रकार की समितियों के नमूने के उपनियम दिये रहते हैं। मेनुअल में से कार्यकर्ता विधान और उपनियमों की नकल कर लें और आवश्यकता हो तो उसमें कुछ परिवर्तन करले।

(४) इतना कर चुकने के उपरान्त कार्यकर्ता को उस प्रान्त या राज्य के सहकारिता विभाग के सर्वोच्च अधिकारी रजिस्ट्रार के पास

इस आशय का प्रार्थनापत्र भेजना चाहिए कि निम्नलिखित व्यक्ति अमुक प्रकार की सहकारी समिति की स्थापना करना चाहते हैं। प्रस्तावित समिति का विधान तथा उपनियम साथ में भेजना चाहिए। समिति के होनेवाले सदस्यों के नाम, उपनियमों की नकल, गाँव, जिला इत्यादि सभी लिख भेजना चाहिए।

(५) रजिस्ट्रार उस जिले के सहकारिता विभाग के इंस्पेक्टर को आदेश देगा कि वह जाकर जाँच करे कि उस गांव के लोग वास्तव में सहकारी समिति की स्थापना करना चाहते हैं, और वे उस प्रकार की समिति के उद्देश्य या लाभों को समझते हैं या नहीं। जब इंस्पेक्टर जाँच कर लेता है और अनुकूल रिपोर्ट दे देता है तो रजिस्ट्रार समिति को रजिस्टर कर लेता है, रजिस्टर हो जाने के उपरान्त समिति काम करने लगती है।

रजिस्टर होने पर समिति की साधारण सभा बुलाई जाती है, जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त पंच, सरपञ्च तथा मन्त्री का चुनाव होता है और कार्य आरम्भ हो जाता है।

कार्य किस प्रकार किया जावे, हिसाब किस प्रकार रखा जावे, तथा अन्य प्रकार की लिखापढ़ी किस प्रकार की जावे, इसकी शिक्षा सहकारिता विभाग के कर्मचारी, आरगनाइजर और इंस्पेक्टर देते है। यह उनका मुख्य कार्य है, उसकी कोई चिन्ता न करनी चाहिए।

समिति का हिसाब रखने के लिये तथा अन्य कार्यों के जो रजिस्टर इत्यादि होते हैं, वे सहकारिता विभाग के द्वारा खरीदे जा सकते हैं।

(६) कार्यकर्ता को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि सहकारी समिति की सफलता उसके सदस्यों में सहकारिता की भावना के जागृत होने पर निर्भर है। अतएव उसे सदस्यों का सदैव समिति के कार्य में भाग लेने और उसके उद्देश्य-प्रचार में सहयोग प्रदान करने के लिये प्रोत्साहित करते रहना चाहिए, उसे सदस्यों पर अपनी सम्मति लादने

की चेष्टा न करनी चाहिए, वरन् सब सदस्यों को अपनी स्वतन्त्र सम्मति प्रकट करने देना चाहिए। सदस्यों में यह भावना जागृत होना चाहिए कि समिति उनकी अपनी संस्था है, और वे हैं उसके मालिक। स्वावलम्बन की भावना के जगाये बिना सहकारिता आन्दोलन को सफलता प्राप्त नहीं हो सकती।

(७) जब कार्यकर्ता कोई समिति खोलना चाहेगा तो महाजन, जमींदार, पटवारी तथा अन्य स्थिर स्वार्थ वाले लोग उसका विरोध करेंगे। इसलिए कार्यकर्ता को बड़ी सावधानी से कार्य करना चाहिए। लोगों को सब बातें समझाकर समिति का सदस्य बनने के लिए तैयार करना उसका काम है। आवश्यकता इस बात की है कि जहाँ तक हो सके आरम्भ में जब तक कि समिति का संगठन दृढ़ न हो जावे, स्थिर स्वार्थ वाले के विरोध को बचाया जावे।

यदि कार्यकर्ता समिति को स्थापित करने में इतना झंझट तथा लिखी-पढ़ी न करना चाहे तो एक और भी सरल उपाय है। वह गाँव वालों से बातचीत करके उन्हें समझा बुझाकर समिति का सदस्य बनाने के लिए तैयार कर ले। फिर यदि वह चाहे तो उस सर्कल या जिले के कोआपरेटिव इंस्पेक्टर से मिल ले या उसको पत्र लिखकर गाँव की आवश्यकता तथा गाँव वालों को रजामंदी बताकर उससे एक समिति उसके गाँव में स्थापित करने के लिये कहे। सहकारिता विभाग के कर्मचारियों का यह मुख्य कार्य है। अतएव जैसे ही इंस्पेक्टर को यह सूचना मिलेगी कि अमुक गाँव में समिति के स्थापित होने की सम्भावना है, वह उस क्षेत्र के आरगेनाइजर को उस गाँव में भेजेगा। आरगेनाइजर पहले इस बात की जाँच करेगा कि उस गाँव में उस समिति के सफल होने की सम्भावना है या नहीं। फिर वह वहाँ के निवासियों को समिति के उद्देश्य, उसके सदस्य होने से लाभ तथा

उनके कर्तव्य समझाकर उन्हें सदस्य बनने के लिये प्रोत्साहित करेगा।

जब आरगेनाइजर सब प्रारंभिक कार्यवाही कर चुकेगा तो वह इंस्पेक्टर को सूचित कर देगा कि समिति स्थापित कर दी जाय। इंस्पेक्टर स्वयं उस गाँव में जाकर एक बार जाँच कर लेगा, फिर रजिस्ट्रार को अनुकूल रिपोर्ट कर देगा और समिति रजिस्टर कर ली जावेगी। तदुपरान्त समिति की देखभाल सहकारी विभाग के कर्मचारी करते रहेंगे। वे पंचों को सब प्रकार का परामर्श और सहायता देते रहते हैं।

यदि अशिक्षित ग्रामीण व्यक्ति अपने गाँव में समिति खुलवाना चाहें तो उन्हें एक प्रार्थनापत्र इस आशय का कि हम अपने गाँव में अमुक सहकारी समिति खुलवाना चाहते हैं, सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रार या उस जिले के इंस्पेक्टर को भेजना चाहिए। अच्छा हो कि उनमें से कोई एक आदमी इंस्पेक्टर से स्वयं मिलकर उसे सब बातें बतला दे। यदि सहकारिता विभाग के कर्मचारियों को विश्वास हो गया कि उस गाँव में समिति सफलतापूर्वक स्थापित की जा सकती हैं तो वे उसे स्थापित कर देंगे।

सहकारिता आन्दोलन का भविष्य—सच तो यह है कि सहकारिता आंदोलन की सफलता का अनुमान समितियों की या उनके सदस्यों की संख्या और कार्यशील पूँजी से नहीं लगाया जा सकता। उसका अनुमान तो केवल इससे ही हो सकता है कि जिन लोगों की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए उसको देश में चलाया गया है,

उनकी दशा कुछ सुधर रही है या नहीं। जब तक कि सहकारिता आंदोलन ग्रामीण जनता, कारीगर और कारखानों के मजदूरों की आर्थिक स्थिति में पर्याप्त सुधार करने में सफल नहीं होता, तब तक वह सफल नहीं कहा जा सकता। यह आन्दोलन तब तक इस देश में अधिक उन्नति नहीं कर सकता, जब तक कि साधारण ग्रामीण का बजट घाटे का बजट रहेगा। जहाँ प्रतिवर्ष घाटा ही घाटा हो, खर्च से आमदनी कम हो वहाँ सहकारिता आन्दोलन उस घाटे को मुनाफे में कैसे बदल सकता है।

सच तो यह है कि साख आन्दोलन खेती की उन्नति के साथ बंधा हुआ है। जब तक खेती का धधा नहीं पनपता, तब तक सहकारिता आन्दोलन भी नहीं पनप सकता। आज तो भारतीय किसान इस लिए ऋण लेता है कि बिना ऋण लिए उसका काम ही नहीं चल सकता। अतएव जब तक उसकी अर्थिक स्थिति को नहीं संभाला जाता, तब तक उसको ऋणी होने से नहीं बचाया जा सकता। किसान की आर्थिक स्थिति को सम्हालने के लिए देश की अर्थनीति में मौलिक परिवर्तन होने की आवश्यकता है और यह तभी सम्भव है जब जनता और सरकार के आर्थिक और राजनीतिक स्वार्थ एक हो। ऐसा होने पर ही सहकारिता आन्दोलन पूर्णतया सफल हो सकता है।

सहकारी समितियों सम्बन्धी आँकड़े

प्रान्त या राज्य	केन्द्रीय समितियाँ	सुपरवाइजिंग और गारंटी यूनियन	कृषि समितियाँ	गैर कृषि समितियाँ
मद्रास	३१	२५८	११,८३७	२,९३७
बम्बई	१४	१२४	४,३५६	१.१०६
बंगाल	१२०	—	३८.१९८	२,६३०
सिंध	१	१	९६३	१६०
विहार	४७	१	८,६१२	८०३
उड़ीसा	१५	—	२,५७६	२६०
उत्तरप्रदेश	६७	१	१६,५००	१,५००
पंजाब	१२१	—	२०,८१६	५८७३
मध्यप्रदेश	३६	६	४,८६६	३७५
आसाम	२०	—	१,१८६	२२९
सीमाप्रान्त	५	—	९३१	८१
कुर्ग	१	१३	२५८	४८
अजमेर-मेरवाड़ा	७	—	५८७	१७३
देहली	१	—	२६९	१३५
मैसूर राज्य	४	—	१.५२४	५६१
बड़ौदा	५०	२	१,०८९	२६२
हैदराबाद	४६	१	४,५१६	७२१
भूपाल	१५	२	३६०	६
ग्वालियर	१६	—	३,७४३	१०७
इंदौर	५	—	७९२	१९४
कशमीर	१५	—	२.८८६	८७८
ट्रावंकोर	१	२७	१,०८६	३५९
कोचीन	१	—	१०८	२००

गैर-साख कृषि सहकारी समितियाँ

प्रान्त या राज्य	क्रय-विक्रय समितियाँ	उत्पादन समितियाँ	उत्पादन और विक्रय स०	अन्य समितियाँ	समितियाँ का जोड़
मदरास ...	२२२ ...	— ...	१५५ ...	४४७ ...	८२४
बम्बई ...	६५ ...	१९ ...	१३७ ...	२२० ...	४४१
सिंध ...	२ ...	— ...	१२ ...	१ ...	१६
बंगाल ...	१०९ ...	१०२२ ...	८७२ ...	३४ ...	२,०३५
बिहार ...	५० ...	— ...	२,१६६ ...	— ...	२,२१६
उड़ीसा ...	१४ ...	— ...	९ ...	— ...	२३
उत्तरप्रदेश	२२ ...	१ ...	१.६५१ ...	३,८२३ ...	५,४९७
पंजाब ...	१६ ...	७४९ ...	२,५१९ ...	२८४ ...	३,५६८
मध्यप्रदेश	६४ ...	१७ ...	५ ...	— ...	८६
मैसूर ...	२७ ...	— ...	२१ ...	३३ ...	८१
बड़ौदा ...	१२ ...	१९ ...	५० ...	५९ ...	१२०
अन्य प्रदेश	२३ ...	३९ ...	३७० ...	५० ...	४८२
योग	६२६	१,८६४	७,९५८	४,९४१	१५,३९९

परिच्छेद—२२

सहकारी योजना समिति की रिपोर्ट

सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रारों के चौदहवें सम्मेलन ने एक प्रस्ताव के द्वारा भारत सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था कि याद युद्धोत्तर भारत के आर्थिक निर्माण में सहकारिता आन्दोलन को एक कार्यशील और सबल आन्दोलन बनना है और भारत में सहकारिता के आधार पर आर्थिक निर्माण होना है तो यह आवश्यक है कि एक सहकारी योजना तैयार की जावे और उसके लिये एक कमेटी बिठाई जावे। भारत सरकार ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और श्री सरिया की अध्यक्षता में एक योजना समिति बिठाई, जिसकी रिपोर्ट अभी हाल में प्रकाशित हुई है। भारत में सहकारिता आन्दोलन का भविष्य बहुत कुछ इस रिपोर्ट से सम्बन्धित है। इस रिपोर्ट के सुझाओं का आन्दोलन पर गहरा प्रभाव पड़ेगा और सहकारिता आन्दोलन का निर्माण रिपोर्ट द्वारा निर्धारित योजना के अनुसार होगा। रिपोर्ट की मुख्य-मुख्य बातें आगे दी जाती हैं।

प्रारम्भिक

१—सहकारिता आन्दोलन की उन्नति की योजना की सफलता के लिए उत्तरदायी जनतन्त्री सरकार की आवश्यकता है, जो सामाजिक तथा आर्थिक मामलों में अहस्तक्षेप नीति को त्याग कर सार्वजनिक हित के कार्यों को अपने हाथ में ले।

२—सहकारिता आन्दोलन की योजना बनाने का यह अर्थ नहीं है कि इस आन्दोलन के मूल सिद्धान्त अर्थात् सहकारी समिति के स्वेच्छा से सदस्य बनने की स्वतन्त्रता को छीन लिया जाय और

व्यक्तियों को समिति का सदस्य बनने के लिये विवश किया जाय। कमेटी का प्रस्ताव है कि किसी को उनकी इच्छा के विरुद्ध सहकारी समिति का सदस्य बनने के लिए विवश न किया जावे। फिर भी कुछ दशाओं में इस नियम को भंग करना पड़ा सकता है। उन कार्यों में जिनके द्वारा सब का समान हित है और जो अनिवार्य है यदि कोई व्यक्ति समिति का सदस्य नहीं होना चाहता तो उसे विवश किया जा सकता है. उदाहरण के लिये भूमि चकबन्दी समितियाँ, फसल रक्षक समितियाँ तथा सिंचाई समितियां। इन कामों के लिए यदि सहकारी समिति के सदस्य जो उस गाँव के दो-तिहाई हों, एक प्रस्ताव द्वारा योजना को स्वीकार कर लेते है तो वह योजना गैर-सदस्यों पर भी कानून द्वारा लागू हो जावेगी। इस बात का निर्णय करने के लिये कि अमुक योजना की अनिवार्य आवश्यकता है, उत्तरदायी व्यक्ति नियुक्त किये जावेंगे। परन्तु कमेटी का विश्वास है कि स्वतन्त्र भारत के उत्तर-दायी राष्ट्र निर्माणकारी विभाग के कर्मचारी प्रचार, शिक्षा प्रदर्शन और प्रोत्साहन द्वारा तथा गैर-सदस्यों को सुविधाएं न देकर उन्हें कानूनी दबाव डाले बिना सहकारिता आंदोलन में शामिल करने का प्रयत्न करेंगे।

३—देश की आर्थिक उन्नति करने का सहकारी समिति ही एक-मात्र उत्तम साधन है।

४- कमेटी की सम्मति है कि सहकारिता आन्दोलन के अभी तक अधिक सफल न होने के नीचे लिखे कारण है;—राज्य की अहस्तक्षेप अथवा उदासीन नीति, जनता का अशिक्षित होना, आन्दोलन का व्यक्ति के जीवन की सभी आर्थिक समस्याओं को एक साथ न लेना प्रारम्भक समिति का छोटी होना, और अवैतनिक कार्यकर्ताओं पर अधिक भरोसा रखना।

खेती की उन्नति

(१) प्रान्तीय सरकारों को भली प्रकार इस बात की जाँच करवा

लेनी चाहिए कि प्रान्तों में जो जोतने योग्य बंजर भूमि पड़ी है, उसमें से कितनी भूमि सरलता-पूर्वक जोती जा सकती है। कमेटी का मत है कि खेती की पैदावार में वृद्धि अधिक भूमि को जोत कर इतनी नहीं होगी, जितनी भूमि की पैदावार बढ़ाने से होगी।

(२) सहकारी समितियों के द्वारा अच्छे यन्त्रों और अच्छे बीज के प्रचार का काम कराना चाहिए। वे केवल अच्छे हल और बीज का वितरण और प्रचार ही न करें, खाद का वितरण भी करें। कृषि विभाग केवल अच्छे बीज, खाद, हल की खोज करे और उनका प्रचार करे, किन्तु वितरण का कार्य केवल सहकारी समितियाँ ही करें। गाँवों में ईंधन की लकड़ी के बन लगाने की योजना जंगल-विभाग तैयार करे, किन्तु उसको कार्य रूप में सहकारी समितियाँ परिणत करें।

(३) सिंचाई के मुख्य साधनों का निर्माण करना राज्य का कार्य है; किन्तु पानी देना, आबपाशी वसूल करना और बम्बों की मरम्मत करना सहकारी समितियों के हाथ में दे देना चाहिए। राज्य कुएँ खोदने के लिये जो सहायता देता है, वह सहकारी समितियों के द्वारा दी जानी चाहिए।

(४) भारत के आर्थिक निर्माण के लिये राज्य को सड़कों का विस्तार करना होगा। सड़कों को बनाने का काम राज्य करे किन्तु माल को तथा सवारियों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक लेजाने का काम यातायात सहकारी समितियों को करने दिया जाय। श्रम सहकारी समितियाँ स्थापित करके उन्हें सड़कें बनाने का ठेका दे दिया जाय।

(५) साख सहकारी समितियाँ केवल साख का प्रबंध करती है, परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि प्रारम्भिक सहकारी समितियाँ सदस्य के पूरे जीवन को छुएँ। उन्हें बहु-उद्देश्य सहकारी समितियाँ में परिणत कर दिया जाना चाहिये। किसी क्षेत्र के सभी व्यक्तियों को समिति का सदस्य बनने को प्रोत्साहित करना चाहिए, समिति के कम-से कम ५० सदस्य तो अवश्य हों, और उसका क्षेत्र तथा कार्य इतने

विस्तृत होने चाहिएँ कि वह समिति भली प्रकार चल सके और हानि की सम्भावना न रहे।

(६) जहाँ अपरिमित दायित्व सफल हुआ हो, वहाँ उसे हटाने की आवश्यकता नहीं हैं। परन्तु कमेटी की राय हैं कि प्रायः अपरिमित दायित्व से सहकारिता आन्दोलन की प्रगति रुकी है, इस कारण समितियां परिमित दायित्व वाली स्थापित की जावें और जो प्रारम्भिक समितियाँ अपरिमित दायित्व वाली हैं, उन्हें परिमित दायित्व वाली बना दिया जावे।

(७) इस बात का प्रयत्न करना चाहिये कि दस वर्ष में देश के ५० प्रतिशत गाँव और ३० प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या प्रारम्भिक सहकारी समितियों से सम्बन्धित हो जावें। प्रारम्भिक सहकारी समिति की न्यूनतम सदस्यता ५० होनी चाहिये। सरकार को पहले पांच वर्ष तक सभी प्रारम्भिक समितियों (नई और पुरानी) को उनका आधा प्रबंध-व्यय ग्रांट रूप में देना चाहिये।

(८) प्रत्येक ५० समितियों के पीछे दो सुपरवाइजर और एक आडिटर होना चाहिए; १०० समितियों के पीछे एक इंस्पेक्टर, १००० समितियों के पीछे एक असिस्टेंट रजिस्ट्रार, और एक रेवन्यू-डिवीजन में एक डिप्टी रजिस्ट्रार होना चाहिए।

(९) स्थायी रूप से खेत की पैदावार की वृद्धि के लिये बड़ी मात्रा में खेती करने की आवश्यकता होगी। भारतवर्ष में बड़ी मात्रा की खेती केवल सहकारी खेती के ही द्वारा सम्भव है, क्योंकि किसान को अपनी भूमि का स्वामित्व नहीं छोड़ना पड़ता। अतएव सहकारी खेती को प्रोत्साहन देना आवश्यक है।

(१०) जिस बंजर भूमि को राज्य खेती के लिये तोड़े और खेती के योग्य बनावे उस पर खेत-मज़दूरों के सहकारी खेत स्थापित कर दे। इन सहकारी संस्थाओं को खेती के यंत्र इत्यादि के लिये जिस पूँजी की आवश्यकता हो, वह राज्य दे। प्रत्येक जिले में सहकारी खेती-सुधार

समितियों का संगठन किया जाना चाहिये, और राज्य उन्हें विशेष तथा आर्थिक सहायता दे।

(११) फल तथा सरकारी की खेती की वृद्धि की जावे। कृषि-विभाग को यह निश्चय कर देना चाहिये कि कौनसी सब्जी या फल किस प्रदेश में भली भांति उत्पन्न हो सकता है; उसी का उस प्रदेश में प्रचार करना चाहिए। जहां-जहा फलों की पैदावर को बढ़ाने की चेष्टा की जावे, वहां वहां सहकारी फल-समितियों के द्वारा ही यह करना चाहिए। ये समितियां फल उत्पन्न करने के उत्तम तरीकों का प्रचार करें तथा उनकी बिक्री का प्रबन्ध करें, सदस्यों को फल उत्पन्न करने के लिये ऋण दें, और फलों को सुरक्षित रखने तथा उनके मुरब्बे तथा रस इत्यादि बनाने के लिये कारखाने भी खड़े करें।

प्रत्येक प्रांत में सहकारी विभाग एक फल-विशेषज्ञ रखे जो इन सहकारी समितियों को सलाह दे।

(१२) जिन गांवों में ऊसर भूमि हो वहाँ उस पर जंगल उत्पन्न करने के लिए जंगल-विभाग की सहायता से वृक्षों को पैदा करना चाहिये। इसके लिये सहकारी वन-समितियां स्थापित होनी चाहिएँ। जिन प्रदेशों में नदियों या बहनेवाले पानी से खेती की भूमि का कटाव होता हैं वहां उसे रोकने के लिये सहकारी समितियां स्थापित होनी चाहिएँ।

पशु-पालन

(१३) कमेटी की राय यह है कि अच्छे सांडों को उत्पन्न करना और उन्हें गांव में बांटना सरकार का काम होना चाहिये। इसके लिए राज्य पशुओं से नस्ल-सुधार कार्य स्थापित करे और घूमनेवाले रद्दी सांडों को कानून बनाकर नपुंसक करवादे।

(१४) प्रत्येक गांव में सहकारी समिति एक उत्तम सांड रखे। जब कोई गाय गाभिन कराई जावे तो सदस्य से फीस ली जावे; जब

उसके बच्चा हो तो भी कुछ लिया जा सकता है। यही नहीं, जब उत्तम नस्ल का बच्चा बेचा जावे तो समिति उससे कुछ कमीशन ले सकती है। इस प्रकार उत्तम सांड के रखने का व्यय निकल सकता है

अच्छी नस्ल के पशुओं को खरीदने के लिये सदस्यों को सरकार सहकारी समितियों के द्वारा ऋण दे।

खानबदोश फिरकों की सहकारी समितियां स्थापित की जावें जो उनके पशुओं की नस्ल को सुधारने का काम करें उन्हें अपनी समितियां स्थापित करने के लिए प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से प्रान्तीय सरकार अथवा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड उन्हें चरागाह की भूमि दें और बुल, फार्म उन्हें उत्तम सांड दे।

ग्राम सहकारी समितियों को चरागाह की भूमि की पट्टी लेना चाहिए और फार्म लेकर उसमें सदस्यों के पशुओं के नियंत्रित ढंग से चरने की व्यवस्था करना चाहिए, जिससे उन चरागाहों में अधिक से-अधिक चारा उत्पन्न हो सके।

ग्राम सहकारी समितियों को 'साइलेज़' प्रणाली से चारे को सुरक्षित रखने की व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे गरमियों में चारे की कमी न रहे। जंगल-विभाग इन समितियों को जंगल से घास मुफ्त लेने दे, जिसको वह 'साइलेज' में परिणत कर सकें।

पशु चिकित्सा विभाग को इन समितियों के द्वारा पशुओं के रोगों की रोक थाम करने की व्यवस्था करनी चाहिए।

(१५) प्रत्येक शहर या बड़े कस्बे के आसपास, जिसकी आबादी ३००० की हो, तीस मील के घेरे में पड़नेवाले गांवों में दूध-सहकारी समितियाँ स्थापित की जानी चाहिएँ। यदि किसी ग्राम सहकारी समिति के अधिकांश सदस्य दूध बेचना चाहते हों तो वह समिति भी दूध इकट्ठा करने की एजंसी बनाई जा सकती है। जिस गाँव में इस प्रकार

दूध इकट्ठा करने की एजंसी न हो, एक पृथक् दूध-समिति स्थापित की जानी चाहिए।

सदस्यों के पशुओं का दूध समिति के मंत्री के सामने या दूसरे सदस्यों के सामने दुहना होगा। सदस्यों को पशुओं को खरीदने तथा चारा इत्यादि लेने के लिए जो धन चाहिए, उसे वे गांव सहकारी समिति से पा सकेंगे।

ग्राम समितियां एक दूध-यूनियन से सम्बन्धित होंगी इस यूनियन का मुख्य कार्य गाँव से दूध इकट्ठा करना, उसको शहरों तक पहुँचाना और उसकी बिक्री करना होगा। प्रान्तीय सरकार को इन यूनियनों को आर्थिक सहायता देनी होगी।

खेती की पैदावार की बिक्री

(१६) खेती की पैदावार की बिक्री के लिए किसान को उचित सुविधाएँ नहीं है। उसकी कठिनाइयों को दूर करने के लिए सहकारी बिक्री-समितियों की स्थापना आवश्यक हैं। ऐसा प्रयत्न होना चाहिए कि १० वर्ष के अन्दर देश की २५ प्रतिशत पैदावार की बिक्री सहकारी समितियों द्वारा होने लगे। उसके लिए देश में २००० विक्रय समितियां, प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय समिति तथा एक अखिल भारतवर्षीय एसोसियेशन की स्थापना होनी चाहिए। यह समितियां पैदावार को इकट्ठा करने, भरकर रखने, उनकी ग्रेडिंग करने उनको एक स्थान से दूसरे स्थान तक लेजाने तथा उनके बेचने का प्रबंध करें।

कमेटी की राय है कि साख खेती की पैदावार को बिक्री को सम्बंधित कर देना चाहिए इसके लिए आवश्यक है कि गाँव सहकारी समिति ऋण देते समय शर्त लगादे कि सदस्य को अपनी पैदावार समिति के द्वारा ही बेचनी होगी। इस प्रकार गाँव की प्रारम्भिक सहकारी समिति गाँव की पैदावार को इकट्ठी कर लेगी, और उसके ऊपर सदस्यों को कुछ पेशगी रुपया दे देगी।

देश में जो में २००० मंडियाँ हैं उनमें एक मार्केटिंग समिति हो, जिसका मुख्य कार्य होगा कि वह अपनी सम्बन्धित समितियों की पैदावार अच्छे मूल्य पर बेचने का प्रबन्ध करे। यह समिति पैदावार को इकट्ठा करने उसको भर कर रखने तथा उसकी ग्रेडिंग कराने का भी प्रबन्ध करे।

प्रत्येक मार्केटिंग समिति की हिस्सा-पूँजी कम से कम ३०,००० रु० होनी चाहिए। प्रत्येक प्रारम्भिक गाँव समिति को उसके हिस्से खरीदने होंगे। पैदावार की ग्रेडिंग के लिए सरकार मार्केटिंग समिति को कृषि-विभाग के एक इंस्पेक्टर की सेवाएँ देगी। आवश्यकता होने पर वह सोसायटी पैदावार सम्बन्धी कुछ क्रियायें कराने के लिये पेंच इत्यादि भी खड़ा करेगी। इसके लिए जो पूँजी आवश्यक हो, वह सरकार ऋण रूप में देगी।

इन मार्केटिंग समितियों की देखभाल तथा नियंत्रण करने के लिए तथा उनकी सहायता करने के लिए एक प्रान्तीय मार्केटिंग-एसोसियेशन की स्थापना आवश्यक होगी। यह प्रान्तीय एसोसियेसन अन्तर्प्रान्तीय व्यापार तथा विदेशों को निर्यात करेगी, तथा प्रारम्भिक सहकारी समितियों तथा मार्केटिंग समितियों को बाज़ार भाव तथा अन्य आवश्यक बातों की जानकारी कराती रहेगी। प्रान्तीय सरकार को इसे गोदाम या भंडार बनाने के लिए ग्रांट देनी होगी तथा पांच वर्ष तक वार्षिक सहायता देनी होगी। एसोसियेशन के सदस्य ये होंगे :— प्रारम्भिक सहकारी समितियां; मार्केटिंग एसोसियेशन, सेन्ट्रल बैंक, तथा व्यक्ति।

प्रान्तीय मार्केटिंग एसोसियेशनों के कार्य का नियंत्रण करने, उनका एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करने तथा अन्य देशों के मार्केटिंग संगठनों से संबन्ध स्थापित करने और आवश्यक जानकारी देने के लिए एक अखिल भारतीय मार्केटिंग एसोसियेशन की आवश्यकता होगी।

(१७) कृषि-साख—कृषि साख समितियों को अपना कार्य केवल

साख देने तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए वरन् अन्य कार्य भी करना चाहिए।

कमेटी का यह दृढ़ विचार है कि गैडगिल कमेटी द्वारा प्रस्तावित कृषि साख संघ (कारपोरेशन) की कोई आवश्यकता नहीं है, प्रान्तीय सहकारी बैंक तथा सैन्ट्रल बैंक खेती के धंधे की पूँजी की आवश्यकताओं को भली भाँति पूरा कर सकते हैं। हाँ, प्रान्तीय बैंक को पुनः बड़े पैमाने पर संगठित करना होगा; राज्य को उनके हिस्से खरीद कर और कम सूद पर ऋण देकर उनकी यथेष्ट सहायता करनी होगी, जिससे प्रारम्भिक सहकारी समितियाँ किसान को थोड़े समय के लिए सवा छः प्रतिशत, तथा लम्बे समय के लिए चार प्रतिशत सूद पर रुपया उधार दे सके।

(१८) गृह-उद्योग-धंधे तथा ग्रामीण धंधे—कमेटी की राय में भूमि पर आबादी के भार को कम करने तथा गृह उद्योग धंधों की उन्नति करने के लिए यह आवश्यक है कि चीन की तरह भारत में भी औद्योगिक सहकारी समितियाँ स्थापित की जाय। इसके लिए प्रत्येक प्रान्त में एक प्रादेशिक औद्योगिक एजंसी स्थापित होनी चाहिए। जहाँ जहाँ औद्योगिक सहकारी समितियाँ स्थापित की जायँगी, उनका सम्बन्ध इस प्रादेशिक औद्योगिक एजंसी से कर दिया जावेगा। प्रादेशिक एजंसी एक औद्योगिक उन्नति करनेवाला अफसर नियुक्त करेगी और एक बोर्ड स्थापित करेगी, जो एजंसी की औद्योगिक नीति निर्धारित करेगा और सलाहकारी मंडल का काम करेगा।

प्रादेशिक औद्योगिक एजन्सी पहले यह निर्धारित करेगी कि किन गाँवों में कौनसे गृह उद्योग-धंधे स्थापित करने चाहिएँ। यदि उस प्रदेश में जल-विद्युत की व्यवस्था होगी तो वह कारीगरों को बिजली के मोटर मोल लेकर छोटी छोटी हल्की मशीनों के द्वारा आधुनिक ढंग से वस्तुओं को तैयार करने के लिए प्रोत्साहित करेगी। उदाहरण के लिए यदि किन्हीं गाँवों में जुलाहे और कोरी अधिक रहते हैं तो वहाँ बुनकर समिति

स्थापित की जावेगी, और जुलाहों को बिजली के छोटे मोटर दिलाकर छोटे-छोटे पावर-लूमों (शक्ति-संचालित कर्घों) का प्रचार किया जावेगा।

यदि प्रादेशिक एजन्सी समझे कि एक क्षेत्र में कपड़ा बुनने के धन्धे की यथेष्ट उन्नति हो गई है, वहाँ औद्योगिक सहकारी समितियाँ स्थापित हो गई है और सूत की बहुत अधिक आवश्यकता है तो वह उस प्रदेश में सूत कातने की मिल खड़ी कर सकती है। प्रत्येक बुनकर समिति उसके हिस्से मोल लेगी। सरकार प्रादेशिक एजन्सी को आवश्यक पूँजी ऋण स्वरूप दे।

जब औद्योगिक सहकारी समितियाँ बलवान हो जावें और सफलता-पूर्वक कार्य करने लगें तो उनका एक स्वतंत्र संगठन (फेडरेशन) बना दिया जावे, जो प्रादेशिक एजन्सी के कार्य करे।

संक्षेप में फेडरेशन कच्चे माल की व्यवस्था करेगी, अच्छे और वैज्ञानिक यंत्रों का प्रचार करेगी तथा तैयार माल की बिक्री का प्रबन्ध करेगी। प्रादेशिक एजन्सी की अधीनता में तथा औद्योगिक उन्नति करने वाले अफसर की देखरेख में डिप्टी अफसर रखे जावेंगे प्रान्त का एक भाग सौंप दिया जावेगा। प्रत्येक डिप्टी अफसर की अधीनता में कुछ कार्यकर्ता होंगे।

मज़दूरों की सरकारी समितियाँ

रेल-मार्ग को बनाने, सड़कों को बनाने तथा मरम्मत करने, नहरों तथा बांधों के बनवाने, भूमि को समतल करने तथा अन्य ऐसे ही कार्यों को करवाने में मजदूरों की सहकारी समितियों का खूब उपयोग हो सकता है। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार के मज़दूरों की सहकारी समितियाँ स्थापित कर दी जावें, जो काम का ठेका ले लिया करे। सरकार म्युनिसपेलटियों तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्डों को चाहिए कि वे इन मजदूर सहकारी समितियों को प्राथमिकता दें।

सार्वजनिक निर्माण विभाग को ठेके टेन्डर से न देकर इन मज़दूर सहकारी समितियों को देने चाहिए।

सहकारी उपभोक्ता स्टोर—कमेटी की राय में प्रत्येक गांव में एक उपभोक्ता स्टोर होना चाहिए। यदि यह सम्भव न हो तो गांव की प्रारम्भिक सहकारी समिति को उसका भी कार्य करना चाहिये। यदि गांव की प्रारम्भिक सहकारी समिति ही स्टोर का भी काम करे तो उसे साख विभाग तथा स्टोर विभाग पृथक् रखना चाहिए और केवल उन्हीं वस्तुओं को बेचना चाहिये, जिनकी प्रतिदिन आवश्यकता पड़ती है। प्रारम्भिक सहकारी समिति सदस्य को जो वस्तुएँ बेचे, वे नकद मूल्य पर दे, अथवा उस पैदावार के एवज में दे, जो सदस्य ने समिति के पास रखी है। यदि वस्तुएँ उधार दी जायँ तो उनका मूल्य तथा सदस्य का ऋण दोनों मिलाकर सदस्य की निर्धारित की हुई साख से अधिक न होने चाहिएँ। प्रारम्भिक सहकारी समिति गैर-सदस्यों को भी वस्तुएँ बेचे, पर बोनस (लाभ) केवल सदस्यों को ही दे। सदस्यों में मितव्ययिता की भावना जागृत करने के लिये समिति को चाहिये कि उन्हें लाभ की समिति में जमा करने के लिये प्रोत्साहित करे।

शहरों और कस्बों में राकडेल स्टोरों के ढंग के सहकारी स्टोरों की स्थापना होनी चाहिये। प्रयत्न यह होना चाहिए कि ५००० व्यक्तियों के पीछे एक स्टोर हो। पहले पांच वर्ष तक इन स्टोरों के चलाने में जो व्यय हो उसका आधा प्रान्तीय सरकार दे।

प्रत्येक पचास शहरी स्टोरों तथा ग्रामीण समितियों के लिये एक केन्द्रीय समिति की स्थापना की जावे। पांच वर्ष तक सरकार केन्द्रीय समिति के आधे व्यय को स्वयं सहन करे।

सहकारी स्टोरों की देखभाल करने, उनकी सहायता करने, तथा उनका परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने के लिये प्रान्तीय उपभोक्ता समिति की स्थापना आवश्यक होगी। यह समिति अन्तर्प्रान्तीय व्यापार करेगी

तथा अपने से संबन्धित स्टोरों तथा समितियों को आवश्यक जानकारी देगी।

इसके अतिरिक्त कमेटी ने नगर सहकारी बैंकों, सहकारी बीमा कम्पनियों, सहकारी गृह-समितियों, रहनसहन-सुधार समितियों तथा स्वास्थ्य और चिकित्सा का प्रबन्ध करनेवाला समितियों की स्थापना पर भी जोर दिया है।

कमेटी के एक सदस्य प्रो० हीरालाल काजी ने, जो भारत में सहकारिता विषय के बड़े विद्वान हैं, कमेटी से एक बात पर मतभेद प्रगट किया है। उनका कहना है कि भारतवर्ष में सहकारिता-आन्दोलन की असफलता के मुख्य कारण की ओर कमेटी ने ध्यान ही नहीं दिया। उनकी राय में असफलता का मुख्य कारण यह है कि सहकारिता आंदोलन एक आन्दोलन न होकर एक सरकारी नीति बन गया है। रजिस्ट्रार उसका सर्वेसर्वा है और सरकारी कर्मचारी ही उसको चलाते हैं। श्री काजी का कहना है कि जब तक हम आन्दोलन को सरकारी कर्मचारियों के प्रभाव से सर्वथा मुक्त नहीं कर देते तब तक आन्दोलन सबल और सफल नहीं बन सकता।

तेइसवाँ परिच्छेद

कृषि सम्बधी साख

कृषि सम्बंधी साख का अध्ययन करने के लिए पिछले वर्षों में बहुत सी कमेटियां बिठाई गईं। अभी कुछ समय हुआ प्रोफेसर गैडगिल की अध्यक्षता में एक कमेटी कृषि सम्बंधी साख का पुनः अध्ययन करने के लिए बिठाई गई। गैडगिल कमेटी ने ग्रामीण ऋण तथा कृषि सम्बंधी साख का गहरा अध्ययन किया और इस सम्बंध में अपनी सिफारिशें सरकार के सामने रक्खी हैं।

गैडगिल कमेटी का मत है कि भारत में कृषि साख के लिए तब तक कोई उचित और उपयोगी प्रणाली नहीं निकाली जा सकती जब तक कि कृषि के धंधे की सभी आर्थिक समस्याओं को हल न किया जावे। इसके लिए यह आवश्यक होगा कि खेती और उद्योग धंधों में जनसंख्या का उचित विभाजन हो आर्थिक जोतों पर खेती की जावे खेती की पैदावार का मूल्य लाभदायक स्तर पर रक्खा जावे, सिंचाई और यातायात के साधन उपलब्ध किए जावें तथा खेती के साथ सहायक धंधों का भी समावेश किया जावे। इसके अतिरिक्त इस बात की भी आवश्यकता है कि ग्रामीण ऋण को भी दूर किया जावे क्योंकि उसका भार खेती पर बहुत है और उससे किसान की उत्पादन शक्ति कम होती है।

गैडगिल कमेटी का मत है कि भारत के कुछ प्रदेशों में समय समय पर वर्षा की कमी अथवा बहुतायत से फसल नष्ट हो जाती है। ऐसे प्रदेशों में फसलें नष्ट हो जाने पर खेती के धंधे को पूंजी की सहायता की आवश्यकता होगी कुछ प्रदेश ऐसे हैं जहाँ कि फसलें एक नियमित समय के अन्तर पर लगातार नष्ट हो जात हैं। ऐसे प्रदेश

के लिए इस बात की आवश्यकता होगी कि उस प्रदेश के आर्थिक ढाँचे में मूलभूत परिवर्तन किया जावे और वहाँ के आर्थिक ढांचे का इस प्रकार पुनर्निर्माण किया जावे कि वहाँ का किसान आर्थिक दृष्टि से दिवालिया न रहे। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय ग्रामों का जो घाटे का अर्थशास्त्र है उसको संतुलित अर्थशास्त्र में बदलना होगा तभी कृषि सम्बंधी साख का स्थायी प्रबंध हो सकेगा। कृषि सम्बंधी साख का उचित प्रबंध करने के लिए गैडगिल कमेटी ने नीचे लिखी सिफारिशें की हैं।

(१) महाजनों के लेन देन को नियंत्रित किया जावे। गैडगिल कमेटी का कहना है कि आज महाजन ग्रामीण साख का प्रबंध करने वाली संस्थाओं में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है अतएव उसको अभी निकट भविष्य में हटाया नहीं जा सकता। परन्तु महाजन बहुत अधिक सूद लेता है तथा अन्य प्रकार से कर्जदार का शोषण करता है। अतएव इस बात की आवश्यकता है कि उसका नियंत्रण किया जावे।

(२) देश की आवश्यकता को देखते हुए अधिकाधिक साख देने वाली संस्थाओं की स्थापना आवश्यक है साख देने वाली संस्थाओं को पनपाने के लिए यह आवश्यक है कि खेती की पैदावार की बिक्री का कानून द्वारा नियंत्रित किया जाय और लाइसैंस प्राप्त गोदामों को स्थापित किया जावे जिनकी रसीद विनिमय साध्य पूर्जी के रूप में साख देने वाली संस्थायें स्वीकार करें। यदि ऐसा होगा तो व्यापारिक बैङ्क भी खेती की पैदावार की बिक्री के लिए अधिकाधिक आर्थिक सहायता प्रदान कर सकेंगे। उदाहरण के लिए यदि एक किसान १०० मन गेहूँ गोदाम में रखकर एक रसीद ले लेता है और उस रसीद का जिसके पक्ष में बयान करदे वही उस गेहूँ का मालिक हो जावे तो उस रसीद को किसी भी बैंक के पास रखकर किसान थोड़े समय के लिए ऋण भी ले सकता है।

(३) गैडगिल कमेटी का मत है कि सहकारी साख आन्दोलन को ४६ वर्ष हो गए किन्तु अभी तक वह इस योग्य नहीं हुआ है कि ग्रामीण साख का उचित प्रबंध कर सके। अतएव इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि एक नई साख संस्था को जन्म दिया जावे।

(४ गैडगिल कमेटी का मत था कि गांवों में साख देने के लिए एक अखिल भारतीय कृषि साख कारपोरेशन स्थापित की जावे कि जो किसानों के लिए साख स्थापित करे। यह कारपोरेशन अपनी शाखायें स्थापित करे और उनके द्वारा साख देने का कार्य करे। सहकारिता योजना समिति तथा अन्य सहकारिता कमेटियों और सहकारिता आन्दोलन में कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं ने गैडगिल कमेटी के इस मत का विरोध किया। उनका मत था कि यदि सहकारी साख समितियां सेन्ट्रल बैंकों तथा प्रान्तीय बैंकों को अधिक सबल बनाया जावे और उन्हें अधिक सहायता दी जावे तो सहकारी संस्थायें ही कृषि साख का उचित प्रबंध कर सकती हैं। इसमें तो तनिक भी संदेह नहीं है कि कृषि साख कारपोरेशन" के स्थापित होने पर गावों में साख देने वाली दो संस्थायें कार्य करेंगी एक सहकारी साख समिति दूसरी कृषि शाखकारपोरेशन की शाखा। यह बहुत स्वस्थकर नहीं होगा।

किन्तु भारत सरकार ने गैडगिल कमेटी के सुझाव को स्वीकार कर लिया है और कृषि साख कारपोरेशन को स्थापित करने के लिए एक बिल उपस्थित किया जाने वाला है।

प्रस्तावित अखिल भारतीय "कृषि साख कारपोरेशन" का बिलः—यह कारपोरेशन समस्त भारत में कृषि साख का प्रबंध करेगी इसकी देश के भिन्न-भिन्न स्थानों पर शाखायें होंगी और प्रान्तीय सहकारी बैंकों के लिए केन्द्रीय सहकारी बैंक का भी काम करेगी। यदि

कभी भविष्य में "प्रान्तीय कृषि साख कारपोरेशन" की स्थापना की गई तो उनकी भी केन्द्रीय संस्था यही होगी।

इसकी हिस्सा पूंजी ५ करोड़ रुपये होगी। यह पांच करोड़ रुपए की पूंजी ५००० रु० के १०,००० हिस्सों में बांटी जावेगी, भारत सरकार हिस्सा पूंजी तथा एक न्यूनतम लाभ की दर (जो आगे निश्चित होगी) गारंटी देगी। अर्थात दिवालिया होने पर सरकार पूंजी को अदा करेगी और पूंजी पर एक न्यूनतम लाभ देगी। इस कारपोरेशन के हिस्से केवल (१) भारत सरकार (२) रिजर्व बैंक, (३) शिड्यूल बैंक (४) सहकारी बैंक तथा अन्य सहकारी संस्थायें (५) तथा चैम्बर आव कामर्स इत्यादि ही खरीद सकेंगी।

हिस्सा पूंजी का भिन्न-भिन्न खरीदारों में इस प्रकार विभाजन होगा:—भारत सरकार १ करोड़ रु०, रिजर्व बैंक १ करोड़ रुपए शिड्यूल बैंक १ करोड़ रुपए, सहकारी संस्थायें १ करोड़ रुपए तथा चेम्बर आव कामर्स, काटन एसोशियेसन, बीमा कंपनियाँ तथा इनवैस्टमेंट ट्रस्ट १ करोड़ रुपए।

कृषि साख कारपोरेशन अपनी हिस्सा पूंजी से आठ गुने मूल्य के ऋणपत्र (डिबेंचर) निकाल सकेगी जिसके मूलधन तथा सूद की अदायगी की गारंटी सरकार देगी। अर्थात कारपोरेशन ४० करोड़ रु० के डिबेंचर निकाल सकेगी।

कारपोरेशन हिस्सा पूंजी से दुगनी अर्थात १० करोड़ रुपए की जमा (डिपाजिट) पांच वर्षों या उससे अधिक के लिए ले सकेगी।

कारपोरेशन मध्यम समय के लिए तथा लम्बे समय के लिए अचल सम्पति की जमानत पर ऋण दे सकेगी। अचल सम्पत्ति के मूल्य का ५० प्रतिशत से अधिक ऋण नहीं दिया जावेगा। कारपोरेशन थोड़े समय के लिए भी साख दे सकेगी। थोड़े समय के लिए साख फसल पर गोदाम की रसीद पर अथवा अन्य किसी चल

सम्पत्ति की जमानत पर दी जावेगी। जिन्होंने लम्बे समय के लिए साख ली है उनकी सम्पत्ति के दूसरे बंधक को जमानत पर १८ महीने लिए साख और दी जा सकती है परन्तु वह मध्यम या लम्बे समय के लिए दिए गए ऋण की एक तिहाई से अधिक नहीं हो सकती

लम्बे समय के लिए ऋण जमीन खरीदने इमारत बनाने अथवा कृषि यंत्रखरीदने के लिए दिए जावेंगे और थोड़े समय के लिए ऋण खेती के लिए खेती की पैदावार की बिक्री के लिए तथा खेती से सम्बधित धंधो (जैसे दूध घी का धधा) के लिए दिए जावेंगे। मध्यम समय के लिए ऋण यंत्रों को खरीदने पशुओं को खरीदने भूमि में सुधार करने तथा अन्य ऐसे ही कार्यों के लिए दिए जावेंगे।

थोड़े समय के लिए ऋण १८ महीने के लिए होगा, मध्यम समय के लिए ऋण १८ महीने से लेकर ७ वर्ष तक के लिए होगा तथा लम्बे समय के लिए ऋण ७ से ३० वर्षों तक के लिए होगा। लम्बे समय के लिए जो ऋण दिया जावेगा वह २५००० रु० से कम नहींऔर १ लाख रु० से अधिक का नहीं होगा। कोई ऋण बिना अचल या सम्पत्ति को बंधक रक्खे नहीं दिया जावेगा।

कारपोरेशन सहकारी समितियों के सदस्यों और ऋण लेने वाले समूह" के सदस्यों को लम्बे ऋण पर १ प्रतिशत तथा मध्यम और थोड़े समय के लिए दिए जाने वाले पर १॥ प्रतिशत कम सूद पर ऋण दे।

जहाँ तक हो सकेगा कारपोरेशन सहकारी संस्थाओं को और प्रान्तीय कृषि साख कारपोरेशनों को ही अपना एजेंट बनावेगी। किन्तु कारपोरेशन बड़े तथा धनी किसानों को सीधे ऋण दे देगी। इसका तात्पर्य यह होगा कि छोटे किसान या तो सहकारी समिति बनावें और यदि वे सहकारी समिति न बनावें तों ऋण लेने वाले समूह बनावें तभी उन्हें ऋण मिल सकेगा।

कारपोरेशन का प्रबंध एक बोर्ड आव डायरैक्टर करेगा। बोर्ड की

एक कार्यकारिणी होगी और एक मैनेजिंग डायरैक्टर होगा जो कारपोरेशन का संचालन करेगा।

बोर्ड आव डायरैक्टर के ११ सदस्य होंगे जो इस प्रकार होंगे केन्द्रीय सरकार २ डायरैक्टर, रिजर्व बैंक २, डायरैक्टर, शिड्यूल बैंक २ डायरैक्टर, सहकारी संस्थाये २, डायरैक्टर, अन्य २ डायरैक्टर। मैनेजिंग डायरैक्टर की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार करेगी। पहली बार मैनेजिंग डायरैक्टर नियुक्त करने में केन्द्रीय सरकार रिजर्व बैंक से परामर्श लेगी और उसके बाद कारपोरेशन के बोर्ड आव डायरैक्टर की सलाह लेगी।

परिशिष्ट

शब्दावली

इस पुस्तक में जो पारिभाषिक शब्द आये हैं, उनके लिए भारतीय ग्रंथमाला की 'अर्थशास्त्र शब्दावली' पुस्तक देखना बहुत उपयोगी होगा, जिसका तीसरा संस्करण हो चुका है। यहाँ कुछ खास शब्दों के बारे में यह बताया जाता है कि वे अँग्रेजी के किन-किन शब्दों की जगह काम में लाये गये हैं—

अपरिमित दायित्व	Unlimited liability
आय व्यय की जाँच	Auditing
आर्थिक	Economic
उत्पत्ति	Production
उत्पादक	Producer
उपभोक्ता	Consumer
उपभोग	Consumption
एकाधिकार	Monopoly
औद्योगिक संगठन	Industrial organisation
क्रय-विक्रय समितियाँ	Purchase and sale Societies
कार्यशील पूँजी	Working capital
गैर-साख-समितियाँ	Non-Credit Societies
गृह-उद्योग धंधे	Cottage industries
गृह निर्माण समिति	House-building Society
घन फुट	Cubic foot

चल पूँजी	Fluid Capital
चल सम्पत्ति	Movable Property
चालू जमा	Current deposit
जमानत	Security
ट्रेड यूनियन	Trade Union
दायित्व	Liability
देनी	Liabilities
द्रव्य बाजार	Money market
धन वितरण	Distribution of wealth
नक़द साख	Cash-credit
निरीक्षक कौंसिल	Supervising Council
परिमित दायित्व	Limited Liability
पूँजीपति	Capitalist
प्रतिद्वन्द्विता, प्रतिस्पर्द्धा	Competition
प्रारम्भिक सहकारी समिति	Primary co-operative Society
बट्टा खाता	Bad debt
भूमि-बन्धक बैंक	Land Mortgage Bank
मिश्रित पूँजी वाली कम्पनी	Joint Stock Company.
मुद्दती जमा	Fixed deposit
रहनसहन-सुधार समितियाँ	Better-living Societies
रक्षित कोष	Reserve Fund
लगान क़ानून	Tenancy Act
लायसैंस	License
लेना	Assets
लेनी देनी का लेखा	Balance Sheet
विनिमय	Exchange

विनिमय व्यापार	Exchange business
शक्ताति जीवन	Survival of the fittest
श्रमजीवी	Labourer
श्रम विभाग	Division of labour
श्रम समितियाँ	Labour Societies
सहकारिता	Co-operation
सहकारिता आन्दोलन	Co-operative movemen
साख	Credit
साधारण साख	Normal credit
समाजवाद	Socialism
सुरक्षित कोष	Reserve Fund
संघ	Federation
संतुलन	Balancing
स्थिर सम्पत्ति	Immovable property